पं० दौलतराम कासलीवाल कृत
''वसुनन्दी श्रावकाचार टव्वा टीका''
पाण्डुलिपि का सम्पादन एवं समीक्षण

BY

RASHMI JAIN

(Registration No.: CJS15Ph.D./123)

UNDER THE SUPERVISION OF

Prof. Vipin Jain
Principal, TMIMT
Teerthanker Mahaveer University,
Moradabad (U.P.)

Prof. Veersagar Jain
HOD, Department of Jain Philosophy
Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya
Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi-110016

CENTRE FOR JAIN STUDIES

Submitted

in fulfillment of the requirement of the degree of Doctor of Philosophy in Jainology to the

TEERTHANKER MAHAVEER UNIVERSITY
MORADABAD

2021

पडण्ण्त दौलतराम जी कासलीवाल का व्यण्क्तत्व एवं कृण्तत्व

जीवन वृत्त

पं. दौलतराम जी कासलीवाल आधुनिक हिन्दी गद्य के आदि प्रणेता कहे जाते हैं। इनके द्वारा ही आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास का सूत्रपात हुआ। ये पं. दौलतराम जी कासलीवाल 'छहढाला' के कर्ता महान कवि दौलतराम जी से भिन्न हैं। कवि दौलतराम जी मूलतः कवि ही थे, इनकी कोई भी गद्य रचना उपलब्ध नहीं है। पं. दौलतराम जी कासलीवाल, पं. टोडरमल जी के समकालीन थे। इनका जन्म राजस्थान के बसवा नामक ग्राम में आषाढ़ कृष्णा चतुर्दशी वि.स. 1749 को हुआ था। इन्होंने अपने विषय में पुण्याश्रव कथाकोश की भाषा वचनिका में लिखा है कि- ''बसवै वास हमारी जानि, पिता का नाम आनन्दराम।''

पं. दौलतराम जी कासलीवाल के पितामह का नाम श्री घासीराम था, जो कि खण्डेलवाल जाति एव कासलीवाल गोत्र के दिगम्बर जैन थे। इनकी माता एवं शिक्षा आदि के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। इनके बचपन का नाम बेगराज था। इनके पिता आनन्दराम जयपुर महाराजा के पास उच्च पद पर कार्यरत थे और दिल्ली में जयपुर महाराजा की ओर से जोधपुर नरेश अभयसिंह के पास रहते थे। इन्होंने बसवा में एक जैन मन्दिर भी बनवाया था, जो आज भी है।

पं. दौलतराम जी तीन भाई थे। यह बीच के अर्थात दूसरे नम्बर के थे। इनके बड़े भाई निर्भयराज जी को वि.सं. 1792 (1735 ई.) में पिता की मृत्यु हो जाने पर मातमी का सिरोपाव जयपुर महाराजा की ओर से दिल्ली भेजा गया था, जिसका प्रमाण राजस्थान राज्य अभिलेखागार के 'दस्तूर कौमवार' में उपलब्ध् है। इनके छोटे भाई का नाम बख्तावर लाल था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में पं. दौलतराम जी कासलीवाल का उल्लेख इस प्रकार किया है- ''संवत् 1818 में बसवा (म.प्र.) निवासी पं. दौलतराम ने रविषेणाचार्यकृत 'पद्मपुराण' अर्थात् पद्मचरित (वि.सं 734 में संस्कृत भाषा में रचित) का भाषानुवाद किया, जो सात सौ पृष्ठों का एक बृहद् ग्रन्थ है। इसकी भाषा इस बात का पूरा पता देती है कि फारसी, उर्दू से कोई सम्पर्क न रखने वाली अधिकांश शिष्ट जनता के बीच भी खड़ी बोली किस स्वाभाविक रूप से प्रचलित थी।''

पं. दौलतराम जी कासलीवाल के छह पुत्र थे। इनमें से जोधराज जी कासलीवाल अच्छी साहित्यिक रुचि के और प्रतिष्ठित विद्वान थे, जिन्होंने कामा में रहते समय 'सुखविलास' नामक उच्च काव्य ग्रन्थ की रचना संवत् 1884 में की थी। छठे पुत्र गुलाबदास जी थे, इनके सम्बन्ध् में राजस्थान राज्य अभिलेखागार में यह उल्लेख मिलता है कि उन्हें जयपुर महाराजा द्वारा कार्यकुशलता के लिए अनेक बार सम्मानित भी किया गया। इनके बड़े पुत्र अजितदास अपने पिता की तरह उदयपुर राज्य में जयपुर राज्य के वकील बनकर रहे। उन्हें विभिन्न परगनों की राजस्व वसूली जैसी महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपे जाने और राजा द्वारा सिरोपाव से सम्मानित करने के उल्लेख मिलते हैं।

व्यक्तित्व

इसप्रकार पं. दौलतराम जी के पूर्वज और सभी अग्रज एवं सन्तति राज्य के उच्च, सम्मानित पदों पर आसीन रही। पं. दौलतराम जी कासलीवाल प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं के तो ज्ञाता थे ही, जैन शास्त्रों के भी

विशिष्ट विद्वान् थे। लेखन कार्य के प्रति प्रारम्भ से ही रुचि थी। एक बार इन्हें कार्यवश आगरा जाने का अवसर मिला। वहाँ अनेकों विद्वानों के साथ सम्पर्क होने के कारण आपको भी लोकभाषा में साहित्य सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई। कविवर भूधरदास जी इनके अभिन्न मित्र थे, इन्हीं से विशेष प्रेरणा मिली और यहीं रहकर 58 वर्ष की आयु में पं. दौलतराम जी ने 'पुण्यास्रव कथाकोष' की रचना सं. 1777 में करके साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश किया। इनकी विद्वत्ता और प्रभावी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जयपुर नरेश ने राजकीय सेवा में इन्हें पहले ही ले लिया था। जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने 1730 ई. में पं. दौलतराम जी को अभयसिंह की सेवा में मथुरा भेजा था। राजस्थान राज्य अभिलेखागार में उपलब्ध् दस्तूर कौमवार के अनुसार उस अवसर पर इन्हें "अजरूप महरवानगी सवा इकतालीस रुपया कीमती सिरोपाव" प्रदान किया गया।

पं. दौलतराम जी कासलीवाल ने राज्य सेवा में जल्दी ही अपनी साख जमा ली। जयसिंह ने उन्हें अपनी मेवाड़ी रानी से उत्पन्न पुत्र महाराज कुमार माधोसिंह का वकील (प्रतिनिधि) बनाकर उदयपुर भेजा, क्योंकि माधोसिंह अपने ननिहाल में ही रहते थे। राजकुमार माधोसिंह बचपन से ही जैनधर्म से प्रभावित थे। उदयपुर में नियुक्ति पं. दौलतराम जी को अत्यधिक फलदायी सिद्ध हुई, क्योंकि उदयपुर में किये गये विशेष कार्यों के लिए राजा जयसिंह ने इन्हें दो बार सम्मानित किया। पं. दौलतराम जी ने स्वयं को "जयसुत माधोसिंह को मंत्र और उकील (वकील)" पद पर कार्यरत होने का उल्लेख किया है। महाराज माधोसिंह और महाराणा जगतसिंह का सान्निध्य और उच्च पद पर सेवाकार्य अपने आपमें बहुत ही प्रतिष्ठा और बड़े गौरव की बात थी।

जयपुर में पण्डित टोडरमल जी से पं. दौलतराम जी की मुलाकात हुई, उन्हीं के प्रभाव से इन्होंने अपनी लेखन का झुकाव गद्य की ओर किया और वि.सं. 1816 से 1829 तक के तेरह वर्षों में इन्होंने आठ बृहद् ग्रन्थों को पूर्ण किया और अपनी लेखन शक्ति से सभी को चमत्कृत कर दिया।

पं. दौलतराम जी कासलीवाल का जीवन बसवा, आगरा, उदयपुर, जयपुर इन नगरों में व्यतीत हुआ। राज्य के अनेक उच्च पदों पर आसीन रहने के बाद भी राजनीति की अपेक्षा साहित्य में ही इनकी विशेष रुचि थी। यही कारण है कि इन्होंने एकनिष्ठ होकर साहित्य सेवा की और इसीके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के आद्य इतिहास में इनको उचित स्थान प्राप्त हुआ। राजस्थान के जैन साहित्य के मनीषी और अनुशीलनकर्ता डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व नामक अनुसंधनात्मक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ई. सन् 1973 में प्रकाशित कर हिन्दी जगत को इनकी दस महत्त्वपूर्ण रचनाओं से परिचित कराया है।

कृतित्व

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास के क्षेत्र में सबसे पहली रचना इन्हीं पं. दौलतराम जी कासलीवाल की उपलब्ध् है। इन्होंने हिन्दी साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की है।

पं. दौलतराम जी की 20 रचनायें अद्यावधि् उपलब्ध् हो चुकी हैं। जिन्हें हम निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित सकते हैं-

1. भाषा वचनिकाएँ-

1. पुण्यास्रव कथाकोष वचनिका (वि.सं. 1777)
2. पद्मपुराण वचनिका (वि.सं. 1823)
3. आदिपुराण वचनिका (वि.सं. 1824)
4. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (जो पं. टोडरमल जी पूरा नहीं कर पाये थे)
5. हरिवंशपरुण (वि.सं. 1829)

6. परमात्मप्रकाश वचनिका (वि.सं. 1823)
7. सारसमुच्चय

2. टव्वा टीकाएँ-
1. तत्त्वार्थसूत्र टव्वा टीका
2. वसुनन्दी श्रावकाचार टव्वा टीका
3. स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा टव्वा टीका
4. समयसार कलश टव्वा टीका

3. मौलिक रचनाएँ-
1. त्रेपनक्रियाकोश
2. जीवंधर-चरित
3. अध्यात्म बारहखड़ी
4. विवेक-विलास
5. श्रेणिकचरित
6. श्रीपालचरित
7. चौबीस दण्डक
8. सिद्ध पूजाष्टक
9. चतुर चितारणी

पं. दौलतराम जी की रचनाओं को गद्यात्मक और पद्यात्मक रूप से भी विभाजित किया जा सकता है। इनमें 10 रचनायें पद्यात्मक हैं और दस गद्यात्मक हैं।

पद्यात्मक रचनाएँ-
1. त्रेपनक्रियाकोश
2. जीवंध्रस्वामी-चरित
3. अध्यात्म बारहखड़ी
4. विवेक-विलास
5. श्रेणिकचरित
6. श्रीपालचरित
7. चौबीस दण्डक
8. सिद्ध पूजाष्टक
9. चतुर चितारणी
10. सार-समुच्चय

गद्यात्मक रचनाएँ-
1. पुण्यास्रवकथा कोष - भाषा वचनिका
2. आदिपुराण - वचनिका
3. पुरुषार्थसिद्धयुपाय - भाषा टीका
4. हरिवंशपुराण - वचनिका
5. परमात्मप्रकाश - भाषा
6. तत्त्वार्थसूत्र - टव्वा टीका
7. वसुनन्दि श्रावकाचार - टव्वा टीका
8. पद्मपुराण - वचनिका

9. कार्तिकेयानुप्रेक्षा - टव्वा टीका
10. समयसार-कलश - टव्वा टीका

पं. दौलतराम जी अपने समय के रीतिकालीन विध के श्रेष्ठ विद्वान् थे। उनके समय में श्रंगार, ऐश्वर्य, विलास एवं शान-शौकत का साहित्य अधिकांशतः लिखा जा रहा था। आमेर का दरबार उस समय 'बिहारी की सतसई' से प्रभावित था, इस समय पं. दौलतराम जी ने इस सबके बीच रहते हुए वीतराग एवं अध्यात्म का मार्ग अपनाया इसलिए वे तत्कालीन राग-रंक रूपी पंक के बीच कमल की तरह खिले और अध्यात्मवाद के साहित्य की पवित्र सुरभि से वातावरण को शुद्ध कर दिया, क्योंकि यही जीवन के निर्माण का सही मार्ग भी है।

पुण्यास्रव कथाकोश एवं कहानियों के माध्यम से स्वाध्याय की नींव डाली तथा 'त्रेपनक्रियाकोश' से चारित्र, संयम, अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य जैसे नैतिक गुणों की महत्ता दर्शायी, जिसमें मानव जीवन की सफलता निहित है। तत्कालीन समाज में ऐसे साहित्य की नितान्त आवश्यकता थी, जिससे पं. दौलतराम जी को काफी लोकप्रियता मिली। इनकी 'परमात्मप्रकाश वचनिका' तत्कालीन हिन्दी गद्य की अनुपम कृति है। इसकी भाषा अपभ्रंश है। इसकी मूल रचना आचार्य योगीन्दु द्वारा रचित छठी, सातवीं शती की है। इस कृति के 345 दोहों की विस्तृत टीका 6890 श्लोक प्रमाण है, जिसमें पं. दौलतराम जी ने बहिरात्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा के स्वरूप को बताया है।

तत्त्वार्थसूत्र, कार्तिकेयानुप्रेक्षा और वसुनन्दि श्रावकाचार- इन ग्रन्थों पर लिखित भाषा टीकाओं के कारण स्वाध्याय को अच्छा प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार पुण्यास्रवकथाकोश से लेकर हरिवंशपुराण तक 52 वर्षों तक निरन्तर लेखन कार्य करके आप अपनी आध्यात्मिक कृतियाँ समाज को भेंट करते रहे। पं. दौलतराम जी नैतिकता और अध्यात्म में पूरा विश्वास रखते थे। उनका साहित्य किसी भी परम्परा का अन्धानुकरण नहीं करता।

अध्यात्म बारहखड़ी नामक आपकी मौलिक कृति वर्णानुक्रम से प्रारम्भ होने वाली बृहद् रचना है। इनकी चर्चित बृहद् रचना पद्मपुराण भाषा वचनिका (वि.सं. 1823) में छल मूल महाधिकार हैं। अर्थकथन कहीं टीका शैली का है, कहीं अनुवाद जैसा, कहीं क्रमबद्ध अखंड वाक्यों की योजना जैसा, पूर्ण अभिव्यक्तियुक्त व्याख्या काफी सन्तोषजनक है।

जिनसेनाचार्य (प्रथम) कृत हरिवंशपुराण की भाषा टीका उन्होंने रायमल्ल जी के आग्रह पर अपनी वृद्धावस्था में (संवत् 1829) में जयपुर में ही पूरी की। यह इनकी इतनी उत्कृष्ट रचना है कि इस भाषा टीका द्वारा पं. दौलतराम जी ने अपने साहित्यिक जीवन को सर्वोच्च सोपान पर चढ़ा दिया। उन्होंने 19 हजार श्लोकों की बृहद् भाषा टीका बनायी, जो हिन्दी गद्य-साहित्य की महान रचना है।

इस प्रकार बृहद् गद्य रचनाओं के कारण पं. दौलतराम जी हिन्दी के गद्य निर्माताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनका गद्य संस्कृतनिष्ठ है और उसमें खड़ी बोली का पूर्वरूप स्पष्ट है। उनके दो पुराणों पद्मपुराण और हरिवंशपुराण जो राम और कृष्ण के जीवन पर आधारित हैं, के स्वाध्याय, पठन-पाठन के इस क्षेत्र में एक नया ही कीर्तिमान स्थापित किया है।

दौ सौ वर्ष पूर्व जब पद्यकार तो बहुत थे, परन्तु इतने बड़े पैमान पर सरस, अलंकारित, गद्यलेखन पं. दौलतराम जी के सिवा किसी के वश की बात नहीं थी। इनके टीकाग्रन्थों का स्वाध्याय-अध्ययन, पठन-पाठन अहिन्दी प्रदेशों में भी खूब हुआ। राजस्थान के तथा अन्य प्रदेशों के विभिन्न ज्ञानभण्डारों में इसकी प्रतियाँ उपलब्ध् होना इसका प्रमाण है।

पं. दौलतराम जी की हिन्दी गद्य वचनिकाओं को मात्र हिन्दी के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि अन्य भाषा के प्रदेशों, क्षेत्रों में भी पूरे मनोयोग से पढ़ा और समझा जाता है। अतः पं. दौलतराम जी को हिन्दी भाषा के विकास मार्ग को प्रशस्त करने तथा सर्वव्यापी बनाने का भी श्रेय प्राप्त है। हिन्दी साहित्य एवं इतिहास के प्रसिद्ध साहित्यकारों एवं इतिहासकारों ने इन्हें महान गद्यकार कहकर अपनी लेखनी का गौरव बढ़ाया है।

पं. दौलतरामजी को चारों अनुयोगों का गहरा ज्ञान था। उनकी विद्वत्ता की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी। अनेक जिज्ञासु धर्मचर्चा हेतु उनसे मिलने भी आते थे। जयपुर निवासी ब्रह्मचारी रायमल जी भी उनसे मिलने उदयपुर तक गये थे और उनकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हुए थे। पण्डित जयचन्द जी छाबड़ा ने तो आपको 'पण्डितराय' विशेषण से सम्बोधित किया है-

"दौलतराम गुणी अधिकाय, पंडितराय राज में जाय।
ताकि बुद्धि लसै सब खरी, तीन पुराण वचनिका करी।।"

-सर्वार्थसिद्ध वचनिका, प्रशस्ति, छन्द 10

पं. दौलतराम जी कासलीवाल संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं, विविध कोश-ग्रन्थों एवं व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, सिद्धान्त आदि विषयों के भी अच्छे ज्ञाता थे। इस प्रकार पं. दौलतराम जी ने हिन्दी साहित्य एवं जैनदर्शन के रहस्योद्घाटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पं. दौलतराम जी कासलीवाल का स्वर्गवास 80 वर्ष की उम्र में भाद्रपद शुक्ला द्वितीया वि.सं. 1829 को जयपुर में हुआ।

पाण्डुलिपि का परिचय

प्रस्तुत पाण्डुलिपि आचार्य वसुनन्दि द्वारा रचित उपासकाध्यन या वसुनन्दि श्रावकाचार है। वसुनन्दि श्रावकाचार की पण्डित दौलतराम कासलीवाल द्वारा टव्वा टीका की गयी है। यह टीका ग्रन्थ अद्यावधि् अप्रकाशित था। यह पाण्डुलिपि लगभग 300 वर्ष प्राचीन है। पं. दौलतराम जी कासलीवाल द्वारा प्रत्येक शब्द का अर्थ देते हुए, श्रावक से संबंति हर विषय का बहुत सुन्दर, सरल एवं सुव्यवस्थित वर्णन किया गया है। कुछ विषयों पर बहुत गहरा विवेचन किया गया है। नरक की योनि, आयु, गुणस्थान, ध्यान आदि का विशेष वर्णन किया गया गया है। मूल ग्रन्थ की भाषा प्राकृत है किन्तु पं. दौलतराम जी कासलीवाल द्वारा टव्वा टीका ढूंढारी भाषा में की गई है।

पाण्डुलिपि का परिमाण

"वसुनन्दी श्रावकाचार टव्वा टीका" की प्रस्तुत पाण्डुलिपि का परिमाण निम्न प्रकार है। इस पाण्डुलिपि का आकार 5½ x 9 इंच है। इसकी पृष्ठ संख्या 133 है। प्रति पृष्ठ संख्या 266 है। प्रति पृष्ठ 4 पंक्ति हैं तथा प्रत्येक पंक्ति में अक्षर संख्या 20 से 24 है। अक्षर साफ और सुन्दर हैं। टीकाकार ने प्रत्येक पद के ऊपर ही गाथा का अर्थ लिख रखा है। विशेष विवेचन भी किया है। स्थान के अभाव में हाशिये के दोनों तरफ का स्थान प्रयोग में लाया गया है।

गाथा नं. 14 पर नं. नहीं लिखा है। 14 नं. छूटने पर गाथा नं. 15 पर 14 नं. लिख दिया है। इस प्रकार गाथा नं. 24 तक 23 नं. डाल रखा है। 23 के बाद 24 नं. नहीं डाल कर सीं 25 डाल दिया है। मैंने गाथा नम्बर ठीक करके लिख दिया है।

231 नं. की गाथा वर्तमान में छपे हुए वसुनन्दि श्रावकाचार में नहीं है। गाथा नं. 242 दो गाथाओं पर डाल रखा है। गाथा नं. 443, 444, 445 की टव्वा टीका नहीं मिली।

आचार्य वसुनन्दि के द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का परिमाण प्रशस्ति की अंतिम गाथा द्वारा छह सौ पचास सूचित किया गया है। परन्तु किसी भी प्रति में 650 श्लोक किसी भी प्रकार गिनती में नहीं आ रहे। प्रस्तुत पाण्डुलिपि में अंतिम संख्या से 546 गाथायें हैं किन्तु बीच में गाथा नं. 231 वर्तमान में उपलब्ध् ग्रन्थ में वर्णित नहीं है। गाथा नं. 242 तथा 243 पर 242 नं. डालने से अंत में गाथाओं की संख्या 546 आ रही है किन्तु 1 गाथा अधिक होने से गाथाओं की संख्या 547 आ रही है।

गाथा नं. 231 में चौदह दोषों से रहित शुद्ध आहार का वर्णन करते हुए, भोजन की अशुद्ध के चौदह दोषों का नाम सहित विशेष वर्णन किया गया है।

इस प्रकार पं. हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित वसुनन्दि श्रावकाचार की सहायता से मैंने "वसुनन्दी श्रावकाचार टव्वा टीका" का समीक्षात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। उनसे पाण्डुलिपि का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि जो पाण्डुलिपि हमारे पास है, यह ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन झालरापाटन की प्रति से मेल खाती है।

इस प्रकार जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है, उससे ही पं. दौलतराम कासलीवाल जी की टव्वा टीका को विद्वज्जनों के सम्मुख लाने का छोटा सा प्रयास किया गया है।

ढूंढारी भाषा का परिचय

राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियों में ढूंढारी बोली विशेष रूप से लोकप्रिय है। इसकी लोकप्रियता का कारण इसकी मधुरता और सरलता है। जयपुर और उसके आस-पास की विशेष बोली होने के बाद भी इस बोली में उपलब्ध वचनिका साहित्य, उसमें भी जैन विद्वानों द्वारा लिखित भाषा वचनिकाओं के कारण ढूंढारी दक्षिण से उत्तर तक तथा पूर्व से पश्चिम तक अपने सम्पूर्ण देश में समझी जाती है। जैन मन्दिरों में सायंकालीन शास्त्रों प्रवचन तथा दैनिक स्वाध्याय में पण्डित टोडरमल जी कृत मोक्षमार्ग प्रकाशक, पण्डित दौलतराम जी का पद्मपुराण, पण्डित सदासुखदास जी द्वारा रचित रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा वचनिका तथा पण्डित दौलतराम कासलीवाल जी कृत आदिपुराण वचनिका आदि तथा इसी तरह के अनेक ग्रन्थों के माध्यम से श्रमण एवं श्रावक तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं तथा आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होते हैं।

संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वानों एवं आचार्यों के ग्रन्थों का स्थानीय भाषा बोली में साहित्य के विवेचन का यही अर्थ है कि जनसाधरण की बोली में जो साहित्य सृजन किया जाता है, वह सहज ही लोगों के दिलो-दिमाग पर अपनी छाप छोड़ता है। स्थानीय बोली से लोग उसी प्रकार जुड़े होते हैं जैसे कोई छोटा सा बच्चा अपनी माँ से। जिस प्रकार छोटे बच्चे की सम्पूर्ण दुनिया उसकी माँ में निहित होती है, उसी प्रकार भोले-भाले, अनपढ़ या घरेलू लोग अपनी बोली में कही-सुनी बातों को जल्दी ही अपने जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं। अपनी बोली में बताई गई अरिहंत भगवान तथा गुरुओं की शिक्षा सीधे उनके हृदय में प्रवेश करती है।

ढूंढारी बोली, सरल, मधुर एवं लोकप्रिय है। अतः जिनेन्द्र देव की वाणी जनसाधरण तक पहुँचाने के लिए ढूंढारी बोली में विपुल साहित्य का सृजन किया गया है और विद्वानों का यह उद्देश्य सफल भी रहा है।

मूल ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय

आचार्य वसुनन्दि का परिचय

जैनदर्शन में आत्मप्रशंसा को कदापि सराहनीय नहीं माना गया है। ख्याति, लाभ की भावना से किया गया कार्य परमार्थ में बाधक माना गया है, अतः जैनाचार्यों ने इतने सुन्दर, गूढ़ एवं मुक्ति तक पहुँचाने वाले शास्त्रों का लेखन, भावी पीढ़ी के कल्याणार्थ किया किन्तु स्वयं की जन्मभूमि, माता-पिता, जाति आदि के विषय में वे मौन रहे। जिन्होंने आत्मकल्याण के मार्ग के महान एवं गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया, उन्होंने स्वयं के विषय में अपनी लेखनी को कुछ बताने की आज्ञा नहीं दी। इसीलिए आचार्य वसुनन्दि के जन्म, स्थान, जाति, माता-पिता, शिक्षा-दीक्षा आदि की कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती। इन सब बातों को जानने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है।

ग्रन्थ के अंत में दी हुई उनकी प्रशस्ति से केवल इतना ही पता चलता है कि श्री कुन्दकुन्द आचार्य की परम्परा में श्रीनन्दि नाम के एक आचार्य हुए। श्रीनन्दि आचार्य के शिष्य नयनन्दि तथा नयनन्दि आचार्य के शिष्य नेमिचन्द्र हुए। नेमिचन्द्र आचार्य के प्रसाद से वसुनन्दि आचार्य ने यह उपासकाध्ययन बनाया। प्रशस्ति में ग्रन्थ-रचनाकाल नहीं दिया गया है। पं. आशाधर जी ने सागारधर्मामृत की टीका को वि.सं. 1296 में समाप्त किया है। इस टीका में उन्होंने आचार्य वसुनन्दि जी का अनेक बार सादर स्मरण किया है एवं उनके उपासकाध्ययन की गाथाओं को भी उद्धृत किया है। अतः आचार्य वसुनन्दि, पं. आशाधर जी से पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। श्री पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार ने ''पुरातन-वाक्य-सूची'' की प्रस्तावना में एवं श्री पं. नाथूराम जी प्रेमी ने अपने 'जैन इतिहास' म ें वसुनन्दि का समय आचार्य अमितगति के पश्चात् और पं. आशाधर जी से पूर्व अर्थात् विक्रम की बारहवीं शताब्दी निश्चित किया है। वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचार के अंत में जो प्रशस्ति दी है उसके अनुसार उनके दादा गुरु ने 'सुदंसणचरिउ' की रचना वि.सं. 1100 में पूर्ण की है। उन्होंने जिन शब्दों में अपने दादा-गुरु का प्रशंसापूर्वक उल्लेख किया है, उससे यह ध्वनित होता है कि वे उनके सामने विद्यमान रहे हैं। अतः इनका समय विक्रम की बारहवीं शती का पूर्वार्ध् जानना चाहिये।

आचार्य वसुनन्दि आचारधर्म और सिद्धान्त ग्रन्थों के महान विद्वान् थे। उनकी रचनाओं में आप्तमीमांसावृत्ति, जिनशतक टीका, मूलाचारवृत्ति, प्रतिष्ठासारसंग्रह एवं उपासकाध्ययन प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रतिष्ठासारसंग्रह और उपासकाध्ययन स्वतंत्र रचनाएँ हैं तथा शेष सभी टीका-ग्रन्थ हैं। प्रतिष्ठासारसंग्रह की रचना संस्कृत भाषा में की गई है। इससे ज्ञात होता है कि आचार्य दोनों भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् थे। प्राकृत भाषा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा होने कारण श्रावकाचार की रचना प्राकृत भाषा में की गई होगी, जिससे अधिक से अधिक लोग उसे समझकर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हो सकें। सिद्धांत ग्रन्थों की टीका के कारण ही परवर्त्ती विद्वानों ने उन्हें 'सैद्धान्तिक' उपाधि से अलंकृत किया। इस प्रकार आचार्य वसुनन्दि ने सिद्धान्तों एवं आचार-व्यवहार का बहुत सुन्दर विवेचन किया है।

वसुनन्दि श्रावकाचार का परिचय

जैनदर्शन निवृत्ति के मार्ग का उपदेश देता है। जो व्यक्ति घर त्याग कर महाव्रतों को धारण कर अर्थात् मुनि बनकर आत्मकल्याण करना चाहते हैं, उनके लिए मूलाचार आदि अनेक शास्त्रों की रचना की गई है। जो व्यक्ति मुनि बनने की सामर्थ्य नहीं रखते किन्तु आत्मकल्याण करना चाहते हैं, उनके लिए गृहस्थ में रहकर भी छोटे-छोटे

व्रतों को धारण कर, एक दिन बड़े व्रतों को धारण करने की सामर्थ्य को प्राप्त करने के लिए अणुव्रती बनने का मार्ग बताया गया है। गृहस्थ व्रती को उपासक, श्रावक, देशसंयमी, आगारी आदि भी कहा जाता है।

इसी उपासक या श्रावक के आचरण का वर्णन करने वाले सूत्र, शास्त्रों या ग्रन्थ को उपासकाध्ययन-सूत्र, उपासकाचार या श्रावकाचार नामों से जाना जाता है। द्वादशांग श्रुत के बारह अंगों में श्रावकों के आचार-विचार का स्वतंत्रता से वर्णन करनेवाला सातवाँ अंग उपासकाध्ययन माना गया है। आचार्य वसुनन्दि ने तथा अन्य भी श्रावकाचार रचयिताओं ने अपने ग्रन्थ का नाम उपासकाध्ययन ही दिया है।

इसी प्रकार आचार्य वसुनन्दि कृत इस उपासकाध्ययन में आचार्य कुन्दकुन्द एवं स्वामी कार्तिकेय के समान ग्यारह प्रतिमाओं को आधार बनाकर श्रावक धर्म का विवेचन किया गया है। इसका समय 12वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है। प्रतिमाओं का आधार शिक्षाव्रत है और शिक्षाव्रतों का मुनिपद की प्राप्ति रूप जो उद्देश्य है, वही उद्देश्य इन प्रतिमाओं का भी है। इस ग्रन्थ में 546 गाथाएँ हैं।

भाषा- ग्रन्थ की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। दिगम्बर जैन आम्नाय में ज्यादातर ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। यह भाषा लोक व्यवहार की भाषा थी। इस भाषा में ग्रन्थ लिखे जाने का कारण ऐसा प्रतीत होता है, जिससे कि ज्यादा से ज्यादा लोग इसको समझकर आत्मकल्याण कर सकें।

संस्कृत भाषा विद्वानों की भाषा कही जाती है। प्राणी मात्र के कल्याण की भावना रखने वाले आचार्यों ने उसी भाषा में श्रावकाचार की रचना की, जिसको समझना सामान्य श्रावकों के लिए सरल था। प्राकृत भाषा का अपना अलग ही वैशिष्ट्य एवं मिठास है।

शैली- ग्रन्थ की शैली पद्यात्मक है। सम्पूर्ण ग्रन्थ गाथाओं में लिखा गया है। ग्रन्थ में लगभग 546 गाथाएँ हैं। जिनमें श्रावक के आचार व्यवहार का अद्भुत वर्णन है। उन्होंने सभी श्रावकों की शक्ति को ध्यान में रखकर यथाशक्ति व्रत पालन को निर्देश दिया है।

इस प्रकार यह सुन्दर, सुव्यवस्थित श्रावकाचार ग्रन्थ हम श्रावकों को दिशा-निर्देश में अत्यन्त सहायक है।

टव्वा टीका का
मंलगाचरण

इंद्र मुकट के रतन की, जोती हुई जलधार।
ताकरि सिंचे पद कमल, जिनके भवतपहार।। 1।।

केवलबोध प्रबोध करि, परकासे सहु तत्त्व।
सुकल सुध्यान विधान करि, टारे सकल अतत्त्व।। 2।।

श्रावक अर जति धर्म कौ, दीयो जिह उपदेस।
सुर नर मुनिवर गणधरा, ध्यावैं जाहि असेस।। 3।।

ताहि प्रणमि श्रावक धरम, भासौं श्रुती अनुसार।
श्रेणिक प्रति जाविधी प्रगट, भाष्यो श्री गणधार।। 4।।

मंगलाचरण का हिन्दी अर्थ

इंद्रो के मुकुट में जो रत्न लगे हुए हैं उनकी ज्योति की वर्षा के द्वारा जिनके चरण कमल सींचे जा रहे हैं अर्थात् ज्योति रूपी बरसात से चरण कमलों का प्रक्षालन हो रहा है एवं उससे संसार रूपी ताप दूर हो रहा है और केवलज्ञान के द्वारा जानकर जिसने सभी तत्त्वों को प्रकाशित किया है तथा शुक्ल ध्यान में लीन होकर जिन्होंने सारे अतत्त्वों को दूर किया है, श्रावक और यति धर्म का जिन्होंने उपदेश दिया है, देवता, मनुष्य, साधु और गणधर सभी जिसको ध्याते हैं उनको प्रणाम करके शास्त्रों में जिस प्रकार वर्णन किया गया है उसके अनुसार उसी प्रकार श्रावक धर्म को कहता हूँ जिस प्रकार श्रेणिक को गणधर ने कहा था।

सुरवइतिरीडमणिकिरणवारिधाराहिसित्तपयकमलं।
वरसयलविमलकेवलपयासियासेसतच्चत्थं।।1।।

सायारो णायारो भवियाणं जेण देसिओ धम्मो ।
णमिऊण तं जिणिंदं सावयधम्मं परूवेमो।। 2।।

टव्वाटीका-

सुरवइतिरीडमणि- सुरपती जे इंद्र तिह का जो मुकट त्याहं विषै जो मणी।

किरणवारिधारा- त्यांकी जो किरणि सोइ हुइ जल की धारा।

हिसित्त- निश्चै सेती तिहकर सींच्या छै।

पयकमलं- चरण कमल ज्यांहा का।

वरसयलविमलकेवल- अैसा श्री वीतराग देव कीसा छैं ते श्रेष्ठ अर सर्वथा निरमल जो केवलज्ञान तिंहकरि।

पयासियासेस- प्रकास्या छै समस्त तत्वां का।

तच्चत्थं- स्वरूप ज्यां है।

सायारो- गृहसथां संबंधी।

णायारो- तथा जती संबंधी।

भवियाणं- भविजीवां नैं।

जेण- जिहां भगवान

देसिओ धम्मो- उपदेस्यो धर्म।

णमिऊण- नमस्कार करि।

तं जिणिंदं- तिहां जिनेंद्र ने।

सावय धम्मं- अर श्रावक कौ धर्म।

परूवेमो- कहुं छूं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सुरपति इन्द्र के मुकुट में लगी हुई मणियों की किरण रूपी जलधारा से जिनेन्द्र भगवान के चरण कमल सिंचित है। उन वीतराग देव के सर्वश्रेष्ठ, सर्वथा निर्मल केवलज्ञान में समस्त तत्त्वों का स्वरूप प्रकाशित है। उन जिनेन्द्र भगवान ने भव्य जीवों के लिए मुनि एवं श्रावक धर्म का उपदेश दिया है। ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर श्रावक धर्म को कहता हूँ।

विउलइरि पव्वए णं इंदुभूइणा सेणियस्स जह दिट्ठं।
तह गुरुपरिवाडीए भणिज्जम्माणं णिसामेह।। 3।।

टव्वाटीका-

विउलइरि पव्वए णं- विपुलाचल परवत ऊपरि।

इंदुभूइणा- इंद्रभुत्ती जो गौतमस्वामी।

सेणियस्स- तिहां श्रेणीकि राजा नैं।

जह दिट्ठं- जिह भांति उपदेस्यौ।

तह- तिंह भांति।

गुरुपरिवाडीए- गुरां की परंपरा करि।

भणिज्जम्माणं- कहजे छै।

णिसामेह- सोधे सुणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

विपुलाचल पर्वत पर जिस प्रकार इन्द्रभूति गौतम गणधर ने राजा श्रेणिक को उपदेश दिया उसी प्रकार परम्परा से श्रावक धर्म का उपदेश कहता हूँ सुनो!

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राय भत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमण-उद्दिट्ठ-देसविरयम्मि।। 4।।

टव्वाटीका-

दंसण- प्रथम श्रावक कौ धर्म सम्यक्त की सुरक्षा।

वय- दुजो व्रत।

सामाइय- तीजो समायक।

पोसह- चौथौ पोसह।

सचित्त- पांचमौ सचित्त त्याग।

राय भत्ते य- छठौ रात्रि भोजन त्याग।

बंभारंभ- सातमौ कुस्सील त्याग, आठमौं आरम्भ त्याग।

परिग्गह- नवमौं परीग्रह त्याग।

अणुमण- दसमौं जगत कार्य का उपदेस कौ त्याग।

उद्दिट्ठ-देसविरयम्मि- अग्यारमौं उडंड विहारी उपदेस्या आहार कौ त्याग।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पहला श्रावक धर्म में सम्यक्दर्शन, दूसरा व्रत, तीसरा सामायिक, चौथा प्रोषधोपवास, पांचवां सचित्त त्याग, छठा रात्रि भोजन त्याग, सातवां कुशील त्याग, आठवां आरम्भ त्याग, नौवां परिग्रहत्याग, दसवां अनुमति त्याग और ग्यारहवाँ उद्दिष्ट त्याग ये ग्यारह व्रत कहे हैं।

एयारस ठाणाइं सम्मत्तविवज्जियस्स जीवस्स।
जम्हा ण संति तहा सम्मत्तं सुणह वोछामि।। 5।।

टव्वाटीका-

एयारस ठाणइं- ए एकादस सरधानक श्रावक का छैं ते।

सम्मत्त- सम्यक्त।

विवज्जियस्स जीवस्स- रहीत जीव कै।

जम्हा ण संति- जातैं न हौंहि निरवृत्ति का कारण।

तम्हा सम्मत्तं सुणह वोच्छामि- तातैं सम्यक्त कौ स्वरूप सुणौं हुं कहुं छुं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उपर्युक्त ग्यारह स्थान निर्वृत्ति का कारण है, जो सम्यक्त्व रहित जीव के नहीं होते। इसलिए सम्यक्त्व का स्वरूप कहता हूँ सुनो!

अत्तागमतच्चाणं जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।
संकाइदोसरहियं तं सम्मत्तं मुणेयव्वं।। 6।।

टव्वाटीका-

अत्तागमतच्चाणं- देव शास्त्र अर तत्वां कौ।

जं सद्दहणं सुणिम्मलं होइ- जो श्रद्धान निर्मल होइ।

संकाइदोसरहियं- संकादि दोषां सौं रहीत।

तं सम्मत्तं मुणेयव्वं- तिहनैं सम्यक्त जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देव, शास्त्र और तत्त्वों का शंकादि दोषों से रहित जो निर्मल श्रद्धान होता है, उसे सम्यक्त्व जानना चाहिए।

अत्ता दोसविमुक्को पुव्वापरदोसविज्जियं वयणं।
तच्चाइं जीवदव्वादियाइं समयाहि णेयइ।। 7।।

टव्वाटीका-

अत्ता दोसविमुक्को- देव श्री सर्वज्ञ वीतराग सौ क्षुधादि अठारा दोष रहित छैं।

पुव्वापरदोसविज्जियं वयणं- अर आदि सौं ले अंत परजंत हिंसादिक दोषांधी वरजित छ बचन जिहां का।

तच्चाइं जीवदव्वादियाइं- अर तत्व जीव द्रव्य नैं।

समयाहि णेयइ- आदि दे नव पदार्थ ते भगवंत भाषीत शास्त्रधी जाणना।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

क्षुदादि अट्टारह दोषों से रहित देव को आप्त कहते हैं। आदि से अंत पर्यन्त हिंसादि दोषों से रहित आप्त के वचन को आगम कहते हैं। जीव द्रव्य आदिक तत्त्व और नौ पदार्थों को भगवंत भाषित समय (शास्त्र) से जानना चाहिए।

छुह-तण्हा भय-दोसो राउ मोहो जरा रुजा चिंता।
मच्चू खेओस्सेओ अरइ मओ विम्हओ जम्मं।। 8।।

टव्वाटीका-

छुह- क्षुधा।

तण्हा- त्रिषा।

भय- भय।

दोसो- दोष।

राउ- राग।

मोहो- मोह।

जरा- बुढापौ।

रुजा- रोग।

चिंता- सोच।

मच्चू- मृत्यु।

खेओ- खेद।

स्सेओ- पसेव।

अरइ- अरति।

मओ- मद।

विम्हओ- आश्चर्य।

जम्मं- जनम।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

क्षुधा (भूख), तृषा (प्यास), भय, दोष, राग, मोह, बुढ़ापा, रोग, चिन्ता, मृत्यु, खेद (खिन्नता), पसीना, अरति, मद, आश्चर्य, जन्म, निद्रा।

णिद्दा तहा विसाओ दोसा एएहिं वज्जिओ अत्ता।
वयणं तस्स पमाणं सुत्तत्थपरूवयं जम्हा।। 9।।

टव्वाटीका-

णिद्दा- नीद्रा।

तहा- तथा।

विसाओ- विषाद।

दोसा एएहिं- दोष ए अठारा त्यांकरि।

वज्जिओ अत्ता- रहीत छैं वीतराग देव।

वयणं तस्स पमाणं- सो वचन तिहका ही प्रमाण छै।

सुत्तत्थपरूवयं जम्हा- अनादि सूत्र का अर्थ नैं प्ररूपै जातैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

निद्रा और विषाद इन अट्ठारह दोषों से रहित वीतराग देव हैं। इनके वचन ही प्रमाण हैं। यही अनादि सूत्र के अर्थ का प्ररूपण करने वाले हैं।

जीवाजीवासव-बंध-संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो।
एयाइं सत्त तच्चाइं सद्दहं तस्स सम्मत्तं।। 10।।

टव्वाटीका-

जीवाजीवासव- जीव अजीव आश्रव।

बंध- बंध।

संवरो- संवर।

णिज्जरा- निर्जरा।

तहा मोक्खो- तथा मोक्ष।

एयाइं सत्त तच्चाइं- ए प्रत्यक्ष सप्त तत्व छैं यांकी जो।

सद्दहं तस्स- श्रद्धा करैं तिहकै।

सम्मत्तं- सम्यक दर्शन हौय।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये सप्त तत्त्व हैं, इनका श्रद्धान करना ही सम्यक्दर्शन कहलाता है।

जीवतत्त्व-वर्णन

सिद्धा संसारत्था दुविहा जीवा जिणेहिं पण्णत्ता।
असरीरा णंतचउट्ठयंणिया णिव्वुदा सिद्धा।। 11।।

टव्वाटीका-

सिद्धा- एक तौ सिद्धा रासि।

संसारत्था- एक संसार का जीवो की रासी।

दुविहा जीवा- दोय प्रकार का जीव।
जिणेहिं पण्णत्ता- जिनेश्वर देवां कह्यो छै।
असरीरा- तिह मध्ये सिद्ध रासि छै सो सरीर रहीत छे निराकार छैं।
णंतचउट्ठयंणिया- अर अनंतदरसन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य करी संयुक्त छैं।
णिव्वुदा सिद्धा- नीरवृत्ति रूप छै सिद्ध भगवान।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनेन्द्र भगवान ने दो प्रकार के जीव कहे हैं एक सिद्ध और दूसरे संसारी। इनमें जो सिद्ध हैं, वे शरीर रहित हैं, निराकार हैं, अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य से युक्त हैं तथा जन्म-मरण से निवृत्ति रूप हैं।

संसारत्था दुविहा थावर-तसभेददो मुणेयव्वा।
पंचविह थावरा खिदिजलग्गिवाऊ वणप्फइणो।। 12।।

टव्वाटीका-
संसारत्था दुविहा- अर संसार का जीव दोय प्रकार छै।
थावर-तसभेददो मुणेयव्वा- थावर अर त्रस का भेद थकी ते जांणिवा।
पंचविह थावरा- त्यांमै थावर पांच प्रकार छैं।
खिदिजलग्गिवाऊ वणप्फइणो- प्रथ्वी, जल, अगनि, वायु अर वनसपतीकायक त्यां मध्ये ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

संसारी जीव भी दो प्रकार के हैं स्थावर और त्रस। स्थावर जीव पांच प्रकार के हैं- पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक।

पज्जत्तापज्जत्ता वायर-सुहुमा णिगोय णिच्चियरा।
पत्तेय-पइट्ठियरा थावरकाया अणेयविहा।। 13।।

टव्वाटीका-
पज्जत्तापज्जत्ता- परजापत अपरजापत।
वायर-सुहुमा- बादर सूक्ष्म।
णिगोय णिच्चियरा- अर निगोदनित्य तथा इतर।
पत्तेय-पइट्ठियरा- अर प्रत्येक वनासपती मांही सुप्रतिष्ठ तथा अप्रतिष्ठ।
थावरकाया- ई भांति थावर काय।
अणेयविहा- अनेक प्रकार जांणिवा।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

स्थावरजीव पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर, सूक्ष्म, नित्य-निगोद, इतर निगोद, प्रतिष्ठितप्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक अनेक प्रकार के जानने चाहिए।

बि-ति-चउ-पंचेंदियभेयओ तसा चऊविहा मुणेयव्वा।
पज्जत्तियरा सण्णियारविभेया हुंति बहुभेया।। 14।।

टव्वाटीका-

बि-ति-चउ-पंचेंदियभेयओ तसा- बहुरि वेइंद्री, तेइंद्री, चउइंद्री तथा पंचेइंद्री का भेद थकी त्रस का जीव।
चऊविहा मुणेयव्वा- च्यारि प्रकार जाणनें सो।

पज्जत्तियरा- परजापत तथा अपरजापत।
सण्णियारविभेया- सैंनी असैंनी ईभांति।
हुंति बहुभेया- सो त्रस जीवां का भेद होंहि छै बहुत प्रकार का।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

द्वीन्द्रिय, त्रन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के भेद से त्रस जीव चार प्रकार के जानने चाहिए पर्याप्त, अपर्याप्त, संज्ञी, असंज्ञी आदि त्रस जीवों के अनेक भेद होते हैं।

आउ-कुल-जोणि-मग्गण-गुण-जीओवओग-पाण-सण्णइ।
णाऊण जीवदव्वं सद्दहणं होइ कायव्वं।। 15।।

टव्वाटीका-
आउ- आयु।
कुल- कुल।
जोणि- जोनी।
मग्गण- मार्गणा।
गुण- गुण।
जीओवओग- जीवसमास उपजोग।
पाण- प्राण।
सण्णइ- संज्ञा।

णाऊण जीवदव्वं- यां विषै जाणि करि जीव द्रव्य नैं।
सद्दहणं होइ कायव्वं- श्रद्धान करणौं जोग्य छै भव्य जीवां नैं।

यो जीव तत्त्व कौ स्वरूप कह्या

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

भव्य जीवों को आयु, कुल, योनि, मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवसमास, उपयोग, प्राण, संज्ञा के द्वारा जीव द्रव्य को जानकर श्रद्धान करना चाहिए। यह जीव द्रव्य का स्वरूप कहा है।

अजीवतत्त्व-वर्णन

दुविहा अजीवकाया उ रूविणो अरूविणो मुणेयव्वा।
खंध देस-पएसा अविभागा रूविणो चदुधा।। 16।।

संयलं मुणेह खंधं अद्धं देसो पयेसमद्धद्धं।
परमाणू अविभागी पुग्गलदव्वं जिणुद्दिट्ठं।। 17।।

टव्वाटीका-
दुविहा अजीवकाया उ- वहुरि अजीव काय दो प्रकार छै।
रूविणो- एक रूप छै।
अरूविणो मुणेयव्वा- एक अरूपी छै सो जाणिवा, पुदगल द्रव्य रूपी छै और धर्म, अधर्म, काल, आकास अरूपी छैं।
खंधा देस-पएसा- अर रूपी विषै।

अविभागी रूविणो चदुधा- एक बंध, एक बंध देस, एक बंध प्रदेस, एक परमाणू अवीभागी एवं 4 भेद छै सो।
संयलं मुणेह खंधं- परमाणवां का समूह करि पूरण तिहनैं बंध जाणौं अर।
अद्धं देसो- बंध को आधौ सो बंधदेस छै।
पयेसमद्धद्धं- अर बंध देस कौ आधौ बंध प्रदेस छै।
परमाणू अविभागी- अर परमाणू अविभागी छै तिहकौ एक भाग सौं दूजौ भाग न होय।
पुग्गलदव्वं जिणुद्दिट्ठं- ई भांति पुद्गल द्रव्य नैं जिनेश्वर देव च्यारि प्रकार दिखायो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अजीव द्रव्य दो प्रकार का है। 1. रूपी 2. अरूपी। पुद्गल द्रव्य रूपी है तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल अरूपी हैं। इनमें रूपी अजीव द्रव्य को बंध, देश, प्रदेश और अविभागी के भेद से चार प्रकार का जानना चाहिए।16।

परमाणुओं के समूह से पूर्ण पुद्गल द्रव्य को बंध, बंध के आधे भाग को देश, देश के आधे भाग को प्रदेश कहते हैं। परमाणु अविभागी है। उसका एक भाग से दूसरा भाग नहीं हो सकता। इस प्रकार जिनेश्वर देव ने पुद्गल द्रव्य चार प्रकार का कहा है।17।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय-कम्म-परमाणू।
अईथूलथूलथूलं सुहुमं सुहुमं च अइसुहमं।। 18।।

टव्वाटीका-
पुढवी- प्रथ्वी।
जलं च- जल।
छाया- बहुरि छाया।
चउरिंदियविसय- तथा कान विना च्यारि इंद्री का विषय।
कम्म- तथा कर्म वरगणा।
परमाणू- अर परमाणू ए भेद 6
अईथूल- प्रथ्वी कहता पाषाण त्रिण काण्टादिक ते वादर वादर कह जैं।
थूल- जल घी तेल इत्यादि वादर कहजे।
थूलं- छाया धूप चांदिनी इत्यादि वादर सूक्ष्म कहजे दीखवा मैं वादर ग्रहवा मैं सूक्ष्म छै।
सुहुमं- अर च्यारि इंद्रीयां का विषय ग्रहवा मैं आवै अर दीखवा मैं न आवे तिहस्यौं सूक्ष्म वादर कह जैं।
सुहमं- बहुरि कर्म वर्गणा नैं सूक्ष्म कहजे।
च अइसुहमं- अर परमाणू नैं सूक्ष्मसूक्ष्म कहजै, काहेतैं जो इंद्रीयां सों अगौचर छैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अतिस्थूल (बादर-बादरद्), स्थूल (बादर), स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म इस प्रकार पृथ्वी आदि के छह भेद कहे हैं। ये इस प्रकार हैं- पृथिवी पाषाण, तिनका, कांटा आदि अतिस्थूल बादर-बादर हैं, जल, घी, तेल इत्यादि बादर या स्थूल है। छाया स्थूल-सूक्ष्म है। चार इन्द्रियों के विषय स्पर्श, रस, गंध और शब्द ग्रहण करने में स्थूल हैं और दिखने में सूक्ष्म हैं अतः सूक्ष्म-स्थूल हैं। कर्म वर्गणा सूक्ष्म हैं तथा परमाणु जो दृष्टिगोचर नहीं हैं वे सूक्ष्म-सूक्ष्म हैं।

चउविहमरूविदव्वं धम्माधम्मंवराणि कालो य।
गइ-ठाणुग्गहणलक्खणाणि तह वट्टणं गुणो य।। 19।।

टव्वाटीका-

चउविहमरूविदव्वं- अर च्यारि प्रकार का अजीव द्रव्य अरूपी कह्या, ते किसां सो सुणौं।
धम्माधम्मंवराणि- धर्म अधर्म आकास।
कालो य- वहुरि काल अर त्यां च्यारयां का गुण किसा।
गइ-ठाणुग्गहणलक्खणाणि- धर्म द्रव्य विषै गुण गति सहाई, अधर्म विषै थिति सहाई, आकास विषै अवकास प्रदान लक्षण।
तह वट्टठणं गुणो य- तथा काल विषै वर्तना गुण जो सर्व द्रव्यां की परिणति नैं निमित्त रूप सहाई छैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चार प्रकार का अजीव द्रव्य अरूपी है- धर्म, अधर्म, आकाश और काल। धर्मास्तिकाय का लक्षण गति, अधर्मास्तिकाय का लक्षण स्थिति, आकाश का लक्षण अवगाहन तथा काल का लक्षण वर्तना है, जो सभी द्रव्यों की परिणति में निमित्त रूप से सहायक है।

परमत्थो ववहारो, दुविहो कालो जिणेहिं पण्णत्तो।
लोयायासपएसट्ठियाणवो मुक्खकालस्स।। 20।।

टव्वाटीका-
परमत्थो- एक निश्चै काल।
ववहारो- एक व्यवहार काल।
दुविहो- ई भांति दोय प्रकार।
कालो- काल कौ स्वरूप।
जिणेहिं पण्णत्तो- जिनरेश्वर देवां कह्यो छै।
लोयायासपएसट्ठियाणवो- लोकाकास का प्रदेसां विषै तिष्ठै छै।
मुक्खकालस्स- कालाणू निश्चै काल की।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनेश्वरदेव ने काल का स्वरूप दो प्रकार का कहा है, एक निश्चयकाल और दूसरा व्यवहार काल। निश्चयकाल के कालाणु लोकाकाश के प्रदेशों पर स्थित है।

***गोणसमयस्स एए कारणभूदा जिणेहि णिद्दिट्ठा ।**
तीदाणागदभूओ ववहारो णंतसमओ य।। 21।।

टव्वाटीका-
गोणसमयस्स- व्यवहारकाल का।
एए कारणभूदा- एक प्रत्यक्ष असंख्यात कालाणू कारणभूत छै समय पर्याय नैं।
जिणेहि णिद्दिट्ठा- अर निश्चै स्वरूप जिनेंद्र भगवान ई भांति कही छै।
तीदाणागदभूओ- अर अतीत अनागत वरतमान रूप।
ववहारो णंतसमओ य- व्यवहार काल छै सो अनंत समय छै, निश्चै काल कारणभूत द्रव्य छै अर व्यवहार काल कार्यरूप पर्याय छै निश्चै काल की।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनेन्द्र भगवान ने असंख्यात कालाणुओं को व्यवहार काल का कारणभूत कहा है। अतीत अनागत वर्तमान रूप व्यवहारकाल अनंत समय का कहा गया है। निश्चयकाल कारणभूत द्रव्य है और व्यवहारकाल निश्चयकाल की कार्यरूप पर्याय है।

---

*गाथा नं. 21 में पाण्डुलिपि में 'गोणसमयस्स' शब्द छूट गया है।

परिणमि-जीव-मुत्ताइएहिं णाऊण दव्वसब्भावं।
जिणवयणमणुसरंतेहि थिरमई होइ कायव्वा।। 22।।

टव्वाटीका-

परिणमि- परिणामी छहौं द्रव्यां मैं कुण, अर अपरणामी कुण।

जीव- बहुरि छै द्रव्य मैं अजीव के अर जीव के।

मुत्ताइएहिं- तथा छह द्रव्यां मैं मूरतीक कुण, अर अमूरतीक कुण इत्यादि भेद विज्ञान सेती।

णाऊण दव्वसब्भावं- जाणि करि द्रव्यां का सत्य सुभाव नैं।

जिणवयणमणुसरंतेहि- अर जिन वचन नैं धरतां त्यांकां निश्चै करि।

थिरमई होइ कायव्वा- निश्चल बुद्ध जोग्य छै करणी भव्य जीवां नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

छहों द्रव्यों के परिणामी, अपरिणामी, अजीव, जीव, मूर्तिक, अमूर्तिक इत्यादि भेद-विज्ञान से द्रव्यों का सत्य स्वभाव जानकर भव्य जीवों को जिनवचन में निश्चल अर्थात् स्थिर बुद्धि करनी चाहिए।

परिणमि जीव मुत्तं सपदेसं एयखित्त किरिया य।
णिच्चं कारणकत्ता सव्वगदमियरम्हि अपवेसो।। 23।।
दुण्णि य एयं एयं पंच य तिय एय दुण्णि चउरो य।
पंच य एयं एयं मूलस्स हि उत्तरे णेयं।। 24।।

टव्वाटीका-

परिणमि- स्वभावपरणति नैं तौ सारा ही द्रव्य परणमै छैं, परंतु विभाव परणति का परणामी बाला द्रव्य कुण अर न परणमिवा वाला कुण।

जीव- तथा जीव कुण अर अजीव कुण।

मुत्तं- मूरतीक कुण अर अमूरत कुण।

सपदेसं- सप्रदेसी कुण अर अप्रदेसी कुण।

एयखित्त- एक कुण अर अनेक कुण क्षेत्री कुण अर अक्षेत्री कुण बहुरि।

किरिया य- स्वभाव क्रिया तौ सारां ही मै छैं परंतु विभाव क्रिया का धारी कुण अर नही कुण।

णिच्चं- द्रव्यार्थिक नय करतौ सारा ही नित्य छै पर्यायार्थिक नय करि सारा अनित्य छै परंतु विभाव पर्याय करि मरिवा वाला कुण अर न मरिवा वाला कुण।

कारणकत्ता- छ द्रव्यां मैं कुणौं नै कारण अर कुण न कारण कुण, अर स्वभाव परिणाम का करता तौ सारा ही छै परंतु विभाव का करता के अर अकरता के।

सव्वगदमियरम्हि- अर छह द्रव्यां मैं सरवगत कुण अर असरवगत कुण।

अपवेसो- निश्चै विचारतां कोई ही कहीमैं प्रवेस न करै छै, सारा द्रव्य आपणां आपणां स्वभाव नैं लीयां छै।

ए सिष्य प्रश्न कीया त्यां कौ गुर उत्तर कहै छै हे सिष्य तैं पूछी

दुण्णि य- विभाव परिणाम का परिणमवा वाला कुण सो विभाव परिणाम का परिणमवा वाला दोय छै एक जीव, एक पुद्गल और 4 अपरणामी छै।

एयं- अर छह मैं जीव एक ही छै और पुदगल, धर्म, अधर्म, आकास, काल ए 5 अजीव छै।

एयं- मूरतीक एक पुदगल ही छै और 5 अमूरती छै।

पंच य- बहुरि पांच बहु प्रदेसी छै, एक काल द्रव्य एक प्रदेसी छै।

तिय- धर्म, अधर्म, आकास 3 एक छै, अर जीव द्रव्य, पुदगल द्रव्य, काल ए 3 अनेक छै।

एय- क्षेत्र 1 आकास छै और 5 अक्षेत्र छैं।
दुण्णि- क्रियावंत जीव, पुदगल 2 छै और 4 अक्रीय छै।
चउरो य- जीव पुदगल विभाव मरण की अपेक्षा अनित्य छै और 4 नित्य छै।
पंच य- जीव नैं 5 द्रव्य कारण छै, जीव कहीनैं कारण नहीं।
एयं- करता 1 जीव ही छै काहेतैं जो करउति का फल भोगवै छै और भोक्ता नही तीसौं करता भी न कह्या।
एयं- सरवगत आकास ही छै प्रदेसां की अपेक्षा।
मूलस्स य- अर ज्ञान की अपेक्षा जीव भी छै और सारा असरवगत छै मूल प्रश्न जो कीया छै।
उत्तरे णेयं- हे शिष्य तैं तीहकौ यो उत्तर जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

स्वभाव परिणति रूप तो सभी द्रव्य परिणमित होते हैं परन्तु विभाव रूप परिणमित होने वाले द्रव्य कौन हैं और कौन नहीं? जीव कौन है और अजीव कौन है? मूर्तिक कौन है और अमूर्तिक कौन है? सप्रदेशी कौन है और अप्रदेशी कौन है? एक कौन है और अनेक कौन है? क्षेत्रवान कौन है और अक्षेत्रवान कौन है? तथा स्वभाव क्रिया तो सभी में है परन्तु विभाव क्रिया का धारक कौन है और कौन नहीं? द्रव्यार्थिक नय से तो सभी नित्य है, पर्यायार्थिक नय से सभी अनित्य है परन्तु विभाव पर्याय से करने वाला कौन है और नहीं करने वाला कौन है? छह द्रव्यों में किसका कारण कौन है? स्वभाव परिणाम के कर्ता तो सभी हैं परन्तु विभाव का कर्ता और अकर्ता कौन है? छह द्रव्यों में सर्वगत कौन है और असर्वगत कौन है? निश्चय से विचार करने पर कोई भी द्रव्य किसी में प्रवेश नहीं करता है। सभी द्रव्य अपने-अपने में लीन हैं।। 23।।

यहाँ पूर्वोक्त गाथा में शिष्य द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर गुरु कहते हैं-

विभाव रूप परिणमित होने वाले द्रव्य दो हैं एक जीव और एक पुद्गल, शेष चार विभाव रूप अपरिणामी हैं। छह द्रव्यों में से जीव एक ही है और शेष पुद्गलादि पाँचों अजीव हैं। मूर्तिक द्रव्य एक पुद्गल ही है शेष पाँचों द्रव्य अमूर्तिक हैं। बहुप्रदेशी द्रव्य पांच हैं, केवल एक कालद्रव्य ही एक प्रदेशी है। धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक-एक हैं और जीव, पुद्गल, काल ये तीन द्रव्य अनेक-अनेक हैं। एक आकाश द्रव्य ही क्षेत्रवान हैं बाकी के सभी पाँच द्रव्य अक्षेत्र हैं। क्रियावान द्रव्य जीव और पुद्गल ये दो हैं, शेष चार द्रव्य अक्रियावान हैं। जीव और पुद्गल विभाव मरण की अपेक्षा अनित्य हैं और शेष चार द्रव्य नित्य हैं। जीव को पाँचों द्रव्य कारण हैं पर जीव किसी के लिए कारण नहीं है। जीव ही कर्म का फल भोगता है और उसका कर्ता भी है। आकाश द्रव्य ही प्रदेश की अपेक्षा सर्वगत है किन्तु ज्ञान की अपेक्षा जीव भी सर्वगत है शेष सभी द्रव्य असर्वगत हैं।
हे शिष्य तेरे प्रश्नों का इस प्रकार उत्तर जानना।। 24।।

सुहामा अवायविसया खणखइणो अत्थपज्जया दिट्ठा।
वंजणपज्जाय पुण थूला गिरगोयरा चिरविवत्था।। 25।।

टव्वाटीका-

सुहामा अवायविसया खणखइणो- आगैं कहै छै जो पर्याय दोय प्रकार छै एक अर्थ पर्याय एक व्यंजन पर्याय। सो अर्थ पर्याय तौ छह ही द्रव्यां कै छै, अर व्यंजन पर्याय जीव पुदगल दोय ही कै छै, च्यारि कै नहीं। सो अर्थ पर्याय कौ स्वरूप कहै छै अर्थ पर्याय छै सो माहासूक्ष्म छै, अर वचन-गोचर नहीं, अर समय समय उपजै विनसै छै।

अत्थपज्जया दिट्ठा- अर्थ पर्याय कौ स्वरूप भगवान इसौ दिखायो।

वंजणपज्जाय पुण- वहुरि व्यंजन पर्याय छै कैसो।
थूला- थूल छै अर।
गिरगोयरा- वचन गौचर छै।
चिरविवत्था- अर आयु प्रमाण काल तक रहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पर्याय के दो भेद कहे गये हैं। 1. अर्थ पर्याय 2. व्यंजन पर्याय। अर्थ पर्याय तो छहों द्रव्यों के है किन्तु व्यंजन पर्याय जीव और पुद्गल दो के ही है। चार द्रव्यों के नहीं है। अतः अर्थ पर्याय का स्वरूप कहते हैं। अर्थ पर्याय महासूक्ष्म है, वचन गोचर नहीं है अर्थात् इसको शब्द से नहीं कहा जा सकता है। इसकी क्षण-क्षण में उत्पत्ति और विनाश होता है अर्थात् यह स्थायी नहीं है। व्यंजन पर्याय का स्वरूप कहते हैं कि यह स्थूल है तथा वचन, गोचर है। यह आयु प्रमाण काल तक रहती है अर्थात् यह चिर-स्थायी है।

परिणामजुओ जीओ गइगमणुवलंभओ असंदेहो।
तह पुग्गलो य पाहणपहुइ-परिणामदंसणो णोओ।। 26।।

टव्वाटीका-
परिणामजुओ जीओ- रागादि परिणामां करि युक्त जो जीव सो।
गइगमणुवलंभओ- गति का गमन नैं प्राप्त होय छै।
असंदेहो- निसंदेह।
तह पुग्गलो य पाहण- अर त्योंही पुद्गल द्रव्य छै सो भी पाषाण नैं आदि दे आपणां व्यंजन।
पहुइ-परिणाम- पर्याय रूप परिणाम।
दंसणो णोओ- त्यांका देखिवा करि जाणौं परिणामी अर गमन स्वभाव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव रागादि परिणामों से युक्त है अर्थात् परिणामी है, क्योंकि उसका स्वर्ग, नरक आदि गतियों में गमन पाया जाता है। इसी प्रकार पाषाण, मिट्टी आदि स्थूल पर्यायों का भी परिणमन देखा जाता है। अतः पुद्गल को भी परिणामी और गमन स्वभाव वाला जानना चाहिये।

वंजणपरिणइविरहा धम्मादीआ हवे अपरिणामा।
अत्थपरिणाममासिय सव्वे परिणामिणो अत्था।। 27।।

टव्वाटीका-
वंजणपरिणइविरहा- अर व्यंजन पर्याय की परणति सौं रहित।
धम्मादीआ- धर्मादिक कहतां धर्म, अधर्म, काल, आकास ए 4 द्रव्य।
हवे अपरिणामा- होइ छै अपरिणामी।
अत्थपरिणाममासिय- अर अर्थ पर्याय का परिणामां नैं अंगीकार करि।
सव्वे परिणामिणो अत्था- सगला ही परिणामी छै पदारथ।

भावार्थ- अर्थ पयार्य जो समै समै द्रव्य की स्वभाव परिणति, सो तौ छहौं द्रव्यां मैं ही छै। अर व्यंजन पर्याय दोय ही द्रव्यां कै छै जीव कै अर पुदगल कै। सो पुदगल कै तौ बंध रूप व्यंजनपर्याय जाणौं अर जीव कै नर, नारकादि शरीर व्यंजन पर्याय जाणौं। सो व्यंजन पर्याय की अपेक्षा तौ दोय ही परीणामी छै अर अर्थ पर्याय की अपेक्षा सारा ही परिणांमी छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल ये चार द्रव्य व्यंजन पर्याय की परिणति से रहित हैं। अतः ये अपरिणामी कहलाते हैं। अर्थ पर्याय की अपेक्षा सभी द्रव्य परिणामी हैं। अर्थात् अर्थ पर्याय तो समय-समय पर द्रव्य की स्वभाव परिणति से परिणमन करती है वह सभी छः द्रव्यों में है। व्यंजन पर्याय दो ही द्रव्यों की है जीव और पुद्गल। अतः पुद्गल के तो बंध रूप व्यंजन पर्याय जाननी चाहिए तथा जीव के नर, नारकादि शरीर व्यंजन पर्याय जाननी चाहिए। अतः व्यंजन पर्याय की अपेक्षा दो ही परिणामी हैं और अर्थ पर्याय की अपेक्षा सभी द्रव्य परिणामी हैं।

जीवो हु जीवदव्वं एक्कं विय चेयणाचुया सेसा।
मुत्तं पुग्गलदव्वं रूवादिविलोयणा ण सेसाणि।। 28।।

टव्वाटीका-

जीवो हु जीवदव्व- अर जीव द्रव्य ही जीव छै और पांच द्रव्य अजीव छै।
एक्कं- छह द्रव्यां मध्ये एक ही चेतन छै।
विय चेयणाचुया सेसा- बहुरि चेतना रहीत छै बाकी पांचौं ही द्रव्य।
मुत्तं पुग्गलदव्वं- अर मुरतीक एक पुदगल द्रव्य ही छै और सारा जीव नै आदि दे अमूरतीक छै।
रूवादिविलोयणा ण- रूपादि रहित छै दृष्टिगोचर न छै।
सेसाणि- बाकी पांचौं ही सगला जीव धर्म, अधर्म, आकास, काल ए अरूपी छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

एक जीव द्रव्य ही चेतन है और पांच द्रव्य अचेतन हैं। अर्थात् जीव द्रव्य में जीव ही चेतना सहित है अन्य पांच चेतना रहित हैं। छः द्रव्यों में एक पुद्गल द्रव्य ही मूर्तिक है अन्य पांच द्रव्य अमूर्तिक हैं। पुद्गल द्रव्य में रूप, रस, गंधादि पाये जाते हैं अतः रूपी हैं अन्य पांच द्रव्य जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अरूपी हैं।

सपएस पंच कालं मुत्तूण पएससंचया णेया।
अपएसी खलु कालो पएसबंधच्चुई जम्हा।। 29।।

टव्वाटीका-

सपएस पंच- अर सप्रदेस कहतां बहुप्रदेसी जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, आकास ए पंच द्रव्य छै। एक-एक जीव कै असंखि प्रदेस छै, अर धर्म कै असंख्यात छै, अधर्म कै भी असंख्यात प्रदेस छै, अर आकास कै लोकाकास की अपेक्षा असंख्यात ही छै, अर अलोक की अपेक्षा अनंत प्रदेस छै। अर पुद्गल के परमाणू की अपेक्षा एक प्रदेस छै, अर बंध की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेस छै।

कालं मुत्तूण- काल द्रव्य एक प्रदेसी छै तीस्यौं अप्रदेसी कहजै, काल विना पांच सप्रदेसी जाणना।
पएससंचया- प्रदेसां का समूह।
णेया- जाणौं पंचास्तिकाय कै।
अपएसी खलु कालो- अप्रदेसी छै निश्चै सेती काल द्रव्य, तातैं पंचास्तिकाय मैं नहीं छह द्रव्यां मैं छैं।
पएसबंधच्चुई जम्हा- प्रदेसां का समूह की रहितता छै काल कै जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पांच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। जीव के असंख्य प्रदेश हैं, धर्म के असंख्यात प्रदेश हैं और अधर्म के भी असंख्यात प्रदेश हैं। आकाश के लोकाकाश की अपेक्षा असंख्यात प्रदेश हैं और अलोकाकाश की अपेक्षा अनंत प्रदेश हैं। पुद्गल द्रव्य के परमाणु की अपेक्षा एक प्रदेश है और बंध की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात

और अनंत प्रदेश हैं। काल द्रव्य एकप्रदेशी है, अतः अप्रदेशी कहलाता है। अन्य पाँच द्रव्य सप्रदेशी कहलाते हैं। अतः पांच द्रव्यों को अस्तिकाय जानना चाहिए। पंचास्तिकाय में काल द्रव्य नहीं आता। काल द्रव्य प्रदेशों से रहित है, अतः अस्तिकाय में नहीं आता।

धम्माधम्मागासा एगसरूवा पएसअविओगा।
ववहारकाल-पुग्गल-जीवा हु अणेयरूवा ते।। 30।।

टव्वाटीका-

धम्माधम्मागासा एगसरूवा- धर्म, अधर्म, आकास ए तीन द्रव्य एक स्वरूप छै अर एक एक ही छै।

पएसअविओगा- प्रदेसां कौ नहीं छै वियोग ज्यांह कै सदा प्रगट छै प्रदेस ज्यांह का, संकोच विस्तार रूप नहीं हौंहि छै।

ववहारकाल-पुग्गल- अर व्यवहार काल तथा पुद्गल।

जीवा हु- अर जीव ए तीन द्रव्य।

अणेयरूवा ते- अनेक रूप छैं, ते जीव तौ अनंत छैं, पुदगल परमाणू अनंतानंत छैं, अर निश्चैकालाणू असंख्यात छैं, अर व्यवहार काल समय रूप अनंतौ छै। अर जीव पुदगल कै प्रदेसां कौ संकोच विस्तार छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य एक स्वरूप हैं अर्थात् इनका स्वरूप या आकार बदलता नहीं। इनके प्रदेशों का संकोच और विस्तार नहीं हेता ये समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं। व्यवहार, काल और पुद्गल ये तीन द्रव्य अनेक रूप हैं अर्थात् वे अनेक रूप धारण करते हैं। जीव तो अनंत हैं, पुद्गल परमाणु अनंतानंत है और निश्चय कालाणु असंख्यात हैं और व्यवहार काल समय रूप अनंत है। जीव और पुद्गल के प्रदेशों का संकोच और विस्तार है।

आगासमेव खित्तं अवगाहणलक्खणे जदो भणियं।
सेसाणि पुणोऽखित्तं अवगाहणलक्खणाभावा।। 31।।

टव्वाटीका-

आगासमेव खित्तं- आकास द्रव्य कै ही क्षेत्र छै।

अवगाहणलक्खणे- अवगाहन लक्षण।

जदो भणियं- जातैं कह्यो एक आकास ही क्षेत्री।

सेसाणि पुणोऽखित्तं- बाकी आकास विना पांच द्रव्य अक्षेत्री छै।

अवगाहणलक्खणाभावा- अवगाहन नामा लक्षण का अभाव थकी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

आकाश द्रव्य ही क्षेत्रवान है क्योंकि उसमें अवगाहन लक्षण पाया जाता है। अन्य पांच द्रव्य क्षेत्रवान नहीं है क्योंकि उनमें अवगाहन लक्षण का अभाव है।

सकिरिय जीवा-पुग्गल गमणागमणाइ-किरियउवलंभा।
सेसाणि पुण वियाणसु किरियाहीणा तदाभावा।। 32।।

टव्वाटीका-

सकिरिय- क्रिया संयुक्त छै।

जीवा-पुग्गल- जीव अर पुद्गल।

गमणागमणाइ- गमन अर आगमन नैं आदि दे।

किरियउवलंभा- जो क्रिया त्यां का संयोग थकी।
सेसाणि पुण वियाणसु- बहुरि बाकी जे 4 द्रव्य, अधर्म, आकास, काल त्यांनैं जांणौं।
किरियाहीणा- क्रिया रहित।
तदाभावा- चलन हलनादि क्रिया का अभाव थकी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव और पुद्गल क्रियावान हैं। उनमें गमनागमन आदि क्रिया पाई जाती है। अन्य 4 द्रव्य धर्म, धर्म, अधर्म, आकाश और काल क्रिया रहित हैं। उनमें हलन, चलन, गमन, आगमन का अभाव पाया जाता है।

मुत्ता जीवं कायं णिच्चा सेसा पयासिया समये।
वंजणपरिणामचुया इयरे तं परिणइं पत्ता।। 33।।

टव्वाटीका-
मुत्ता जीवं कायं- छांडि करि जीव अर पुद्गल नैं।
णिच्चा सेसा पयासिया समये- बाकी धर्म अधर्म आकास काल च्यारयां ही नित्य द्रव्य छै सिद्धांत विषै
भावार्थ- जीव पुद्गल विभाव पर्याय का धारण थकी अनित्य भी छै और च्यारयां नित्य ही छै।
वंजणपरिणामचुया- अर्थ पर्याय संयुक्त तौ छहौं ही द्रव्य छै अर व्यंजन पर्याय थकी रहित छै च्यारयां धरमादिक।
इयरे तं परिणइं पत्ता- अर इतर कहतां जीव पुद्गल तिह व्यंजन पर्याय की परणति नै प्राप्त छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव और पुद्गल को छोड़कर बाकी 4 द्रव्य धर्म, अधर्म, आकाश और काल सिद्धान्त अथवा परमागम में नित्य कहे गये हैं। जीव और पुद्गल विभाव पर्याय धारण करने के कारण अनित्य भी हैं, अन्य चार द्रव्य नित्य ही हैं। छहों द्रव्य अर्थ पर्याय से संयुक्त है। चार द्रव्य व्यंजन पर्याय से रहित हैं किन्तु जीव और पुद्गल व्यंजन पर्याय सहित हैं। अतः परिणामी और अनित्य हैं।

जीवस्सुवयारकरा कारणभूया हु पंच दव्वांइं।
जीवो सत्ता भूओ सो ताणं ण कारणो होई।। 34।।

टव्वाटीका-
जीवस्सुवयारकरा- अर जीव नैं उपगार करणहारा।
कारणभूया हु पंच दव्वांइं- कारणभूत पांचौं ही द्रव्य छै।
जीवो सत्ता भूओ- तथा जीव द्रव्य विद्यमान भूत।
सो ताणं ण कारणो होई- सो त्यांह पांचां ही नैं कारण नहीं होइ छै तिहस्यौं जीव कारण रहित छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल पांचों ही द्रव्य जीव का उपकार करने के कारण कारणभूत हैं। जीव द्रव्य विद्यमान सत्तास्वरूप है। अतः किसी भी द्रव्य का कारण न होने से कारण रहित है।

कत्ता सुहासुहाणं कम्माणं फल भोयओ जम्हा।
जीवो तप्फलभोया भोया सेसा ण कत्तारा।। 35।।

टव्वाटीका-
कत्ता सुहासुहाणं- करता छै सुभ तथा असुभ रूप।

कम्माणं- कर्मों कौ अर।
फल- सुख दुख।
भोयओ जम्हा- फल कौ भोक्ता छै जातैं।
जीवो- जीव द्रव्य ही।
तप्फलभोया- त्यांह कर्मां कौ करता अर कर्मां का फल कौ भोक्ता कहजे।
भोया सेसा ण कत्तारा- बाकी पांचौ द्रव्य भोक्ता नहीं तिह कर्मा को करता भी नहीं ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव का स्वरूप बताते हुए आचार्य कहते हैं कि जीव शुभ और अशुभ रूप कर्मों को करता है और उन कर्मों के परिणाम रूप सुख और दुःख को भोगता है। अतः जीव कर्ता व भोक्ता है। अन्य पांच द्रव्य न कर्ता हैं और न भोक्ता हैं।

सव्वगदत्ता सव्वगमायासं णेय सेसगइ दव्वं।
अप्परिणामादीहि य बोहव्वा ते पयत्तेण।। 36।।

टव्वाटीका-
सव्वगदत्ता- सर्वगत भाव का धरिवा थकी।
सव्वगमायासं- सर्वगत एक आकास ही छै।
णेय सेसगइ दव्वं- नहीं वाकी पांचौं द्रव्य सर्वगत।
अप्परिणामादीहि य- ई भांति परिणामी अपरिणामी नैं आदि दे जे भेद त्यांह करि।
बोहव्वा ते पयत्तेण- जांणिवा ते छहौं द्रव्य यत्न करिकैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-
आकाश द्रव्य सर्वत्र पाया जाता है अतः वह सर्वगत है। अन्य पांचों द्रव्य सर्वगत नहीं हैं। इस प्रकार परिणामी, अपरिणामी के भेद कर छहों द्रव्यों को प्रयत्नपूर्वक जानना चाहिए।

णाण पवेसो वि तहा णेओ अण्णोण्णमणुपवेसेण।
णिय-णियभावं पि सया एगीहुंता वि ण मुयंति।। 37।।

टव्वाटीका-
णाण पवेसो वि तहा- यद्यपि व्यवहार नय करि ज्ञान कौ प्रवेस ज्ञेय विषैं छै तथापि।
णेओ अण्णोण्णमणुपवेसेण- जाणौं परसपर प्रवेस नहीं निश्चै सेती।
णिय-णिय- निज निज।
भावं पि सया- भावां नैं सदा काल।
एगीहुंता वि ण मुयंति- एक क्षेत्र विषै थका भी न तजैं छैं छह ही द्रव्य।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यद्यपि व्यवहार नय से ज्ञान का प्रवेश ज्ञेय में है। छहों द्रव्य एक-दूसरे में प्रवेश कर एक ही क्षेत्र में रहते हैं तथापि उनका एक-दूसरे में प्रवेश नहीं समझना चाहिए। ये सभी द्रव्य एक ही क्षेत्र में रहकर भी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

अण्णोण्णं पविसंता दिंता उग्गासमण्णमण्णेसिं।
मेल्लंता वि य णिच्चं सग-सगभावं ण वि चयंति।। 38।।

टव्वाटीका-

अण्णोण्णं पविसंता- परसपर प्रवेस करता संता भी।

दिंता उग्गासमण्णमण्णेसिं- अर देता थका अवकास आपस मैं।

मेल्लंता वि य णिच्चं- तथा मिल्या थका भी सदा काल।

सग-सगभावं ण वि चयंति- आपणों आपणों भावां नैं न तजैं छैं कोई ही कदाचित।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कहा भी है- छहों द्रव्य परस्पर प्रवेश करते हुए भी, एक-दूसरे को अवकाश देते हुए, सदा मिलते हुए भी कभी भी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।

यो अजीव तत्व कौ कथन कीयो आगैं आश्रव कहै छै

आस्रवतत्त्व वर्णन

मिच्छत्ताविरइ-कसाय-जोयहेदूहिं आसवइ कम्मं।
जीवम्हि उवहिमज्झे जह सलिलं छिद्दणावाए।। 39।।

टव्वाटीका-

मिच्छत्ता- मिथ्यात 5, एकांत 1, विपरीत 1, विनै 1, संसै 1, अज्ञान 1

विरइ कसाय- अविरति 12, छह काय का जीवां की हिंसा तथा पांच इंद्री, छठा मन कौ गिनतीवौ। अर कषाय 25, क्रोध, मान, माया, लोभ, अनंतानुबंधी संबंधी 4, अप्रत्याख्यान 4, प्रत्याख्यान 4, संज्वलन 4 एवं कषाय 16 तथा हास्य 1 रति 1 अरति 1 सोक 1 भय 1 जुगुप्सा 1 स्त्री वेद 1 पुरुष वेद 1 नपुंसक वेद 1 एवं नो कषाय ये कषाय 25।

जोयहेऊहिं- बहुरि जोग 15, मन का 4 वचन का 4 काय का 7 एवं 15 यों सत्तावन कारण करि।

आसवइ कम्मं- आश्रव होय छै कर्मा कौ।

जीवम्हि- जीव विषै।

उवहिमज्झे- समुद्र कै मध्य।

जह सलिलं- जैसे पानी आवे।

छिद्दणावाए- छिद्र का योग करि नाव विषै तैसैं कर्म आवै जीव विषै यों सत्तावन द्वारां करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार समुद्र के मध्य छेद वाली नाव में पानी आता है उसी प्रकार जीव के मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग से कर्मों का आस्रव होता है। मिथ्यात्व के 5 भेद हैं- 1. एकांत 2. विपरीत 3. विनय 4. संशय 5. अज्ञान। अविरति 12 है- छह काय के जीवों की हिंसा, पांच इन्द्रियां और छठा मन।

कषाय के 25 भेद हैं- अनंनतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। इस प्रकार ये 16 कषाय तथा 9 नोकषाय- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। कुल 25 कषाय हैं। योग 15 हैं- मन का 4, वचन का 4 और काय का 7 इस प्रकार ये 57 कारणों से जीव को कर्मों का आस्रव होता है।

बंधादितत्त्व-दर्पण

अरहंतभत्तियाइसु सुहोवओगेण आसवइ पुण्णं।
विवरीएण दु पावँ णिद्दिट्ठं जिवरिंदेहि।। 40।।

टव्वाटीका-

अरहंतभत्तियाइसु- तिह आश्रव का भेद एक शुभ एक असुभ अरहंत देव की भक्ति तथा।
सुहोवओगेण- जीव दया आदि सुभोपयोग करि।
आसवइ पुण्णं- आश्रवै छै पुण्य कर्म।
विवरीएण दु पावँ- अर कुदेवां की भक्ति तथा जीव हिंसादि करि आश्रवै छै पाप।
णिद्दिट्ठं जिवरिंदेहि- इसौ उपदेस दीयो छै जिनेन्द्र देवां।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस आस्रव के दो भेद हैं- एक शुभास्रव, दूसरा अशुभास्रव। अरहंत भगवान की भक्ति तथा जीव दया अहिंसादि शुभ क्रियायों से शुभोपयोग कर पुण्य कर्म का आस्रव होता है। कुदेवों की भक्ति तथा जीवहिंसादि अशुभोपयोग या पाप क्रियाओं से पाप कर्म का आस्रव होता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है।

यो आश्रव कौ व्याख्यान कहयो आगैं बंध कौ वरणन करे छै

बंधतत्त्व-वर्णन

अण्णुण्णाणपवेसो जो जीवपएसकम्मखधाणं।
सो पयडि- ट्ठिदि-अणुभव-पएसदो चउविहो बंधो।। 41।।

टव्वाटीका-

अण्णुण्णाणपवेसो- अन्योन्य कहताँ माहो माहि मिलाप होइवौ।
जो जीवपएसकम्मखधाणं- जो जीव का प्रदेसां सेती कर्म वर्गणा रूप पुदगल बंध कौ।
सो पयडि-ट्ठिदि-अणुभव- सो बंध कहीजे प्रकृति बंध 1 स्थिति बंध 1 अनुभाग बंध।
पएसदो- प्रदेस बंध 1 यां भेदां थकी।
चउविहो बंधो- चउविहो बंधो कहतां होय छै च्यारि प्रकार कौ बंध।

भावार्थ- आठ ही कर्म आपणी आपणी प्रकति कहतां स्वभाव तिहनैं लीयां बंधै सो प्रकति बंध कहजे। अर आपणी आपणी उतकिष्ट, मध्यम, जघन्य स्थिति नैं लीयां वंधै सो स्थिति बंध कहजे। अर आपणी आपणी शुभाशुभ रस रूप फल देवा समरथ सकत्ति नैं लीयां बंधै सो अनुभाग बंध। अर जीव का एक एक प्रदेस ऊपरि अनंतानंत कर्म वर्गणा एक क्षेत्रवगाह होय सो प्रदेस बंध 4 प्रकार बंध छै। कोई पूछै कर्मां का स्वभाव कांई अर थिति कांई तिहकौ उत्तर-ज्ञानावरणी की प्रकति तौ पडदा समान जो वस्तु नैं ढाकैं अर उतकिष्ट तीस कोडा कोडि सागर अर जघन्य थित अंतर महुरत एक। अर दरसनावरणी कौ सुभाव दरवांन कौसौ जो दरसन न होवा दे। अर थिति ज्ञानावरणी समान। अर वेदनी कर्म कौ सुभाव सहत लपेटी तरवारि की धर सम, जो मिठास दिखाय जीभ काटै, सो साता दिखाय जीव नैं असाता उपजावै, अर थिति उतकष्ट 30 कोड़ा कोडी सागर, जघन्य वारा महूरत। अर मोहनी कौ सुभाव मदिरा कौसौ जीव नैं भुलावै, थिति उतकिष्टी सतरि कोडा कोडी सागर तथा चालीस, अर जघन्य थिति अंतर महूरत एक। अर आयु कर्म कौ सुभाव खोडा समान जो खोडे दीयां पाछै काटो नीकलै सो आयु पूरी हुवा छूटै, अर थिति उतकिष्ट सागर 33, जघन्य अंतर महुरत एक छै। नाम कर्म कौ सुभाव चतेरा कौसौ जो

तरह तरह का चित्रम करै, अर थिति सागर 20 कोडा कोडि अर जघन्य स्थिति आठ महुरत। अर गोत्र कौ सुभाव कुम्हार कौसौ जो हलका भारया घट करै, अर थिति नाम कर्म समान छै। अर अंतराय कर्म कौ सुभाव भंडारी कौसौ, जो देवा मैं अंतराय करै, अर थिति उतकिष्ट सागर 30 कोडा कोडि जघन्य अंतर महूरत एक।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जीव के प्रदेश और कर्म वर्गणा रूप पुद्गल स्कन्धों का एक-दूसरे में परस्पर एकमेक हो जाना बंध कहलाता है। वह बन्ध् चार प्रकार का है। 1. प्रकृति बंध 2. स्थिति बंध 3. अनुभाग बंध 4. प्रदेश बंध।

भावार्थ- आठों कर्म अपनी प्रकृति अर्थात् स्वभाव से जो बंधते हैं, प्रकृति बंध कहलाते हैं। जितने समय के लिए अर्थात् उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य काल के लिए कर्म बंध है उसे स्थिति बंध कहते हैं। सभी कर्मों का अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार शुभ-अशुभ फल देने की सामर्थ्य अनुभाग बंध है। जीव के एक-एक प्रदेश के ऊपर अनंतानंत कर्म वर्गणा का एक ही क्षेत्रवगाह होना प्रदेश बंध है। इस प्रकार चार प्रकार का बंध है। कर्मों की प्रकृति और स्थिति के विषय में कहते हैं कि-

1. **ज्ञानावरणी कर्म-** की प्रकृति तो परदे के समान है जो वस्तु को ढंक देता है। ज्ञान पर आवरण होना ज्ञानावरणी है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा-कोड़ी सागर और जघन्य स्थिति अंतरमुहुर्त है।

2. **दर्शनावरणी कर्म-** दर्शनावरणी का स्वभाव दरबान की तरह है, जो दर्शन नहीं होने देता। इसका भी उत्कृष्ट काल तीस कोड़ा-कोड़ी सागर और जघन्य काल अंतरमुहुर्त है।

3. **वेदनीय कर्म-** वेदनीय कर्म का स्वभाव शहद से लिपटी तलवार की धार के समान है। जिस प्रकार तलवार की धार मिठास दिखाकर जीभ काट लेती है, उसी प्रकार कर्म साता दिखाकर असाता उत्पन्न करता है अर्थात् जिसमें जीव को सुख का आभास कराकर दुःख उत्पन्न कराता है। इसका उत्कृष्ट काल 30 कोड़ा कोड़ी सागर और जघन्य काल बारह मुहुर्त है।

4. **मोहनीय कर्म-** मोहनीय कर्म का स्वभाव मदिरा के समान है। जिस प्रकार मदिरा के वश मनुष्य स्वयं को भूल जाता है, उसी प्रकार मोह के वश जीव आत्मा के स्वरूप को भूलकर संसार में फंसा रहता है। इसका उत्कृष्ट काल सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर तथा जघन्य काल अन्तरमुहुर्त है।

5. **आयु कर्म-** आयु कर्म की प्रकृति खोड़ा के समान है। जिस प्रकार खोड़े में पैर डालकर, खोड़े को काटकर ही छूटते हैं, उसी प्रकार आयु पूर्ण करके ही पर्याय छूटती है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति 33 सागर और जघन्य स्थिति अन्तरमुहुर्त है।

6. **नाम कर्म-** नाम कर्म का स्वभाव चित्रकार के समान है। जिस प्रकार वह अलग-अलग प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार जीव के अलग-अलग नाम होते हैं। इसका उत्कृष्ट काल बीस कोड़ा-कोड़ी सागर और जघन्य काल आठ मुहुर्त का है।

7. **गोत्र कर्म-** गोत्र कर्म का स्वभाव कुम्हार के समान है। जिस प्रकार कुम्हार छोटे-बड़े घड़े बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म उच्च-नीच गोत्र में उत्पन्न करता है। इसका भी उत्कृष्ट काल बीस कोड़ा-कोड़ी और जघन्य काल आठ मुहुर्त का है।

8. **अंतराय कर्म-** अंतराय कर्म का स्वभाव भंडारी के समान है। जो देने में अंतराय करता है अर्थात् लाभ नहीं होने देता। इसका उत्कृष्ट काल 30 कोड़ा-कोड़ी सागर और जघन्य काल एक अंतर मुहुर्त है।

यो बंध तत्व कहयो आगैं संवर कहै छै

संवरतत्त्व-वर्णन

सम्मत्तेहिं वएहिं य कोहाइकसायणिग्गहगुणेहिं।
जोगणिरोहेण तहा कम्मासवसंवरो होई।। 42।।

टव्वाटीका-

सम्मत्तेहिं वएहिं य- सम्यक्त करि तथा व्रतां करि अर।

कोहाइकसायणिग्गहगुणेहिं- क्रोधादि कषायों का वसि करिवा कां गुण करि।

जोगणिरोहेण तहा- तथा मन वचन काय का जोगां का निरोध करि।

कम्मासवसंवरो होई- कर्म का आगमन कौ संवर कहतां रोकिवौ होय छै।

भावार्थ- कर्म आवता थका रूकै तिहकौ नाम संवर कहजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सम्यग्दर्शनसहित व्रत आदि करना और क्रोधादि कषायों को वश में करके, मन, वचन, काय का निरोध कर कर्मों के आगमन को रोकना संवर कहलाता है।

यों संवर तत्त्व कौ स्वरूप कह्या आगै निरजरा का स्वरूप कहै छै

निर्जरातत्त्व-वर्णन

सविवागा अविवागा दुविहा पुण निज्जरा मुणेयव्वा।
सव्वेसिं जीवाणं पढमा विदिया तवस्सीणं।। 43।।
जह रुद्धम्मि पवेसे सुस्सइ सरपाणियं रविकरेहिं।
तह आसवे णिरुद्धे तवसा कम्मं मुणेयव्वं।। 44।।

टव्वाटीका-

सविवागा अविवागा- एक सविपाक निरजरा, एक अविपाक निरजरा, ई भांति दोय प्रकार निर्जरा छै।

दुविहा पुण निज्जरा मुणेयव्वा- सविपाक निर्जरा सो कहजे, जो संसारी जीवां कै पूरवला बंध्या कर्म उदै आय आप ही झरि जाय, नवा फेरि बंधै। अर अवीपाक सो कहजे जो तपस्वी महापरूष विना ही उदै आया कर्मा नैं उदीर करि खपावै, फेरि नवा न बांधै सो अविपाक निर्जरा कौ स्वरूप जाणौं।

सव्वेसिं जीवाणं पढमा- सो सर्व ही संसारी जीवां कै होय छै प्रथम कहतां सविपाक निरजरा।

विदिया तवस्सीणं- अर दूसरी अवीपाक तपस्वी जनां कै होय छै।

जह रुद्धम्मि पवेसे- जैसैं रोकां थका प्रवेस नवा पाणी कौ।

सुस्सइ सरपाणियं- सुखै सरोवर कौ पाणी पुरांणौं।

रविकरेहिं- सूर्य का किरण करि।

तह आसवे णिरुद्धे- तैसैं नवा कर्मा का आश्रव नैं रोक्यां थका।

तवसा कम्मं मुणेयव्वं- तप करि पुराणां कर्म की निर्जरा होय छै अैसौ जाणिवो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

निर्जरा दो प्रकार की बताई गई है- एक सविपाक निर्जरा और दूसरी अविपाक निर्जरा। सविपाक निर्जरा संसारी जीवों के होती है। जो पूर्व का बंध हुआ कर्म उदय में आकर झड़ जाता है या नष्ट हो जाता है और फिर नया कर्म बंधता है वह सविपाक निर्जरा है। जो तपस्वी महापुरुष तप के द्वारा बिना ही उदय के कर्मों को नष्ट करता है और नया कर्म नहीं बंधता, वह अविपाक निर्जरा है। यह तपस्वीजनों के ही होती है।। 43।।

जिस प्रकार सरोवर में नये पानी का प्रवेश रूक जाये और पुराना पानी सूर्य के ताप से सूख जाये उसी प्रकार कर्मों के आस्रव के रूक जाने पर पुराने संचित कर्म तप के द्वारा नष्ट हो जाये, उसे निर्जरा जानना चाहिये।। 44।।

यो निर्जरा तत्व कौ निर्णय कीयो आगैं मोक्ष कौ स्वरूप कहै छै

मोक्षतत्त्व-वर्णन

णिस्सेसकम्ममोक्खो मोक्खो जिणसासणे समुद्दिट्ठो।
तम्हि कए जीवोऽयं अणुहवइ अणंतयं सोक्खं।। 45।।

टव्वाटीका-

णिस्सेसकम्ममोक्खो- समस्त कर्म सौं छूटिवौ सो।

मोक्खो जिणसासणे समुद्दिट्ठो- मोक्ष जिन सासन विषै उपदेस्यौ।

तम्हि कए जीवोऽयं- जिहनैं कीयां थको यो जीव।

अणुहवइ अणंतयं सोक्खं- अनुभवै छै अनंत सुख नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

समस्त कर्मों के नष्ट हो जाने को जिन शासन में मोक्ष कहा गया है। वहाँ (मोक्ष में) यह जीव अनंत सुख का अनुभव करता है।

यो मोक्ष कौ स्वरूप कह्यौ

णिद्देसं सामित्तं साहणमहियरण-ठिदि विहाणाणि।
एएहि सव्वभावा जीवादीया मुणेयव्वा।। 46।।

टव्वाटीका-

णिद्देसं सामित्तं- निर्देस कहतां जिह वस्तु कौ जिसा स्वरूप तिसौ कथन। अर स्वामीत्व कहता सम्यकदरसन कौ जीव स्वामी। ईही भांति आपणा आपणा गुण पर्यायां का छहौं द्रव्य निश्चै सेती स्वामी अर व्यवहार नय करि सर्वज्ञ वीतराग देव सगलां का स्वामी।

साहण- साधन कहतां उपाय सौ मोक्ष कौ उपाय रतनत्रय।

महियरण- अधिकरण कहतां आधार व्यवहार नय करि लोकाकास समस्त द्रव्यां कौ भिन्न आधार छै अर निश्चै आपणां आपणां गुण का सगला द्रव्य आधारभूत छै।

ठिदि विहाणाणि- बहुरि स्थिति कहतां मरजादा, विधान कहतां नाना भांति का भेद।

एएहि सव्वभावा- यां छह वातां करि सर्वपदारथ।

जीवादीया मुणेयव्वा- जीवादिक विवेक्यां नैं जांणनां संसै, विभ्रम, विमोह रहित।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन छह अनुयोगों द्वारा जीवादि सर्व पदार्थों को जानना चाहिये।

भावार्थ-

निर्देश- वस्तु का जैसा स्वरूप हो उसका वैसा ही कथन करना निर्देश है।

स्वामित्व- वस्तु के आधिपत्य को स्वामित्व कहते हैं। निश्चय से तो सभी द्रव्य अपनी-अपनी गुण पर्यायों के स्वामी है और व्यवहार नय से सर्वज्ञ वीतराग देव सभी के स्वामी हैं।

साधन- साधन का अर्थ है उपाय। वस्तु की उत्पत्ति के निमित्त को साधन कहते हैं। मोक्ष का साधन या उपाय रत्नत्रय है।

अधिकरण- अधिकरण कहते हैं वस्तु के आधर को। व्यवहार नय से लोकाकाश समस्त द्रव्यों का आधार है और निश्चय नय से सभी द्रव्य अपने-अपने गुणों के आधारभूत हैं।

स्थिति- वस्तु की काल मर्यादा को स्थिति कहते हैं।

विधान- वस्तु के प्रकार या भेद को विधान कहते हैं। इस प्रकार इन छह अनुयोगों से विवेकपूर्वक जीवादि सर्व पदार्थों को संशय, विभ्रम और विमोह रहित होकर जानना चाहिए।

सत्त वि तच्चाणि मए भणियाणि जिणागमाणुसारेण।
एयाणि सद्दहंतो सम्माइट्ठी मुणेयव्वो।। 47।।

टव्वाटीका-

सत्त वि तच्चाणि- सप्त तत्व ई भांति।

मए- मैं ए।

भणियाणि- कह्या संक्षेप रूप।

जिणागमाणुसारेण- जिनागम कै अनुसार।

एयाणि सद्दहंतो- मानैं दिढ प्रतीति करि सरदहतौ संतौ।

सम्माइट्ठी मुणेयव्वो- जीव सम्यकदिष्टी जांणनौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ये सात तत्त्व मैंने संक्षेप में जिनागम के अनुसार कहे हैं। इन तत्त्वों का दृढ़तापूर्वक जो जीव श्रद्धान करता है, उसे सम्यक्दृष्टि जानना चाहिये।

यो सप्त तत्व कौ वरणन कीयौ आगै सम्यक्त का आठ अंग कहै छै

सम्यक्त्व के आठ अंग

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदियरणं वच्छल्ल पहावणा चेव।। 48।।

टव्वाटीका-

णिस्संकिय- संदेह रहितपणौ पहलो अंग।

णिक्कंखिय- भोगाभिलाष रहितपणौं दूजौ अंग।

णिव्विदिगिंछा- दुरगंछा रहितपणौं तीजौ अंग।

अमूढदिट्ठी य- मूढता रहितपणौं चौथौ अंग।

उवगूहण- परदोष ढांकिवौ पांचमौ अंग।

ठिदियरणं- स्थिरता करिवौ छठौ अंग।

वच्छल्ल- सातमौं अंग जिन धम्मां सौ स्नेह अैसौ तुरत का वाछडा ऊपरि गाय करै।

पहावणा चेव- बहुरि जिनमारग की प्रभावना भांति भांति करणी सो सम्यक्त कौ आठमौं अंग।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सम्यक्त्व के आठ अंग

निःशंका- जिन वचन में शंका न करना पहला अंग है।

निःकांक्षा- भोगोपभोग की अभिलाषा न करना दूसरा अंग है।

निर्विचिकित्सा- रत्नत्रयधारी के शरीर में निरादर व ग्लानि का भाव न करना तीसरा अंग है।

अमूढदृष्टि- मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र या उसको धारण करने वाले की मन, वचन, काय से प्रशंसा नहीं करना अमूढ़दृष्टि कहलाता है।

उपगूहन- दूसरे मोक्षमार्गी के दोषों को उजागर न करना उपगूहन नाम का पाँचवां अंग है।

स्थितिकरण- चारित्र से शिथिल होने वाले को चारित्र में स्थिर करना स्थितिकरण नाम का छठा अंग है।

वात्सल्य- साधर्मी जनों से उसी प्रकार स्नेह करना जिस प्रकार गाय अपने तुरंत पैदा हुए बछड़े से करती है उसे वात्सल्य नाम का सातवां अंग जानना चाहिए।

प्रभावना- अनेक प्रकार से जिनधर्म और जिनमार्ग के महत्त्व को प्रकट करना प्रभावना अंग है।

संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरहा उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अणुकंपा अट्ठ गुणा हुंति सम्मत्ते।। 49।।

टव्वाटीका-

संवेओ- धर्म अर धर्मातमा जीवां सौं सनेह।

णिव्वेओ- संसार, सरीर, भोग सौ वैराग।

णिंदा- आपणां कीया पाप की आपणां मन मै निंदा करणी।

गरहा- वहुरि गुरां कनै आपणा दोष प्रकासना।

उवसमो- अर सांत भाव करना, रागादिक मेटनां।

भत्ती- पंच परमेछी की भक्ति करनी।

वच्छल्लं- जिन धर्म सौं अैसौ स्नेह रखै जो जगत मैं और दूजी जग्यां नहीं।

अणुकंपा- अर सर्व जीवां की दया।

अट्ठ गुणा हुंति सम्मत्ते- ए आठ गुण हौंहि सम्यक्त विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सम्यग्दर्शन होने पर संवेग, निर्वेग, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकम्पा ये आठ गुण उत्पन्न होते हैं।

संवेग- धर्म और धर्मात्मा जीवों से स्नेह संवेग है।

निर्वेग- संसार और शरीर भोग से वैराग्य होना निर्वेग है।

निन्दा- अपने किये पाप की अपने मन में निन्दा करना।

गर्हा- गुरू के निकट जाकर अपने दोषों को प्रकट करना गर्हा है।

उपशम- रागादि को नष्ट कर शांत भाव करना उपशम है।

भक्ति- पंच परमेष्ठी की भक्ति करना भक्ति है।

वात्सल्य- जिन धर्मी से ऐसा स्नेह करना जैसा संसार में कहीं नहीं। वात्सल्य कहलाता है।

अनुकम्पा- सर्वजीवों पर दया करना अनुकम्पा है।

इच्चाइगुणा बहवो सम्मत्तविसोहिकारया भणिया।
जो उज्जमेदि एदे सम्माइट्ठी जिणक्खादो।। 50।।

टव्वाटीका-

इच्चाइगुणा बहवो- इत्यादि गुण बहोत।

सम्मत्तविसोहिकारया भणिया- सम्यक्त का विशुद्ध करणहारा कह्या छैं।

जो उज्जमेदि एदे- जो जीव उद्यम करैं यां विषै।

सम्माइट्ठी जिणक्खादो- सो सम्यकद्रिष्टी जिनेसुरदेवां कह्यो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उपर्युक्त गुण सम्यग्दर्शन को विशुद्ध करने वाले कहे गये हैं। जो जीव इनकी प्राप्ति का प्रयत्न करता है, उसे जिनेश्वर देव ने सम्यग्दृष्टि कहा है।

अैंठा आगैं गाथा आठ भाव संग्रह ग्रंथ की उक्तं च लिखै छै

अतोगाथाष्टकंभावसंग्रहग्रंथात्

दर्शन-प्रतिमा-वर्णन

संकाइदोसरहिओ णिस्संकाइगुणजुयं परमं।
कम्मणिज्जरणहेऊ तं सुद्धं होइ सम्मत्तं।। 51।।

टव्वाटीका-

संकाइदोसरहिओ- जो संकादि दोषां थकी रहीत।

णिस्संकाईगुणजुयं परमं- अर निसंकितादि गुणां करि उपज्यो महाउतकिष्ट।

कम्मणिज्जरणहेऊ- अर कर्मों की निर्जरा कौ कारण।

तं सुद्धं होइ सम्मत्तं- सो होइ छै शुद्ध सम्यक्त।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो शंकादि दोषों से रहित है, निःशंकादि महाउत्कृष्ट गुणों से सहित है और कर्म-निर्जरा का कारण है, वह ही शुद्ध सम्यक्त्व है।

अंगों में प्रसिद्ध होने वालों के नाम

रायगिहे णिस्संको चोरो णामेण अंजणो भणिओ।
चंपाए णिक्कंखा बणिधूवा णंतमइणामा।। 52।।
णिव्विदिगिंछा राया उद्दायणु णाम रुद्दवरणयरे।
रेवइ महुरा णयरे अमूढदिट्ठी मुणेयव्वा।। 53।।
ठिदियरणगुणपउत्तो मागहणयरम्मि वारिसेणो दु।
हथणापुरम्मि णयरे वच्छल्लं विण्हुणा रइयं।। 54।।
उवगूहणगुणजुत्तो जिणयत्तो तामलित्तिणयरीए।
वज्जकुमारेण कया पहावणा चेय महुराए।।55।।

टव्वाटीका-
रायगिहे णिस्संको- राजग्रह नगर विषै निसंकित अंग कौ धरनहारौ।
चोरो णामेण अंजणो भणिओ- चोर अंजन नाम हूवो तिह कौ वर्णन सिद्धांत विषै कह्यो छै।
चंपाए णिक्कंखा बणिधूवा- अर चंपानगरी विषै निकांक्षित अंग की धरनहारी बेटी सेठ की।
णंतमइणामा- अनंतमती नामा हुई।

णिव्विदिगिंछा राया- अर निर्विचिकित्सा अंग को धरनहारौ राजा।
उद्दायणु णाम रुद्दवरणयरे- उद्दायन नामा रौरव नगर विषै हुवो।
रेवइ महुरा णयरे- अर रेवती रानी मथुरा नगर विषै।
अमूढदिट्ठी मुणेयव्वा- अमूढदिष्टि अंग की धरनहारी हुई सो जांणनी।

ठिदियरणगुणपउत्तो- अर स्थितीकरण गुण करि युक्त।
मागहणयरम्मि- मागध देस विषै राजग्रही नगरी तैंठे।
वारिसेणो दु- राजा श्रेणिक कौ पुत्र वारिषेण हुवो।
हथणापुरम्मि णयरे- अर हथणापुर नगर विषै।
वच्छल्लं विण्हुणा रइयं- वात्सल्य अंग विश्नुकुमार की यो जो अकंपनाचार्य नैं आदिदे मुन्यों का समूह को उपसर्ग टारयौ।

उवगूहणगुणजुत्तो- अर उपगूहन गुण करि युक्त।
जिणयत्तो- जिनदत्त नामा सेठ।
तामलित्तिणयरीए- ताम्रलिप्त नगरी विषै हुवो।
वज्जकुमारेण कया- बहुरि वज्र कुमार करी।
पहावणा चेय महुराए- प्रभावना जिनसासन की मथुरा विषै ही।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

राजगृह नगर में अंजन चोर निःशंकित अंग को धारण करने वाला कहा गया है। चम्पानगरी में अनंतमती नाम की वणिक की पुत्र निःकांक्षित अंग में प्रसिद्ध हुई।। 52।।

उद्दायन नाम का राजा रुद्रवर नगर में निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध हुआ। मथुरा नगर में रेवती रानी को अमूढ़-दृष्टि अंग को धारण करने वाला जानना चाहिये।। 53।।

मगध नगर में राजा श्रेणिक का पुत्र वारिषेण स्थितिकरण गुण का धारी हुआ। हस्तिनापुर नगर में वात्सल्य अंग के धारक विष्णुकुमार मुनि हुए जिन्होंने अकम्पनाचार्यादि 700 मुनियों का उपसर्ग दूर किया।। 54।।

ताम्रलिप्त नगरी में जिनदत्त नाम का सेठ उपगूहन गुण से युक्त प्रसिद्ध हुआ। मथुरा नगरी में वज्रकुमार ने जिनशासन की प्रभावना की।। 55।।

एरिसगुण अट्ठजुयं सम्मत्तं जो धरेइ दिढचित्तो।
सो हवइ सम्मदिट्ठी सद्दहमाणो पयत्थे य।।56।।

टव्वाटीका-
एरिसगुणअट्ठजुयं- इसा आठ गुणां करि युक्त।
सम्मत्तं- सम्यकदर्शन नैं।

जो धरेइ दिढचित्तो- जो धरै द्रिढचित्त करि।
सो हवइ सम्मदिट्ठी- सो होइ सम्यक द्रिष्टी।
सद्दहमाणो पयत्थे य- श्रद्धा करतौ थकौ जीवादि पदार्थ की।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो जीव दृढ़चित्त होकर जीवादि पदार्थों की श्रद्धा करता हुआ, इन आठ गुणों से युक्त होकर सम्यग्दर्शन को धारण करता है, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

पंचुंबरसहियाइं सत्त वि विसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ।।57।।

टव्वाटीका-
पंचुंबरसहियाइं- पांच उदंवरादि अभक्षफलों सहित।
सत्त वि विसणाइं जो विवज्जेइ- सात विसन नैं जो जीव तजै।
सम्मत्तविसुद्धमई- सम्यक्त करि निर्मल छै बुद्ध जिहकी।
सो दंसणसावओ भणिओ- सो पहली दरसन प्रतिमा कौ धारक श्रावक कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पंच उदुंबरादि अभक्ष फलों सहित जो जीव सप्त व्यसनों का त्याग करता है तथा जिसकी बुद्ध सम्यक्त्व से निर्मल है, वह पहली दर्शन प्रतिमा का धारक श्रावक कहलाता है।

उंबर-वड-पिप्पल-पिंपरीय-संधाण-तरुपसूणाइं।
णिच्चं तससंसिद्धाइं ताइं परिवज्जियव्वाइं।।58।।

टव्वाटीका-
उंबर-वड-पिप्पल-पिंपरीय- उमरा, कठूंमर, वड का फल, पीपल का फल, अर पाकरी का फल।
संधाण- बहुरि संधाण जाति सर्व।
तरुपसूणाइं- तथा वृक्षों का फूल।
णिच्चं तससंसिद्धाइं ताइं परिवज्जियव्वाइं- सदा काल त्रस जीवां करि भरया छै, प्रसिद्ध दोषीक छै, त्यांतैं तजणां सर्वथा प्रकार।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पाकर, ऊमर, कठूमर, बड़ और पीपल के फल, ये पाँच उदुम्बर फलों का तथा संधानक (अचार) और वृक्षों के फूल ये सदा त्रस जीवों से भरे होते हैं अतः इनका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

जूवं मज्जं मंसं वेसा पारिद्ध-चोर-परयारं।
दुग्गइगमणस्सेदाणि हेउभूदाणि पावणि।।59।।

टव्वाटीका-
जूवं- जूवा खेलिवौ।
मज्जं- मदिरा पीवौ।
मंसं- मांस भखिवौ।
वेसा- वैस्या सेवौ।
पारिद्ध- अहैदै जावौ।
चोर- चोरी करिवौ।

परयारं- परनारी सौं रमिवौ।
दुग्गइगमणस्सेदाणि- ए दुरगति जावा का सात विसन।
हेउभूदाणि पावणि- कारणभूत छैं महापाप।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जुआ खेलना, मदिरा पान, मांस भक्षण, वेश्या गमन, शिकार खेलना, चोरी करना, परनारी रमण ये सात व्यसन महापाप हैं तथा दुर्गति जाने के कारणभूत हैं।

द्यूतदोष-वर्णन

जूवं खेलंतस्स हु कोहो माया य माण-लोहा य।
एए हवंति तिव्वा पावइ पावं तदो बहुगं।।60।।

पावेण तेण जर-मरण-वीचिपउरम्मि दुक्खसलिलम्मि।
चउगइगमणावत्तम्मि हिंडए भवसमुद्दम्मि।।61।।

तत्थ वि दुक्खमणंतं छेयण-भेयण धिक्तणाईणं।
पावइ सरणविरहिओ जूवस्स फलेण सो जीवो।।62।।

ण गणेइ इट्ठंमित्तं ण गुरुं ण य भायरं पियरं वा।
जूवंधे वुज्जाइं कुणइ अकज्जाइं बहुयाइं।।63।।

सजणे य परजणे वा देसे सव्वत्थ होइ णिल्लज्जो।
माया वि ण विस्सासं वच्चइं जूवं रमंतस्स।।64।।

अग्गि-विस-चोर-सप्पा दुक्खं थोवं करंति इहलोए।
दुक्खं जणेइ जूयं णरस्स भवसयसहस्सेसु।।65।।

अक्खेहि णरो रहिओ ण मुणइ सेसिंदिएहिं वेएइ।
जूयंधो ण य केण वि जाणइ संपुण्णकरणो वि।।66।।

अलियं करेइ सवहं जंपइ मोसं भणेइ अइदुट्ठं ।
पासम्मि बहिणि-मायं सिसुं पि हणेइ कोहंधो।।67।।

ण य भुंजइ आहारं णिद्दं ण लहेइ रत्ति-दिण्णं ति।
कत्थ वि ण कुणेइ रइं अत्थइ चिंताउरो णिच्चं।। 68।।

इच्चेवमाइबहवो दोसा णाऊण जूयरमणम्मि।
परिहरियव्वं णिच्चं दंसणगुणजुयमहंतेण।।69।।

टव्वाटीका-
जूवं खेलंतस्स हु- जो जीव जूवां खेलै तिह कै।
कोहो माया य माण-लोहा य- क्रोध बहुरि मान, माया, लोभ।
एए हवंति तिव्वा- ए च्यारयों ही कषाय हौंहि छैं प्रबल।
पावइ पावं तदो बहुगं- पावै छै जीव यां थकी बहुत पाप नैं।

पावेण तेण- तिह पाप करि भवसागर मैं डूबै।
जर-मरण-वीचिपउरम्मि- किसौ छै भवसागर जरा अर मरण सो ही छै घणी लहरी जिह विषै।

दुक्खसलिलम्मि- अर दुख रूप छै घणौं जल जिह विषै।
चउगइगमणावत्तम्मि- अर च्यारि गति कौ गमन सोई छै भमण जिह विषै।
हिंडए भवसमुद्दम्मि- अैसा भवसमुद्र विषै भ्रमैं अनंतकाल।

तत्थ वि दुक्खमणंतं- तिह भवसागर विषै।
छेयण-भेयण धिक्तणाईणं- छेदन, भेदन, पीडादिक।
पावइ सरणविरहिओ- पावै सरण रहित भ्रमतौ थकौ।
जूवस्स फलेण सो जीवो- जूवां का फल करि यो संसारी जीव।

ण गणेइ इट्ठमित्तं- गनैं इष्ट मित्र नैं।
ण गुरुं ण य भायरं पियरं वा- न गुर नैं, न माता नैं अथवा पिता नैं।
जूवंधे वुज्जाइं कुणइ- जुवां करि अंधौ नही मानैं।
अकज्जाइं बहुयाइं- अर करै पाप बहुत।

सजणे- आपण कुटंब का लोका विषै।
य परजणे वा- अथवा पर जे अन्य लोक त्यांह विषै।
देसे सव्वत्थ होइ णिल्लज्जो- देस विषै, परदेस विषै सर्व जायगा होइ निरलज्ज।
माया वि ण विस्सासं- माता भी न विस्वास करै।
वञ्चइं जूवं रमंतस्स- जूवां खेलै तिह कौ।

अग्गि- अगनि।
विस- विष।
चोर- चोर अर।
सप्पा- सांप ए दुख दाइ छै।
दुक्खं थोवं करंति इहलोए- दुख थोड़ौ करै छै इह लोक विषै एक ही भव मैं।
दुक्खं जणेइ जूयं- अर महादुखां नैं उपजावै छै जूवां।
णरस्स भवसयसहस्सेसु- मनुच्छ कै भव सैकडां हजारां विषै।

अक्खेहि णरो रहिओ- जो जीव नैत्रां सौं रहित छै, आंधै छै, सो तौ नेत्रां ही करि।
ण मुणइ सेसिंदिएहिं वेएइ- न देखै, न जानैं परंतु वाकी और कान नैं आदि दे जे इंद्री त्यां करि सुणैं जाणैं।
जूयंधो ण य केण वि- अर जूवां करि जो आंधौ छै सो कोई भी इंद्री करि नही।
जाणइ संपुण्णकरणो वि- जाणैं यद्यपि पांचौं इंद्री करि पूरण छै तौ भी।

अलियं करेइ सवहं- वृथा करै जीव हिंसा।
जंपइ मोसं- अर कहै झूठ वात।
भणेइ अइदुट्ठं- तथा वोलै अति दुष्ठता का वचन।
पासम्मि बहिणि-मायं- अर जिह वार क्रोध मैं आवै तिह वार विकराल हुवौ थकौ नजीक आया वहैंण नैं।
सिसुं पि हणेइ कोहंधो- तथा बालक नैं भी मारै क्रोध करि आंधो।

ण य भुंजइ आहारं- जूवारी नही करै वार की वार नीकां आहार।
णिद्दं ण लहेइ रत्ति-दिण्णं ति- अर नींद भी न ले राति दिन विषै कदे ही।

कत्थ वि ण कुणेइ रइं- अर कहीं ठै न करै थिरता।
अत्थइ चिंताउरो णिच्चं- तिष्ठै चिंता करि आतुर सदा।

इच्चेवमाइबहवो- इत्यादि अनेक।
दोसा णाऊण- दोष जांणि करि।
जूयरमणम्मि- जूवां का रमिवा विषै।
परिहरियव्वं णिच्चं- अर तजणौं जूवां कौ सदाकाल।
दंसणगुणजुयमहंतेण- सम्यक दरसन गुण करि जुक्त जे मोटा पुरिस त्यांनैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो जीव जुआ खेलता है उसके क्रोध, मान, माया, लोभ चारों ही कषायों का तीव्र उदय होता है। जिससे जीव को बहुत पाप का बंध होता है।। 60।।

उस पाप के कारण जीव दुःख रूपी जल वाले, जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु रूपी लहरों वाले, चारों गति रूपी भंवर वाले संसार सागर में अनंतकाल तक भ्रमण करता है।। 61।।

यह संसारी जीव उस जुआ खेलने के फल के कारण संसार सागर में छेदन, भेदन कर्त्तन आदि पीड़ाओं को सहन करता है और शरण रहित होकर दुःख पाता हुआ भ्रमण करता है।। 62।।

जुआ खेलने के कारण अन्धा हुआ मनुष्य इष्ट मित्र को नहीं गिनता, न गुरु, न माता अथवा पिता को कुछ मानता है। इस कारण अत्यन्त पाप कार्यों को करता है।। 63।।

जुआ खेलने वाला मनुष्य अपने परिवार में, परजनों में, देश में, विदेश में सभी जगह निर्लज्ज हो जाता है। माता भी ऐसे मनुष्य का विश्वास नहीं करती।। 64।।

अग्नि, विष, चोर और सर्प इस लोक में एक ही भव में अल्प दुःख देते हैं किन्तु जुआ खेलना मनुष्य को सैंकड़ों, हजारों भवों तक महादुःख को देता है।। 65।।

नेत्रहीन मनुष्य मात्र नेत्रों से देख नहीं सकता किन्तु अन्य इन्द्रियों से जानता है, परन्तु जुआ खेलने में अन्धा हुआ मनुष्य सभी इन्द्रियाँ होते हुए भी कुछ भी देखता जानता नहीं है।। 66।।

जुआ खेलने वाला मनुष्य झूठी शपथ करता है, झूठ बोलता है, अतिदुष्टतापूर्ण वचन बोलता है, जीव हिंसा करता है, पास में खड़ी बहिन, माता तथा शिशु को भी मारता है।। 67।।

जुआ खेलने वाला मनुष्य न आहार करता है, रात-दिन सोता भी नहीं है, न किसी भी वस्तु से प्रेम करता है, न कहीं ठहरता है। वह सदा चिन्ता में रहता है।। 68।।

इस प्रकारा जुआ खेलने में अनेक दोषों को जानकर सम्यग्दर्शन से युक्त उत्तम पुरुष को सदा के लिए जुआ का त्याग करना चाहिये।। 69।।

ए द्यूत का दोष कह्या आगैं मदिरा करि दोष कहै छै

मद्यदोष-वर्णन

मज्जेण णरो अवसो कुणेइ कम्माणि अइणिलज्जाइं।
इहलोए परलोए अणुहवइ अणंतयं दुक्खं।।70।।

अइलंघिओ विचिट्ठो पडेइ रत्थाययंगणो मत्तो।
पडियस्स सारमेया वयणं विलिहंति जिब्भाए।।71।।

उच्चारं पस्सवणं तत्थेव कुणंति तो समुल्लवइ।
पडिओ वि सुरा मिट्ठो पुणो वि मे देइ मूढ़मई।।72।।

जं किंचि तस्स दव्वं अजाणमाणस्स हिप्पइ परेहिं।
लहिऊण किंचि सण्णं इदो तदो धावइ खलंतो।।73।।

जेणज्ज मज्झ दव्वं गहियं दुट्टेण से जमो कुद्धो।
कहिं जाइ सो जिवंतो सीसं छिंदामि खग्गेण।।74।।

एवं सो गज्जंतो मुविओ गंतूण मंदिरं णिययं।
घित्तूण लउडि सहसा रुट्ठो भंडाइं फोडेइ।।75।।

णिययं पि सुयं बहिणिं अणिच्छमाणं बला विध्संइ।
जंपइ अजंपणिज्जं ण विजाणइ किं पि मयमत्तो।।76।।

इय अवराइं बहुसो काऊण बहूणि लज्जणिज्जणि।
अणुबंधइ बहु पावं मज्जस्स वसंगदो संतो।।77।।

पावेण तेण बहुसो जाइ-जरा-मरणसावयाइण्णे।
पावइ अणंतदुक्खं पडिओ संसारकंतारे।।78।।

एवं बहुप्पयारं दोसं णाऊण मज्जपाणम्मि।
मण-वयण-काय-कय-कारिदाणुमोएहिं वज्जिजो।।79।।

टव्वाटीका-
मज्जेण णरो अवसो- मदिरा करि प्रांणी परवसी हुवो थकौ।
कुणेइ कम्माणि अइणिलज्जाइं- करै महानिरलज्ज कर्म।
इहलोए- इहलोक विषै तथा।
परलोए- परलोक विषै।
अणुहवइ- भोगवै तिह का फल।
अणंतयं दुक्खं- अनंत दुख।

अइलंघिओ- आपौ भूल्यो थकौ।
विचिट्ठो- चेष्टा रहित हुवा थकौ।
पडेइ रत्थाययंगणो मत्तो- पड़ै रौडी मैं मदिरा कौ मातौ।
पडियस्स सारमेया- तव पडाकै कूकरा।
वयणं विलिहंति जिब्भाए- मुख चाटै जीभ करि।

उच्चारं पस्सवणं- मल तथा मूत्र।
तत्थेव कुणंति- तहां रौडी मैं करैं कुतरा तिहका मुख विषै।
तो समुल्लवइ- तव मदिरा कौ मांतो इसौ आलाप करै।
पडिओ वि सुरा मिट्ठो- पडौ थकौ भी जो मदिरा मीठी।

पुणो वि मे देइ मूढ़मई- वहुरि भी मोनैं देहु ई भांति मूढ मति बकै।

जं किंचि तस्स दव्वं- जो कोयक तिह कौ द्रव्य ।
अजाणमाणस्स- अजाणता थका कौ।
हिप्पइ परेहिं- हरैं और लोग।
लहिऊण किंचि सण्णं- सो पाछैं पाय करि कांइक चेत।
इदो तदो धवइ खलंतो- अठी उठी दौडै गिरतौ पडतौ आंखटतौ थकौ अर ई भांति वकै।

जेणज्ज- जिह आज।
मज्झ दव्वं- म्हारौ द्रव्य।
गहियं- ग्रह्यो।
दुट्टेण से जमो कुद्धो- दुष्ट जीवै तिहऊ मनैं रुसायो मरण की सामिद्यी करी।
कहिं जाइ सो जिवंतो- कठै जाय सो जीवतौ।
सीसं छिंदामि खग्गेण- सीस काटौं तिह कौ खडग करि।

एवं सो गज्जंतो- ई भांति सो वकतौ थकौ।
कुविओ- क्रौध कौ भरयो।
गंतूण- जाय करि।
मंदिरं णिययं- आपणौं मंदिर।
घित्तूण लउडि सहसा- तोड़ि करि लकड़ी सीघ्र ही।
रुट्ठो भंडाइं फोडेइ- रोसि हुवो भांडा फोडै।

णिययं पि सुयं बहिणिं- आपणी वेटी तथा वहैंण।
अणिच्छमाणं- नही इछती थकी कुक्रिया नैं।
बला विध्संइ- त्याकौ जोरावरी सील विधुंस करै।
जंपइ अजंपणिज्जं- तथा कहै मुख थकी न कहीवा जोग्य वचन।
ण विजाणइ किं पि- नहीं जाणै कैसो भी भली बात।
मयमत्तो- मद कौ मंतौ।

इय अवराइं बहुसो- इत्यादि और भी वहौंत प्रकार का।
काऊण- करिकैं।
बहूणि लज्जणिज्जणि- घणां लजावणां कर्म।
अणुबंधइ बहु पावं- अर वांधै बहुत पाप नैं।
मज्जस्स वसंगदो संतो- मदिरा के वसि हुवो थकौ।

पावेण तेण बहुसो- तिह पाप करि वहुत वार।
जाइ-जरा-मरणसावयाइण्णे- जनम जरा मरण तेई हुवा स्वापद कहतां मृगादि वन का जीव त्यांह करि आकीर्ण कहता भरयो अैसौ जो संसार बन तिह विषै।
पावइ अणंतदुक्खं- पाबै अनंत दुखां नैं।
पडिओ संसारकंतारे- पडौ थकौ भव वन विषै।

एवं बहुप्पयारं- ई भांति अनेक प्रकार का।

दोसं णाऊण मज्जपाणम्मि- दोष जाणि करि मद्यपान विषै।

मण-वयण-काय- अर मन वचन काय।

कय-कारिदाणुमोएहिं वज्जिजो- कृत कारित अनुमोद करि सर्वथा तजणौं मदिरापान।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मदिरा पान करके मनुष्य परवश अर्थात् अपने विवेक को खोकर अतिनिन्दनीय कार्य करता है तथा इस लोक एवं परलोक में अनंत दुःखों को भोगता है।। 70।।

मदिरा पान के कारण उन्मत्त हुआ पुरुष स्वयं को भूलकर रथ्यांगण (चौराहे) में पड़ा रहता है और उसके मुख (लार बहते हुएद्ध को कुत्ते जीभ से चाटते हैं।। 71।।

उस उन्मत्त पड़े हुए पुरुष पर कुत्ते उच्चार (टट्टी) और प्रसवण (पेशाब) करते हैं, किन्तु वह मूढ़मति वहाँ पड़े-पड़े ही मदिरा बहुत मीठी है, मुझे और दो इस प्रकार बकता है।। 72।।

उस बेसुध अनजान मद्यपायी मनुष्य का जो कुछ भी द्रव्य (धन) का अन्य लोग हरण कर लेते हैं। कुछ चेतना को प्राप्त कर अर्थात् थोड़ा होश में आकर गिरता, पड़ता, टटोलता हुआ दौड़ता है।। 73।।

और इस प्रकार बकता है कि जिसने मेरे द्रव्य का हरण किया है, उसने मुझे क्रुद्ध किया है, मानों यमराज को ही क्रुद्ध किया है, वह जीवित बचकर कहाँ जायेगा, मैं तलवार से उसका शीश काटूँगा।। 74।।

इसप्रकार वह क्रुद्ध होकर गरजता हुआ अपने घर जाकर लकड़ी को लेकर सहसा कुपित होकर बर्तनों को फोड़ता है।।। 75।

अपनी पुत्र तथा बहिन की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक उनके शील को भंग करता है। मद्यपान से उन्मत्त हुआ वह न कहने योग्य बात को भी कहता है तथा कुछ भी उचित अनुचित नहीं जानता है।। 76।।

इस प्रकार मद्यपान के वश उन्मत्त मनुष्य इन कार्यों को तथा और लज्जाजनक कार्यों को करके बहुत पाप का बंध करता है।। 77।।

इस प्रकार अत्यन्त पाप करके वह जन्म, जरा और मरणरूप श्वापद अर्थात् वन का जीव व्याघ्र आदि से भरे हुए भयानक भव वन में अनंत दुःख को पाता है।। 78।।

इस प्रकार मदिरापान में अनेक दोषों को जानकर मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से सर्वथा मदिरापान का त्याग करना चाहिए।। 79।।

यो मदिरा कौ दोष कह्यो आगैं मधु का दोष कहै छै

मधुदोष-वर्णन

जह मज्जं तह य महू जणेइ पावं णरस्स अइबहुयं।
असुइ व्व णिंदणिज्जं वज्जेयव्वं पयत्तेण।।80।।

दट्ठूण असणमज्झे पडियं जइ मच्छियं पि णिट्ठिवइ।
कह मच्छियंडयाणं णिज्जासं णिग्घिणो पिबइ।।81।।

भो भो जिब्भिंदियलुद्धयाणमच्छेरयं पलोएह।
किमि मच्छियणिज्जासं महुं पवित्तं भणंति जदो।।82।।

लोगे वि सुप्पसिद्धं बारह गामाइं जो डहइ अदओ।
तत्तो सो अहिययरो पाविट्ठो जो महुं हणई।।83।।
जो अवलेहइ णिच्चं णिरयं सो जाइ णत्थि संदेहो।
एवं णाऊण पुफडं वज्जेयव्वं महुं तम्हा।।84।।

टव्वाटीका-

जह मज्जं- जिसी मदिरा दोषीक छै।
तह य महू- तिसी ही सहैत दोषीक छै।
जणेइ पावं- उपजावै छै पाप।
णरस्स- मनुक्ष कै।
अइबहुयं- अति घणां सो।
असुइ व्व णिंदणिज्जं- असुचि वस्तु की नांई निंदनीक छै तिह सौ।
वज्जेयव्वं पयत्तेण- छोडाणी यत्न करिकै सर्वथा प्रकार।

दट्ठूण असणमज्झे- देखि करि भोजन कै मध्य।
पडियं जइ मच्छियं पि णिट्ठिवइ- पडी थकी मक्षका नैं जौ थूकै उलाकै मनुस।
कह मच्छियंडयाणं- तौ कैसैं माक्षी का अंडा कौ।
णिज्जासं- अर पीवै विवेकी जीव न पीवै।
णिग्घिणो पिबइ- सू गांवणौं निरदई जीव पीवै।

भो भो जिब्भिंदियलुद्धयाणमच्छेरयं- भो भो जिव्हा इंद्री का लोलपी ही।
पलोएह- मति सहैत नैं आख्यां देखौ, अर मति मांखी का छाती तौडौ।
किमि मच्छियणिज्जासं- किसी तरह माख्यां कौ अरक जो सहैत तिहनैं।
महुं पवित्तं भणंति जदो- पवित्र कहैं छैं जातैं मूरिख लोक जातैं त्रस जीवां का कलेवर करि उपजी वस्तु पवित्र नही।

लोगे वि सुप्पसिद्धं- लोक विषै भी या वात प्रसिद्ध छै।
बारह गामाइं जो डहइ अदओ- बारा गावां नैं जो भसम करै निरदई।
तत्तो सो अहिययरो- तिह थकी भी सो अधिक छै।
पाविट्ठो जो महुं हणई- पापिष्ठ जो माख्यों का छाता तौड़े मधु नैं हणैं।

जो अवलेहइ णिच्चं- जो चाटै सहैत नैं सदा काल।
णिरयं सो जाइ णत्थि संदेहो- सो नरक नैं प्राप्त होय ई बात मैं संदेह नहीं।
एवं णाऊण फुडं- इसौ जांणि करि प्रगट।
वज्जेयव्वं महुं तम्हा- छोडणी मधु नैं तातैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार मदिरा में दोष हैं उसी प्रकार शहद में भी दोष है। शहद के सेवन से मनुष्य को अत्यन्त पाप उत्पन्न होता है तथा यह अशुचि (मल-मूत्रादि) वस्तु के समान निन्दनीय है। अतः प्रयत्नपूर्वक इसका त्याग करना चाहिये।। 80।।

भोजन के मध्य गिरी हुई मक्खी को देखकर मनुष्य अपने मुख में रखे ग्रास को उगल देता है तो आश्चर्य है वह कैसे मधुमक्खियों के अण्डों से निकले रस को निर्दयतापूर्वक पी सकता है। विवेकी जीव उसको नहीं पीता।। 81।।

भो-भो जिव्हा इन्द्रिय के लोभी मनुष्यों को देखो मधुमक्खियों के छत्ते को तोड़कर मधुमक्खियों के रस से बने शहद को पवित्र कैसे कहते हैं। त्रस जीवों के घात से उत्पन्न वस्तु पवित्र नहीं होती है।। 82।।

संसार में कहावत प्रसिद्ध है कि जो निर्दयी मनुष्य बारह गांवों को जलाता है, उससे भी अधिक पापी वह है जो मधुमक्खियों का छत्ता तोड़ता है और शहद खाता है।। 83।।

इस प्रकार जो शहद को नित्य चाटता है वह नरक में जाता है। इस बात में कोई संदेह नहीं है। ऐसा जानकर मधु का त्याग करना चाहिए।। 84।।

ए मधु का दोष कह्या आगैं मांस का दोष कहै छैं

मांसदोष-वर्णन

मंसं अमेज्झसरिसं किमिकुलभरियं दुगंधवीभच्छं।
पाएण छिवेउं जं ण तीरए तं कहं भोत्तुं।।85।।

मंसासणेण वड्ढइ दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ।
जूयं पि रमइ तो तं पि वण्णिए पाउणइ दोसो।।86।।

लोइय सत्थम्मि वि वण्णियं जहा गयणगामिणो विप्पा।
भुवि मंसासणेण पडिया तम्हा ण पवज्जए मंसं।।87।।

टव्वाटीका-
मंसं अमेज्झसरिसं- मांस विष्टा समान छै।
किमिकुलभरियं- लटां का समूह करि भरयो छै।
दुगंधवीभच्छं- माहादुरगंध छै सूंगवणौं छैं।
पाएण छिवेउं जं ण- पगौ करि भी भीटिवौ जोग्य नहीं जिहनैं।
तीरए तं- अर न कनौ जाय उभां रहणौं।
कहं भोत्तुं- तौ तिहनैं कैसैं भखणौं।

मंसासणेण- मांस का भोजन करि।
वड्ढइ- वरतै छै।
दप्पो- उन्मत्तता।
दप्पेण- तिह उन्मत्तता करि।
मज्जमहिलसइ- मांस कौ भाखिवा वालौ मदिरा नैं भी चाहै।
जूयं पि रमइ- अर जूवां भी रमै।
तो तं पि- तव सो मांसाहारी।
वण्णिए- दोन्यों ही।
पाउणइ दोसो- पावै दोष मदपान अर द्युत क्रीडा।

लोइय सत्थम्मि वि वण्णियं- लौकिक शास्त्र विषै भी वरणयो छै।
जहा गयणगामिणो विप्पा- जो आकास विषै गमन करनहारा ब्राह्मण होता सो।

भुवि मंसासणेण पडिया- मांस का भोजन करि पडा इसौ सुणैं छै।
तम्हा ण पवज्जए मंसं- तो भी पापी न तजैं छैं मांस नैं नरक का जावा वाला।

ए मांस का दोष कह्या आगै वैस्या का दोष कहै छै

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मांस विष्टा के समान है, छोटे-छोटे कीड़ों से भरा हुआ है, दुर्गंधपूर्ण है, वीभत्स है, पैर से भी छूने योग्य नहीं है, कोई पास भी न जाए उसके तो उसको (मांस को) कैसे खाया जा सकता है।। 85।।

मांस का भोजन करने से उन्मत्तता बढ़ती है, उन्मत्तता से मदिरापान करने की इच्छा होती है, इससे वह जुआ भी खेलता है। इससे ऊपर वर्णित सभी दोष उसमें पाये जाते हैं।। 86।।

लौकिक शास्त्रों में भी ऐसा वर्णन पाया जाता है कि आकाश में गमन करने वाला ब्राह्मण भी मांस भक्षण के कारण भूमि पर गिर पड़ता है, तो भी पापी मांस भक्षण का त्याग नहीं करता है।। 87।।

वेश्यादोष-वर्णन

कारुय-किराय-चंडाल-डोंब-पारसियाणमुच्छिट्ठं ।
सो भक्खेइ जो सह वसइ एयरत्तिं पि वेसाए।।88।।

रत्तं णाऊण णरं सव्वस्सं हरइ वंचणसएहिं।
काऊण मुवइ पच्छा पुरिसं चम्मट्ठिपरिसेसं।।89।।

पभणइ पुरओ एयस्स सामी मोत्तूण तं ण मे अण्णो।
उच्चइ अण्णस्स पुणो करेइ चाडूणि बहुयाणि।।90।।

माणी कुलजो सूरो वि कुणइ दासत्तणं पि णीचाणं।
वेसा कएण बहुगं अवमाणं सहइ कामंधो।।91।।

जे मज्जमंसदोसा वेसा गमणम्मि होंति ते सव्वे।
पावं पि तत्थ हिट्ठं पावइ णियमेण सविसेसं।।92।।

पावेण तेण दुक्खं पावइ संसार-सायरे घोरे।
तम्हा परिहरियव्वा वेसा मण-वयणकाएहिं।।93।।

टव्वाटीका-
कारुय- कारू कहता धोबी इत्यादि।
किराय- तथा भील।
चंडाल- चिंडाल।
डोंब- डूंम।
पारसियाणमुच्छिट्ठं- अर पारसी इत्यादि जे नीच जाति त्यांकी औंठि।
सो भक्खेइ- सो जीव भखै छै।
जो सह वसइ- जो संगति करै छै।
एयरत्तिं पि वेसाए- एक रात्रि भी वैस्या की वैस्या कैसी छै सो सुणौं।

रत्तं णाऊण णरं- जौ कदाचि आसक्त जाणैं पुरिष नैं तौ तिहकौ।
सव्वस्सं- सर्वधन।

हरइ- हरि ले।
वंचणसएहिं- ठग विद्या का सैकड़ां करि।
काऊण- अर धन रहित करिकैं।
मुवइ पच्छा- पाछैं तजि दे।
पुरिसं- पुरिष नैं।
चम्मट्ठिपरिसेसं- हाड अर चर्म ही वाकी छाडैं और सारौ हरि ले।
पभणइ पुरओ एयस्स- कहै पापणी एकैं कै आगै जो।
सामी मोत्तूण- म्हारै धणी एक तू ही छै तो विनां।
तं ण मे अण्णो- म्हारै नही और कोई धणी।
उच्चइ- कहै।
अण्णस्स पुणो- दूजा कनै भी वहुरि यों ही जो म्हारै एक तू ही छै।
करेइ- ई भांति करै।
चाडूणि बहुयाणि- प्रपंच घणां अर सेवै पुरिष घणां।
माणी- मान कौ धनी।
कुलजो- अर कुलवंतौ।
सूरो वि कुणइ- तथा सुखी रइसौ भी पुरिष करै।
दासत्तणं पि- दासपणौं।
णीचाणं- नीच पुरिषां कौ।
वेसा कएण- वैस्या कै अर्थि।
बहुगं- वहौत।
अवमाणं सहइ कामंधो- अपमान सहै काम कौ आंधौ।
जे मज्जमंसदोसा- जे मद्य मांस का दोष कह्या।
वेसा गमणम्मि होंति- वैस्या का गमन विषै।
ते सव्वे- हौंहि छैं ते सर्व ही।
पावं पि तत्थ हिट्ठं- अर जे पाप मद्य मांस विषै दिखाया।
पावइ णियमेण सविसेसं- पावै निश्चै करि त्यांसौं भी घणां वेस्या का संगम विषै।
पावेण तेण दुक्खं- तिह पाप करि दुखां नैं।
पावइ संसार-सायरे घोरे- पावैं संसार सागर जो अतिभयांनिक तिह विषै।
तम्हा परिहरियव्वा- तातैं तजणी।
वेसा मण-वयणकाएहिं- वेस्या मन वचन काय करि।

ए वेस्या का दोष कह्या आगैं अहोडा का कहै छै

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो जीव एक रात्रि भी वेश्या की संगति करता है वह धोबी, भील, चांडाल, पारसी इत्यादि नीच जाति की जूठन को खाने के समान है क्योंकि वेश्या इन सभी जाति के लोगों का समागम करती है।88।

मनुष्य को स्वयं पर आसक्त जानकर वह वेश्या सैंकड़ों प्रवंचनाओं से अर्थात् ठग कर उसका सर्व धन हर लेती है और धन रहित करने के पश्चात् जब मात्र अस्थि और चर्म अर्थात् हाड़-मांस शेष रह जाता है, तब उसे छोड़ देती है।89।

वेश्या उस पुरुष के सामने कहती है कि "तुम्हीं मेरे स्वामी हो तुम्हें छोड़कर अन्य कोई नहीं। इस प्रकार वह अन्य से भी कहती है और अत्यन्त प्रपंचपूर्वक बहुत बात करती है। इस प्रकार अनेक पुरुषों का सेवन करती है।90

सम्मानित, कुलीन और शूरवीर धनी पुरुष भी वेश्या में आसक्त होकर नीच व्यक्तियों की दासता को स्वीकार करता है तथा काम वासना के अधीन होकर अत्यन्त अपमान को सहन करता है।91।

जो दोष मदिरापान व मांस भक्षण में है वे सभी दोष वेश्यागमन में भी होते हैं। इसलिए जो व्यक्ति वेश्या की संगति करता है वह मांस-मद्यपान के दोषों के साथ वेश्यागमन के विशेष पाप का भी नियम से बन्ध करता है।92।

वेश्या सेवन से उत्पन्न पाप के कारण व्यक्ति संसार सागर में घोर दुःख को प्राप्त करता है। इसलिए मन, वचन, काय से वेश्या गमन का त्याग करना चाहिए।93।

पारद्धिदोष-वर्णन

सम्मत्तस्स पहाणो अणुकंवा वण्णिओ गुणो जम्हा।
पारिद्धरमणसीलो सम्मत्तविराहओ तम्हा।।94।।

दट्ठूण मुक्ककेसं पलायमाणं तहा पराहुत्तं।
रदधरियतिणं सूरा कयापराहं पि ण हणंति।।95।।

णिच्चं पलायमाणो तिण चारी तह णिरवराहो वि।
कह णिग्घणो हणिज्जा आरण्णणिवासिणो वि मए।।96।।

गो-बंभणित्थिघायं परिहरमाणस्स होइ जइ धम्मो।
सव्वेसिं जीवाणं दयाए ता किं ण सो हुज्जा।।97।।

गो-बंभण-महिलाणं विणिवाए हवइ जह महापावं।
तह इयरपाणिघाए वि होइ पावं ण संदेहो।।98।।

महु-मज्ज-मंससेवी पावइ पावं चिरेण जं घोरं।
तं एयदिणे पुरिसो लहेइ पारिद्धरमणेण।।99।।

संसारम्मि अणंतं दुक्खं पावेदि तेण पावेण।
तम्हा विवज्जियव्वा पारद्धो देसविरएण।।100।।

टव्वाटीका-
सम्मत्तस्स पहाणो- सम्यक्त का सगला गुणां मै मुख्य।
अणुकंवा- जीवदया।
वण्णिओ गुणो- वरणयो छै वडौ गुण।
जम्हा- जातैं।
पारिद्धरमणसीलो- अहैडा कौ रमणहारौ पापी जीव।
सम्मत्तविराहओ- सम्यकदरसन कौ विराधक छै।
तम्हा- तातैं आखैट त्याज छै।

दट्ठूण मुक्ककेसं- सूरवीर क्षत्री का ए बिडद छै जो देखि करि छूटा केस।
पलायमाणं- तथा भागतौ देखि करि।

तहा पराहुत्तं- अथवा मान भांग हुवे दिखि करि।
रदधरियतिणं सूरा- अथवा दांतों तिणौं लीयो देखि करि सूरिवां पुरिष।
कयापराहं पि ण हणंति- जौ अपराध कौ करणहारौ होय तौ भी तिहनैं न मारैं।

णिच्चं पलायमाणो- अर जो सदा ही भागतो फिरै।
तिण चारी- तथा तिणां चरै।
तह णिरवराहो वि- अर कही कौ कोई अपराध भी न करै तौ।
कह णिग्घणो- तिहनै कैसे निरदई।
हणिज्जा- मारै।
आरण्णणिवासिणो वि मए- वन का वसिवा वाला मृगादिकां नै अहो विवेकी जीव हो विचारो।

गो-बंभणित्थिघायं- गाय की अर ब्राह्मण की तथा स्त्री की निश्चै करि हिंसा का।
परिहरमाणस्स होइ जइ धम्मो- तजिवा वाला पुरिषा कै होइ छै जौ धर्म।
सव्वेसिं जीवाणं- तौ सर्व ही जीवां की।
दयाए- दया करि।
ता किं ण सो हुज्जा- सो क्यौं न होय परम धर्म।

गो-बंभण-महिलाणं- गाय ब्राह्मण अर स्त्री का।
विणिवाए- मारिवा विषै।
हवइ- होय छै।
जह- जैसे।
महापावं- महापाप।
तह इयरपाणिघाए वि- तैसैं और जीवां की घात विषै भी।
होइ पावं ण संदेहो- होइ छै महापाप ई बात मैं संदेह नहीं सारा ही जीव मात्र गाय अर ब्राह्मण समाण छै।

महु-मज्ज-मंससेवी- मधु मदिरा मांस कौ भाखिवा वालौ।
पावइ पावं चिरेण जं घोरं- बांधै पाप घणां काल मैं जो माहाभयंकर।
तं एयदिणे पुरिसो लहेइ- सो पाप एक ही दिन विषै पुरिष पावै।
पारिद्धरमणेण- पराधी कर्म का रमिवा करि।

संसारम्मि अणंतं- संसार विषै अनंता।
दुक्खं पावेदि- दुखां नैं पावै।
तेण पावेण- तिह पाप करि।
तम्हा- तातैं।
विवज्जियव्वा- तजणी।
पारद्धो देसविरएण- सिकार कछुयक भी व्रत का धरणहारौ नैं।
टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सम्यक्त्व के सभी गुणों में मुख्य रूप से जीव दया कही गई है, अतः शिकार खेलने वाला पापी जीव सम्यग्दर्शन का विराधक है।94।

जो मुक्त केश हैं अर्थात् भय के कारण जिनके रोंगटे खड़े हैं, भागते हुए, जिनका मान भंग हो गया है अर्थात् अपनी ओर पीठे किये हुए, दांतों में तृण को दाबे हुए अपराध करने वाले दीन जीवों को भी शूरवीर पुरुष नहीं मारते है।95।

जो सदा ही भागते रहते हैं, तृण अर्थात् घास चरते हैं, निरपराधी हैं, वन में रहने वाले हैं ऐसे जीवों को कोई निर्दयी किस प्रकार मारते हैं। हे विवेकी जीव विचार करो।96।

गाय की, ब्राह्मण की तथा स्त्री की हिंसा का त्याग करने से धर्म होता है तो सभी जीवों की हिंसा के त्याग अर्थात् सभी जीवों पर दया से क्या वह धर्म नहीं होगा?97।

जब गाय, ब्राह्मण और स्त्रियों के मारने में महापाप का बंध होता है तो अन्य प्राणियों के वध में महापाप होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।98।

बहुत समय तक मधु, मांस, मदिरा का सेवन करने वाला जितने पाप का बंध करता है, उतने पाप का बंध शिकार खेलने वाला मनुष्य एक ही दिन में कर लेता है।99।

उस (शिकार खेलने के) पाप के कारण जीव संसार में अनंत दुःखों को प्राप्त करता है। इसलिए देशव्रती श्रावक को शिकार खेलने का त्याग करना चाहिए।100।

ए पारधी कर्म का दोष कह्या आगैं चोरी का दोष कहै छै

चौर्यदोष-वर्णन

परदव्वहरणसीलो इह-परलोए असायबहुलाओ।
पाउणइ जायणाओ ण कयावि सुहं पलोएई।।101।।

हरिऊण परस्स धणं चोरो परिवेवमाणसव्वंगो।
चइऊण णिययगेहं धावई उप्पहेण संतट्ठो।।102।।

किं केण वि दिट्ठो हं ण वेत्ति हियएण धगधगंतेण।
ल्हुक्कइ पलाइ पखलइ णिद्दं ण लहेइ भयविट्ठो।।103।।

ण गणेइ माय-वप्पं गुरु-मित्तं सामिणं तवसिंस वा।
पच्चेलिउ हरइ छलेण किंचिण्णं किंपि जं तेसिं।।104।।

लज्जा तहाभिमाणं जस-सीलविणासमादणासं च।
परलोयभयं चोरो अगणंतो साहसं कुणई।।105।।

हरमाणो परदव्वं दट्ठूणारक्खिएहिं तो सहसा।
रज्जूहिं बंधिऊणं घिप्पइ सो मोरबंधेण।।106।।

हिंडाविज्जइ टिंटे रत्थासु चढाविऊण खरपुट्ठिं।
वित्थारिज्जइ चोरो एसो त्ति जणस्स मज्झम्मि।।107।।

अण्णो वि परस्स धणं जो हरेइ सो एरिसं फलं लहई।
एवं भणिऊण पुणो णिज्जइ पुर-बाहिरे तुरियं।।108।।
णेत्तुद्धारं अह पाणि-पायगहणं णिसुंभणं अहवा।
जीवंतस्स वि सूलावारोहणं कीरइ खलेहिं।।109।।

एवं पिच्छंता वि हु परदव्वं चोरियाइ गेण्हंति।
ण मुणंति किं पि सहियं पिच्छह हो मोह माहप्पं।।110।।

परलोए वि य चोरो चउगइ-संसार-सायर-निमण्णो।
पावइ दुक्खमणंतं तेयं परिवज्जए तम्हा।।111।।

टव्वाटीका-
परदव्वहरणसीलो- परद्रव्य का हरिवौ कौ छै सुभाव जिहकौ, अैसौ जो चोर सो।
इह-परलोए असायबहुलाओ- इह लोक विषै परलोकविषै असाता बहुत।
पाउणइ जायणाओ ण- पावै जातना कहियै त्रसना इत्यादिक।
कयावि सुहं पलोएई- कदे भी सुखनैं न देखै आख्यां, चौरी कै करिवा वालौ।

हरिऊण- हरि करि।
परस्स धणं- परकौ धन।
चोरो- चोर।
परिवेवमाण- कंपायमान छै।
सव्वंगो- सर्व अंग जिहकै।
चइऊण- तजि करि।
णिययगेहं- आपणौं घर।
धवई- दौड़ै।
उप्पहेण- गैलौ छोडि करि कवट मार्ग नैं।
संतट्ठो- मारिवा स्यो डरपतौ थकौ।

किं केण वि दिट्ठो हं- कोई कोयां देख्यो हूं मति कोई मोनैं पकडि ले ई भांति सदा डरतौई रहै।
ण वेत्ति- न जानैं।
हियएण- हिरदा करि कैं।
धगधगंतेण- किसौ छै चोर कै ह्रिदय धड़क धड़क करै छै सदा।
ल्हुक्कइ- ल्हुकै छिपै।
पलाइ- भागै।
पखलइ- भागतौ दौडै दौडतां आंखटै।
णिद्दं ण लहेइ- अर कदें नींद भी न ले।
भयविट्ठो- भय करि बेठो थको।

ण गणेइ- न गनैं चोर।
माय-वप्पं- माता नैं न गनैं पिता नैं।
गुरु-मित्तं- न गुर नैं न मित्र नैं।
सामिणं तवसिंस वा- न स्वामी नैं अथवा न गनैं तपस्वी नैं।
पच्चेलिउ- उलटौ।
हरइ- सारां कौ द्रव्य हरै।
छलेण- प्रपंच करि।

किंचिण्ण किंपि जं तेसिं- परंतु रहै किंचित मात्र भी कोई वस्तु त्यां चोरां कनैं।

भावार्थ- चौर अनेक माल चौरे परि सदा दरिद्री रहै चोरी का व्यसन करि धनवान न होई।

लज्जा तहाभिमाणं- लज्जा तथा मान।
जस-सील- अर जस, सील इत्यादि।
विणास- समस्त कौ नास होय छै चोरी करि सो चोर न गनैं।
मादणासं च- बहुरि सरीर कौ नास अर आत्मा कौ धर्म नास।
परलोयभयं चोरो- अर परलोक विषै नरक निगोदादि कौ भय चौर।
अगणंतो साहसं कुणइ- न गणत थाका चोरी करै छै, सो साहस करै छै, गंढिपणौं करै छै।

हरमाणो परदव्वं- हरतो थकौ परद्रव्य नैं।
दट्ठूणा- देखै।
रक्खिएहिं- कोटवाल।
तो सहसा- तबै सीघ्र ही।
रज्जूहिं बंधिऊणं- तौ रसां सौ बांधि करि।
घिप्पइ- पकड़ै।
सो मोरबंधेण- सो पूठीका देकरि।

हिंडाविज्जइ- फिराव जे नगर मैं।
टिंटे- सोर करता थका हुरयो देता थका।
रत्थासु- बाजार की गली गली विषै।
चढाविऊण खरपुट्ठिं चढ़ाय करि गदहा की पूति अर ई भांति।
वित्थारिज्जइ चोरो- प्रगट करता जाय कोटवाल का चाकर जो चोर छै चोर छै।
एसो त्ति- यो दुराचारी।
जणस्स मज्झम्मि- इह लोक मध्य ए प्रगट छै चोरी का फल।

अण्णो वि परस्स धणं जो- और भी जो कोई परायो द्रव्य।
हरई- हरैलौ।
सो एरिसं फलं- सो अैसा फल।
लहई- पावैलौ।
एवं भणिऊण पुणो- यों कहता कहता हेला करता कोटवाल का चाकर।
णिज्जइ- ले जाय।
पुर-बाहिरे- नगर के वारैं।
तुरियं- तुरत।

णेत्तुद्धारं- ले जाय करि नगर वारैं।
अह पाणि-पायगहणं- हाथ अथवा पग वन विषै।
णिसुंभणं- काटैं।
अहवा- अथवा।

जीवंतस्स वि सूलावारोहणं कीरइ- मूल जीवतव्य कौ जौ मस्तक तिह कौ ही छेद करैं निरदई।
खलेहिं- दुष्ट जीव।

एवं पिच्छंता वि हु- ई भांति देखता थका भी चोरी का फल।
परदव्वं- परद्रव्य नैं।
चोरियाइ गेण्हंति- चोरी करि ग्रहै छै।
ण मुणंति- अर न जांणै छै।
किं पि सहियं- किंचित् मात्र भी आपणा हित नैं।
पिच्छह हो मोह माहप्पं- सो देखौ हो मोह कौ महातम।

परलोए वि य चोरो- परलोक विषै भी चोर।
चउगइ- चतुरगति।
संसार-सायर- संसार समुद्र विषै।
निमण्णो- डूब्यो थकौ।
पावइ दुक्खमणंतं- पावै दुख अनंता।
तेयं- चोरी।
परिवज्जए- तजणी।
तम्हा- तातैं सर्वथा।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

परद्रव्य को हरण करने के स्वभाव वाला अर्थात् जो चोरी करता है वह चोर इस लोक में और परलोक में बहुत असाता अर्थात् दुःखों से यातनाओं को पाता है और कदापि सुख को नहीं देखता है अर्थात् कभी भी सुख को नहीं पाता है।101।

पराये धनका हरण करके चोर भयभीत होता हुआ थर-थर कांपता है और अपने घर को छोड़कर कुमार्ग से इध्र-उध्र भागता है।102।

क्या किसी ने मुझे देखा है अथवा नहीं देखा है इस प्रकार धक-धक करते हृदय से कभी छिपता है, भागता है, गिरता है, पड़ता है तथा भयभीत होने के कारण निद्रा भी नहीं ले पाता है।103।

चोर अपनी माता को, पिता को, गुरु को, मित्र को, स्वामी को अथवा तपस्वी को भी नहीं गिनता है अर्थात् नहीं मानता है। वह बलपूर्वक या छलपूर्वक प्रपंच करके उनके पास जो कुछ भी होता है उसे हर लेता है।104।

भावार्थ- चोर अनेक माल, धन चोरी करता है किन्तु वह सदा दरिद्र ही रहता है। चोरी से कोई धनवान नहीं होता।

चोरी करने वाला व्यक्ति लज्जा, मान, यश, शील, शरीर और आत्मा के धर्म के विनाश को नहीं मानता तथा परलोक के नरक, निगोदादि के भय को भी नहीं विचारता हुआ चोरी करने का साहस करता है।105।

दूसरे के द्रव्य का हरण करता हुआ देखकर कोतवाल या रक्षक शीघ्र ही उसे रस्सी से बाँधकर पकड़ लेते हैं और उसके हाथ कमर की ओर बाँध देते हैं।106।

चोर को गधे की पीठ पर चढ़ाकर नगर में गली-गली में घुमाते हैं। लोगों के बीच "यह चोर है" इस प्रकार फैलाकर उसका अपमान करते हैं।107।

अन्य कोई भी जो दूसरे का धन चुराता है वह ऐसा ही फल पाता है। इस प्रकार कहकर तुरंत ही उसे पुनः नगर के बाहर ले जाते हैं।108।

नगर के बाहर ले जाकर वे दुष्ट उसके हाथ-पैर काट देते हैं अथवा उसे जीवित ही सूली पर चढ़ा देते हैं।109।

इस प्रकार चोरी के फल को देखते हुए भी जो लोग चोरी से पराये धन का हरण करते हैं वे कुछ भी अपना हित नहीं जानते हैं, देखो यह मोह का माहात्म्य है।110।

परलोक में भी यह चोर चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ, संसार सागर में गोते खाता हुआ अनंत दुःख को प्राप्त करता है। इसलिए चोरी का सर्वथा त्याग करना चाहिए।111।

ए चोरी का दोष कह्या आगैं परदारा का दोष कहै छै

परदारादोष-वर्णन

दट्ठूण परकलत्तं णिब्बुद्धी जो करेइ अहिलासं।
ण य किं पि तत्थ पावइ पावं एमेव अज्जेइ।।112।।

णिस्ससइ रुयइ गायइ णिययसिरं हणइ महियले पडई।
परमहिलमलभमाणो असप्पलावं पि जंपेई।।113।।

चिंतेइ मं किमिच्छइ ण वेइ सा केण वा उवाएण।
'अण्णेमि' कहमि कस्स वि ण वेत्ति चिंताउरो सददं।।114।।

ण य कत्थ वि कुणइ रई मिट्ठं पि य भोयणं ण भुंजेई।
णिद्दं पि अलहमाणो अच्छइ विरहेण संतत्तो।।115।।

लज्जाकुलमज्जायं छंडिऊण मज्जाइभोयणं किच्चा।
परमहिलाणं चित्तं अमुणंतो पत्थणं कुणइ।।116।।

णेच्छंति जइ वि ताओ उवयारसयाणि कुणइ सो तह वि।
णिब्भच्छिज्जंतो पुण अप्पाणं झूरइ विलक्खो।।117।।

अह भुंजइ परमहिलं अणिच्छमाणं बला धरेऊणं।
किं तत्थ हवइ सुक्खं पच्चेल्लिउ पावई दुक्खं।।118।।

अह कावि पावबहुला असई णिण्णासिऊण णियसीलं।
सयमेव पच्छियाओ उवरोहवसेण अप्पाणं।।119।।

जइ देह तह वि तत्थ सुण्णहर-खंडदेउलयमज्झयारम्मि।
सच्चित्ते भयभीओ सोक्खं किं तत्थ पाउणइ।।120।।

सोऊण किं पि सद्दं सहसा परिवेवमाणसव्वंगो।
लुक्कइ पलाइ पखलइ चउद्दिसं णियइ भयभीओ।।121।।

जइ पुण केण वि दीसई णिज्जइतो बंधिऊण णिवगेहं।
चोरस्स णिग्गहं सो तत्थ वि पाउणइ सविसेसं।।122।।

पेच्छह मोहविणडिओ लोगो दट्ठूण एरिसं दोसं।
पच्चक्खं तह वि खलो परित्थिमहिलसदि तो चित्तं।।123।।

परलोयम्मि अणंतं दुक्खं पाउणइ इहभवसमुद्दम्मि।
परयारा परमहिला तम्हा तिविहेण वज्जिज्जो।।124।।

टव्वाटीका-

दट्ठूण परकलत्तं- देखि करि परस्त्री नैं।
णिब्बुद्धी जो- जो दुरबुद्धी।
करेइ अहिलासं- करै अभिलाख।
ण य किं पि- नहीं कोई।
तत्थ पावइ- तैंठै पावे।
पावं एमेव अज्जेइ- सर्वथा पाप ही उपाजै।

णिस्ससइ- निसास नाखै।
रुयइ- रोवै।
गायइ- गांवै।
णिययसिरं हणइ- आपणौ माथौ फोड़ै।
महियले पडई- अर प्रथ्वी विषै पडै।
परमहिलमलभमाणो- परस्त्री नैं नही पावतौ थकौ।
असप्पलावं पि- कूण विलाप करै।
जंपेई- जदवा तदवा बकै।

चिंतेइ- परस्त्री कौ अभिलाषी यों चितवै।
मं किमिच्छइ- मोनैं वा नारी इछै।
ण वेइ- अथवा न इछै।
सा केण वा उवाएण- तौं वा नारी किसा उपाय करि।
अण्णेमि- आणौं।
कहमि कस्स वि ण वेत्ति- कुण दूती लगाऊं कुणैं सौं वीनती करूँ अथवा न करूं।
चिंताउरो सददं- ई भांति चिंता करि पीडिओ रहै निरंतर।

ण य कत्थ वि कुणइ- नही कठै भी करै।
रई- रति अर।
मिट्ठं पि य भोयणं ण भुंजेई- मीठा भोजन भी न जीमैं।
णिद्दं पि अलहमाणो- नीद नैं भी न लैतो संतौ।
अच्छइ- तिष्ठै।
विरहेण संतत्तो- विरह करि तप्तायमान हुवौ थकौ महादुखी।

लज्जाकुलमज्जायं- परस्त्रा लंपट पुरिष लज्या अर कुल की मरजादा।
छंडिऊण- छोड़ि करि।
मज्जाइभोयणं- अमल इत्यादि खाय।
किच्चा- करि।
परमहिलाणं चित्तं- मूरिख परस्त्री का चित्त नैं।

अमुणंतो- न जांणतौ थकौ।
पत्थणं कुणइ- प्रार्थना करै।

भावार्थ- काम कौ आंधौ असी न विचारै जो वा स्त्री कुल मरजादा अर लज्या सील तजि करि किसी भांति म्हारौ अंगीकार करिसी सो विना ही विचारयां प्रार्थना करै।

णेच्छंति जइ वि ताओ- अर न इछै जौ कदीचि तिहनैं सो कुलवंती सीलवंती।
उवयारसयाणि- पणि तौ भी जतन सैकडां।
कुणइ सो तह वि- करै सो मूरिख तिहनैं प्रसन्न करिवा का।
णिब्भच्छिज्जंतो- अर दरवडायो थकौ भी केडौ न तजै।
पुण- बहुरि।
अप्पाणं- आपनैं निंदै।
झूरइ विलक्खो- घणौं रूरै विलख्यौ मूंढौ करै।

अह भुंजइ परमहिलं- अथवा जौ कदाचि भोगवै परस्त्री नैं।
अणिच्छमाणं- न इछती थकी नैं।
बला धरेऊणं- जोरावरी पकडि करि।
किं तत्थ हवइ सुक्खं- तातैं ठै कांई होय सुख।
पच्चेल्लिउ- उलटौ।
पावई दुक्खं- पावै दुख।

अह कावि- अथवा कोई।
पावबहुला- महापापणी।
असई णिण्णासिऊण- कुसीली स्त्री विनासि करि।
णियसीलं- आपणां सील धर्म नैं।
सयमेव पच्छियाओ- अर आपही अर ईकी प्रारथी संती।
उवरोहवसेण- सकरि आग्रह सेती।
अप्पाणं- आपानैं भृष्ट करै आपणौं सरीर।

जइ देह तह वि तत्थ- जौ समर्पण करै इहमैं तौ।
सुण्णहर- सूनां घर।
खंडदेउलयमज्झयारम्मि- तथा फूटा देवल त्यांह कै मध्य।
सच्चित्ते भयभीओ- चिंता सहित भयभीत तथा करै भोग सेवै तव।
सोक्खं किं तत्थ पाउणइ- सुख काईं तैठैं पावै क्यों भी न पावै दुखी ही होइ।

सोऊण किं पि सद्दं- सूणि करि क्यां भी सवद।
सहसा परिवेवमाणसव्वंगो- सीघ्र ही कांपै छै सर्व अंग जिह कौ।

लुक्कइ- लुकौ छिपै।
पलाइ- भागै।
पखलइ- भागतौ आंखटै।
चउद्दिसं- च्यारयों दिसा नैं।
णियइ- निरखै।
भयभीओ- भयभीत थकौ।

जइ पुण केण वि दीसई- जौ बहुरि कुसील सेवता कोई देखै।
णिज्जइ तो- तौ ले जाय।
बंधिऊण- बांधि करि।
णिवगेहं- राजा कै दरबार अर।
चोरस्स णिग्गहं- चोर कौ दंड जो आगैं बतायो।
सो तत्थ वि पाउणइ सविसेसं- सो तहां पावै कुसील कौ सेवा बालौ तथा तिहसौं विसेष।

पेच्छह मोहविणडिओ- देखौ मोह की विडंवना।
लोगो दट्ठूण- लोग देखि करि।
एरिसं दोसं- इसौ परस्त्रा सेवन कौ दोष।
पच्चक्खं- प्रत्यक्ष।
तह वि खलो- तौ भी दुष्ट।
परित्थिमहिलसदि- परनारी नैं अभिलाषै छै।
तो चित्तं- चित्त विषै।

परलोयम्मि अणंतं- अर परलोक विषै अनंत।
दुक्खं- दुःख नैं।
पाउणइ इहभवसमुद्दम्मि- पावै छै भव समुद्र मांही।
परयारा- परदारा कौ सेवा वालौ।
परमहिला- परस्त्री नैं तातैं।
तम्हा तिविहेण वज्जिज्जो- मन वचन काय करि तजणी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो बुद्धहीन व्यक्ति परस्त्री को देखकर उसकी अभिलाषा करता है, वह वहाँ कुछ भी नहीं पाता है अपितु पाप का ही उपार्जन करता है।112।

परस्त्री को न पाने पर वह पुरुष निःश्वास छोड़ता है, रोता है, गाता है, अपना सिर फोड़ता है तथा पृथ्वी पर गिरता है और असत्य भी बोलता है।113।

परस्त्री में आसक्त पुरुष सोचता है कि वह स्त्री मुझे चाहती है अथवा नहीं? उसे किस प्रकार प्राप्त करूँ? या किस उपाय से उसे प्राप्त करूँ? अन्य किसी से कहूँ या न कहूँ। इस प्रकार चिन्ता कर निरन्तर पीड़ित रहता है।114।

वह परस्त्री आसक्त पुरुष कहीं भी रति नहीं करता है, मीठा भोजन भी नहीं करता है। निद्रा भी नहीं लेता है, वह सदा स्त्री के विरह से संतप्त महादुखी रहता है।115।

परस्त्री लम्पट पुरुष लज्जा और कुल मर्यादा को छोड़कर मांस मद्यादि अभक्ष्य भोजन करता हैं। परस्त्रियों के चित्त या इच्छा को नहीं जानता हुआ, उनसे प्रार्थना करता है।116।

भावार्थ- वह कामांध पुरुष इस प्रकार विचार नहीं करता कि वह स्त्री, कुल, मर्यादा, लज्जा और शील को त्याग कर उसको किस प्रकार स्वीकार करेगी। बिना विचार के ही उससे प्रार्थना करता है कि वह उसे स्वीकार कर ले।

यदि कदाचित् वह स्त्री उसकी इच्छा नहीं करती है अर्थात् उसको नहीं चाहती है तो भी वह उसे प्रसन्न करने के सैंकड़ों उपाय करता है। स्वयं को अस्वीकार किये जाने पर स्वयं की निंदा करता है, रोता है, लक्ष्य रहित होकर भटकता है।117।

यदि न इच्छा करने वाली स्त्री को वह लम्पट पुरुष बलपूर्वक भोगता भी है तो क्या वहाँ सुख होता है बाद में दुःख ही पाता है।118।

अथवा कोई महापापिनी, कुशील स्त्री स्वयं ही अपने शील का नाश कर स्वयं ही प्रार्थना करती है, आग्रह करती है और अपना शरीर स्वयं भ्रष्ट करती है।119।

जो समर्पण करे तो भी उस शून्य गृह या खंडित देवकुल के भीतर रमण करता हुआ वह अपने चित्त में भयभीत होने से क्या वहाँ सुख को प्राप्त करता है?120।

सहसा कोई भी शब्द सुनकर वह थर-थर कांपता है, छिपता है, भागता है, गिरता है, चारों दिशाओं को भयभीत होकर देखता है।121।

जो कोई भी कुशील का सेवन करते देख लेता है तो वह बाँधकर राजा के दरबार ले जाता है। वहाँ पर जो चोर का दंड होता है उससे भी अधिक दण्ड कुशील सेवन करने वाले को मिलता है।122।

मोह की विडम्बना देखो परस्त्री सेवन को चाहने वाले दुष्ट लोग ऐसे दोषों को प्रत्यक्ष देखकर भी अपने हृदय में पराई स्त्री की अभिलाषा करते हैं।123।

परस्त्री सेवन करने वाला पुरुष परलोक में इस भवसागर में अनंत दुःख को पाता है। अतः मन, वचन, काय से परिगृहीत अथवा अपरिगृहीत स्त्रियों का त्याग करना चाहिये।124।

ए परदारा का दोष कह्या आगै एक एक विसन का सेवा करी ज्यांह ज्यांह कौ बुरौ हुवौ सो कहै छै

सप्तव्यसनदोष-वर्णन

रज्जब्भंसं वसणं बारह संवच्छराणि वणवासो।
पत्तो तहावमाणं जूएण जुहिट्ठिलो राया।।125।।

टव्वाटीका-

रज्जब्भंसं वसणं- राजा कौ नास अर कष्ट।

बारह संवच्छराणि- तथा वारा वरस।

वणवासो- वन कौ वास।

पत्तो तहावमाणं- तथा अपमान पायो।

जूएण जुहिट्ठिलो राया- जूवां करि जुधिष्ठ्ठर राजा।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

राजा युधिष्ठ्ठर के जुआ खेलने के कारण राज्य का नाश हुआ, बारह वर्ष का वनवास हुआ तथा अपमान को प्राप्त हुए।

उज्जाणम्मि रमंता तिसाभिभूया जल त्ति णाऊण।
पिबिऊण जुण्णमज्जं णट्ठा जादवा तेण।।126।।

टव्वाटीका-

उज्जाणम्मि रमंता- अर द्वारिका वन विषै रमता थका।

तिसाभिभूया- तिस करि पीड्या।

जल त्ति णाऊण- जल अैसौ जांणि।

पिबिऊण जुण्णमज्जं- पीय करि जूनौं मद, जो श्रीकृष्ण नगर मैं तलास करि मद का भांडा फूडाय वन मैं नषाय दीयो छै, खाडा मै, सो वो तौ सूकि गयो छै अर वैं ऊपरि मेह ठूठौ सौ जल वैं मद्य करिहू दूषित हुवौ छै अर पाछै महुडा वैमै पडया अर तावडा करि तपा थका अकल्या छा सो जल पीयो।

णट्ठा ते- तिह सौ नास नैं प्राप्त हुवा ते।

जादवा तेण- जादव तिह करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उद्यान में रमण करते हुए प्यास से पीड़ित होकर यादवों ने पुरानी शराब को जल समझकर पिया और उससे ही वे नष्ट हो गये।

विशेष अर्थ- श्री कृष्ण ने गड्ढे में शराब का घड़ा फूड़वा दिया था। वह सूख गई। बरसात में बारिश का पानी भर गया तो जल शराब के कारण दूषित हो गया। तत्पश्चात् उसमें महुआ गिर गया और धूप से तप कर उबल गया ऐसे दूषित जल को पीकर यादव नाश को प्राप्त हुए।

मंसासणेण गिद्धो वगरक्खो एय चक्कणयरम्मि।
रज्जओ पब्भट्ठो अयसेण मुओ गओ णरयं।।127।।

टव्वाटीका-

मंसासणेण गिद्धो- अर मांस का भोजन करि गृद्ध कहता लोलुपी हुवो।

वगरक्खो- वक नाम राजा।

एय- एक पापी।

चक्कणयरम्मि- चक्र नाम नगर विषै सो।

रज्जओ पब्भट्ठो- राज्य भ्रष्ट हुवो, पद भ्रष्ट हुवो।

अयसेण मुओ- अर अपजस करि मूवो सो।

गओ णरयं- मरि करि गयो नरक नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

एक चक्र नामक नगर में वक राजा मांस खाने में लोलुपी होने से राज्य पद से भ्रष्ट हुआ और अपयश से मर कर नरक गया।

सव्वत्थ णिवुणबुद्धी वेसासंगेण चारुदत्तो वि।
खइऊण धणं पत्तो दुक्खं परदेसगमणं वा।।128।।

टव्वाटीका-

सव्वत्थ णिवुणबुद्धी- अर सर्व वात मैं निपुण बुद्ध जिहकी।

वेसासंगेण चारुदत्तो वि- अैसो जो सेठ चारदत्त सो भी वेस्या का संग थकी।

खइऊण धणं- खपाय करिके त्यांका धन नैं।

पत्तो दुक्खं- अर प्राप्त हुवो दुख नैं।
परदेसगमणं वा- अथवा परदेस गमन नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सर्व कार्यों में निपुण बुद्ध वाले सेठ चारुदत्त ने भी वेश्या की संगति के कारण सर्व धन को खोकर दुःख पाया और परदेश में गमन करना पड़ा।

होऊण चक्कवट्टी चोद्दसरयणाहिओ वि संपत्तो।
मरिऊण बंभदत्तो णिरयं पारिद्धरमणेण।।129।।

टव्वाटीका-
होऊण चक्कवट्टी- होय करि भी चक्रवर्त्ति।
चोद्दसरयणाहिओ वि संपत्तो- चौदह रतनां कौ स्वामी प्राप्त हुवो।
मरिऊण- मरि करि।
बंभदत्तो- ब्रंभदत्त सातमा।
णिरयं- नरक नैं।
पारिद्धरमणेण- आखेट करि मिवा करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चक्रवर्ती होकर चौदह रत्नों के स्वामित्व को प्राप्त हुआ ब्रह्मदत्त भी शिकार खेलने के कारण मरकर नरक गया।

णासावहारदोसेण दंडणं पाविऊण सिरिभूई।
मरिऊण अट्टठ्झाणेण हिंडिओ दीहसंसारे।।130।।

टव्वाटीका-

णासावहारदोसेण- अर न्यास कहता पराई अमानति थापणि तिह का हरिवा का दोष का।
दंडणं- राजा दंड नैं।
पाविऊण सिरिभूई- पाय करि श्रीभूति नामा विप्र जो सत्यघोष कहावतौ।
मरिऊण अट्टझाणेण- सो मरि करि आर्तध्यान थकी।
हिंडिओ दीहसंसारे- भरम्यौं दीरघ संसार विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

न्यास का अर्थ है पराई अमानत, दूसरे की अमानत का हरण करने के दोष से दंड पाकर श्रीभूति ने आर्त्त ध्यानपूर्वक मरकर दीर्घ संसार-सागर में भ्रमण किया।

होऊण खयरणाहो वियक्खणो अद्धचक्कवट्टी वि।
मरिऊण गओ णरयं परित्थिहरणेण लंकेसो।।131।।

टव्वाटीका-

होऊण खयरणाहो- अर होय करि विद्याध्रां कौ नाथ।
वियक्खणो- महाविचक्षण।
अद्धचक्कवट्टी वि- अर्ध्चक्री प्रतिनारायण पद कौ धरक।

मरिऊण गओ णरयं- सो भी मरि करि गयो नरक।

परित्थिहरणेण- परस्त्रा का हरण करि।

लंकेसो- लंका कौ स्वामी रावण।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

विद्याधरों का नाथ, अद्धर्चक्रवर्ती, प्रतिनारायण पद का धारी लंका का राजा रावण भी परस्त्री हरण के कारण मरकर नरक गया।

एए महाणुभावा दोसं एक्केक्क-वसण-सेवाओ।
पत्ता जो पुण सत्त वि सेवइ वणिणज्जए किं सो।।132।।

एए महाणुभावा- ए प्रसिद्ध मोटा मोटा मिनख महाप्रभाव का धणी।

दोसं एक्केक्क-वसण-सेवाओ- सो दोष नैं एक एक विसन का सेवा थकी।

पत्ता- प्राप्त हुवा।

जो पुण- जो वहुरि।

सत्त वि- सात ही।

सेवइ- विसन सेवै।

वणिणज्जए किं सो- सो कांई वरणि जे जिहका दोष कौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ऐसे-ऐसे प्रसिद्ध महाप्रभावी महानुभाव एक-एक व्यसन सेवन के दोष से दुःख को प्राप्त हुए। फिर जो सातों ही व्यसनों का सेवन करता है, उसके दुःख का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है।

साकेते सेवंतो सत्त वि वसणाइं रुद्ददतो वि।
मरिऊण गओ णिरयं भमिओ पुण दीहसंसारे।।133।।

टव्वाटीका-

साकेते सेवंतो- साकेता कहतां अजोध्या तैंठा कौ वासी सेवतौ थकौ।

सत्त वि वसणाइं- सात ही विसन नैं।

रुद्ददतो वि- रुद्रदत्त ब्राह्मण।

मरिऊण गओ णिरयं- सो मरि करि गयो नरकि।

भमिओ पुण दीहसंसारे- भ्रम्यों बहुरि दीरघ संसार विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

साकेत अर्थात् अयोध्या नगर में रुद्रदत्त ब्राह्मण सप्त व्यसनों के सेवन के कारण मर कर नरक गया और दीर्घकाल तक संसार सागर में भ्रमण करता रहा।

ए सात विसन का दोष कह्या आगै चतुरगति का दुख कहै छै

नरकगतिदुख-वर्णन

सत्तणहं विसणाणं फलेण संसार-सायरे जीवो।
जं पावइ बहुदुक्खं तं संखेवेण वोच्छामि।।134।।

टव्वाटीका-

सत्तणहं विसणाणं- सात ही विसनों का।

फलेण- फल करि।

संसार-सायरे- संसार सागर विषै।

जीवो- जीव।

जं पावइ बहुदुक्खं- जो पावै छै बहुत दुखां नैं।

तं संखेवेण- सो संक्षेप ताकरि।

वोच्छामि- कहुं छूं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सप्त व्यसनों के सेवन के फल से प्राणी संसार सागर में जो महादुःखों को पाता है, उनको मैं संक्षेप में कहता हूँ।

अइणिट्ठुरफरुसाइं पूइ-रुहियाइं अइदुगंधाइं।
असुहावहाइं णिच्चं णिरएसुप्पत्तिठाणाइं।।135।।

तो तेसु समुप्पण्णो आहारेऊण पोग्गले असुहे।
अंतोमुहुत्तकाले पज्जत्तीओ समाणेई।।136।।

टव्वाटीका-

अइणिट्ठुरफरुसाइं- प्रथम ही नरकों कौ वर्णन कीजै छै, अतिकठोर छै, सपरस जिह भूमी कौ।

पूइ-रुहियाइं अइदुगंधाइं- अर राधि, लोही, अति दुरगंध वस्तां भरी छै भूमि सों।

असुहावहाइं णिच्चं- निरन्तर अशुभ पदार्थ बहते रहते हैं।

णिरएसुप्पत्तिठाणाइं- नरक में नारकियों के उत्पन्न होने के स्थान।

तो तेसु समुप्पण्णो- सो पापी जीव तिह नरक भूमि विषैं उपज्यो थकौ।

आहारेऊण- अंगीकार करि।

पोग्गले असुहे- नरक संबंधी जे असुभ पुद्गल त्यांह नै।

अंतोमुहुत्तकाले- अर अंतरमहुरत काल विषै।

पज्जत्तीओ- परजाय तनै।

समाणेई- प्राप्त होइ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नरकों में नारकियों के उत्पन्न होने के स्थान अत्यन्त कठोर स्पर्श वाले है, उनमें पीप, रक्त आदि अतिदुर्गन्धपूर्ण, अशुभ पदार्थ निरन्तर बहते रहते हैं।135।

वह पापी जीव उनमें उत्पन्न होकर नरक संबंधी जे अशुभ पुद्गल उनको अंगीकार कर अन्तर्मुहुर्तकाल में पर्याप्तियों को प्राप्त कर लेता है।136।

उववायाओ णिवडइ पज्जत्तयओ दंडत्ति महिवीढे।
अइकक्खडमसहंतो सहसा उप्पडदि पुण पडई।।137।।

टव्वाटीका-

उववायाओ णिवडइ- नरक भूमि मैं जे नारक्यां का उपजिवा का विला छै, त्यांमैं सौं उतपात को घणै दोहरौ पडै।

पज्जत्तयओ- सरीर पूरण हुवो थकौ।

दंडत्ति महिवीढे- जोरा सौं भूमि विषै।

अइकक्खडमसहंतो- अति कठोर जो नरक भूमि तिहनैं न सहतौ थकौ।

सहसा- सीघ्र ही उछलै।

उप्पडदि- उछलि करि।

पुण पडई- वहुरि पडै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नरकभूमि में उन नारकियों के उत्पन्न होने के बिल अर्थात् उपपादस्थान से पर्याप्तियों को पूरा करके दडे के समान महीपृष्ठ अर्थात् नरक भूमि पर गिर पड़ता है। नरक के अत्यन्त कठोर धरातल को सहन न कर पाने से पुनः ऊपर को उछलता है तथा फिर से नीचे गिर पड़ता है।

जइ को वि उसिणणरए मेरुपमाणं खिवेइ लोहंडं।
ण वि पावइ धरणितलं विलयज्जं तं अंतराले वि।।138।।

टव्वाटीका-

जइ को वि- जौ कोई।

उसिणणरए- उश्न नरक जे पहला सौं लै पौणां पांच तक त्यांह विषै।

मेरुपमाणं खिवेइ- मेर प्रमाण नाखै।

लोहंडं- लोह कौ गोलौ।

ण वि पावइ- तौ न पहुंचै।

धरणितलं- धरती तक।

विलयज्जं तं अंतराले वि- विलय जाय अंतराल ही मैं

भावार्थ- नरक की असी गरमी छै जो मेर प्रमांण लोह कौ गोलौ नाख्यौ थको वीचि ही मैं भस्म होय जाय भूमि तक न पहुंचै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि कोई उष्ण वेदना देने वाले नरक में मेरु समान लोहे के गोले को फेंके तो वह भूमि तल तक नहीं पहुँच सकता अपितु बीच में ही पिघल जायेगा अर्थात् नष्ट हो जायेगा।

भावार्थ- नरकों में गरमी की इतनी उष्णता है कि लोहे का गोला भी भूमि का स्पर्श नहीं कर सकता और बीच में ही नष्ट हो जाता है, तो नारकी जीव को कितनी वेदना सहन करनी पड़ती होगी।

अह तेवंडं तत्तं खिवेइ जइ को वि सीयणरयम्मि।
सहसा धरणिमपत्तं सडिज्ज तं खंडखंडेहिं।। 139।।

टव्वाटीका-

अह तेवंडं तत्तं खिवेइ- अथवा मेर समान ही गोलौ तातो करि नाखै।

जइ को वि- जो कोई।

सीयणरयम्मि- नीचला सवा दोय सीत नरकां विषै।

सहसा- तौ सीघ्र ही गोलौ।

ध्रणिमपत्तं- धरती तक न पहूचै।

सडिज्ज तं- गलि जाय सो गोलौ।
खंडखंडेहिं- खंड खंड होय करि वीचि ही।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अथवा उतने ही बड़े अर्थात् मेरु समान लोहे के तप्त गोले को शीत वेदना वाले नरक में पफेंके तो वह भी ध्रती तक नहीं पहुँच पायेगा और बीच में ही खंड-खंड हो जायेगा।

भावार्थ- नरक में शीत की इतनी वेदना है कि जीव असहनीय दुःख को भोगता है।

तं तारिससीदुण्हं खेत्तसहावेण होइ णिरएसु।
बिसहइ जावज्जीवं वसणस्स फलेणिमो जीवो।। 140।।

टव्वाटीका-
तं तारिससीदुण्हं- असी तरह की ठांडि अर गरमी।
खेत्तसहावेण होइ णिरएसु- क्षेत्र का स्वभाव करि होइ छै नरक विषै।
बिसहइ जावज्जीवं- सो सहै नारकी सागरां परजंत जो आऊषौ तहां तक।
वसणस्स फलेणिमो जीवो- सात विसनां मध्ये एक ही विसन का सेवा करि यो जीव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नरकों में क्षेत्र के स्वभाव से ही अत्यधिक ठंड तथा अत्यधिक गरमी होती है। सो यह जीव व्यसन के फलस्वरूप जीवनपर्यंत इस तीव्र शीत-तीव्र उष्ण की वेदना को सहन करता है।

भावार्थ- नरकों में सागर पर्यंत जो नारकी की आयु होती है उस आयुपर्यंत उसे यह असहनीय शीत-उष्ण की वेदना को सहन करना पड़ता है। मात्र व्यसन सेवन के फलस्वरूप।

तो तम्हि जायमत्ते सहसा दट्ठूण णारया सव्वे।
पहरंति सत्ति-मुग्गर-तिसूल-णाराय-खग्गेहिं।। 141।।

टव्वाटीका-

तो तम्हि जायमत्ते- नरकि जाय तव प्रथम ही नरक विषै उपजतां मात्र।
सहसा- ततकाल।
दट्ठूण णारया सव्वे- देखि करि सर्व ही नारकी तिहमैं।
पहरंति सत्ति-मुग्गर- मारैं सक्ती सौं मुदगरां सौ।
तिसूल- त्रिसूल सौं।
णाराय- वाणां सौं।
खग्गेहिं- अर खडग करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उस नरक में नारकी के उत्पन्न होते ही उसको देखकर सहसा सभी नारकी शक्ति, मुद्गर, त्रिशूल, बाण और खड्ग से प्रहार करने लगते हैं।

तो खंडिय-सव्वंगो करुणपलावे रुवेइ दीणमुहो।
पभणंति तओ रुट्ठा किं कंदसि रे दुरायारा।। 142।।

टव्वाटीका-

तो खंडिय-सव्वंगो- सो नारकी खंडित छै सर्व अंग जिहकौ।
करुण- जिहनैं दैख्यां धर्मातमा नैं दया उपजै।
पलावे- सो नारक्यां सौं डरतौं थकौ भाजै।
रुवेइ- रोवै।
दीणमुहो- दीनता लीयां छै मुख तिहकौ।
पभणंति- कहैं।
तओ रुट्ठा- तव रोसि हुवा नारकी।
किं कंदसि- कांई रोवै छै।
रे दुरायारा- रे दुराचारी आपणां कीधा पाप कर्म क्यों न सम्हालै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नारकियों के प्रहार से सर्व अंग खंडित हो गये हैं जिसके ऐसा वह नया नारकी दीनमुख होकर करुण प्रलाप करता हुआ रोता है। तब रुष्ट होकर नारकी कहते हैं कि रे दुराचारी अब क्यों रोता है अर्थात् अपने किये पाप कर्म को क्यों नहीं संभालता है।

जोव्वणमएण मत्तो लोहकसाएण रंजिओ पुव्वं।
गुरुवयणं लंघित्ता जूयं रमिओ जं मासि।। 143।।

टव्वाटीका-

जोव्वणमएण मत्तो- जोवन का मद करि मांतौ।
लोहकसाएण रंजिओ पुव्वं- लोभ कषाय करि रज्यो थकौ पूर्व भव विषै।
गुरुवयणं लंघित्ता जूयं- गुरां का वचन नैं उलांघि करि जूवा।
रमिओ जं मासि- रमतौ हूवा तू पहला जनम विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यौवन के मद से मत्त होकर और लोभ कषाय से रंजित होकर तूने पूर्व भव में गुरु के वचनों का उल्लंघन कर जुआ खेला था।

तस्स फलमुदयमागयमलं हि रुयणोण विसह तं दुट्ठं।
रोवंतो वि ण छुट्टसि कयाइव पुव्वकयकम्मस्स।।144।।

टव्वाटीका-

तस्स फल- तिहकौ फल।
मुदयमागयमलं हि- उदय आयो छै यो तातैं पूरण होहु।
रुयणोण विसह तं- रोवा करि तू सहि तिह फल नैं।
दुट्ठं- दुष्ट।
रोवंतो वि ण छुट्टसि- रोवतौं भी न छूटिसी।
कयाइ- कदाचि।
पुव्वकयकम्मस्स- पूर्वला कीया कर्म थकी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उसका (जुआ खेलने के पाप का) फल उदय में आया है, इसलिए रे दुष्ट रोना बन्द कर, उसे सहन कर। पूर्व कृत कर्म फल रोने से भी कभी नहीं छूटेगा।

एवं सोऊण तओ माणदुक्खं विसेसमुप्पण्णं।
तो दुविह-दुक्खदड्ढो रोसाइट्ठो इमं भणई।।145।।

टव्वाटीका-

एवं सोऊण- ई भांति सुणि करि।

तओ माणदुक्खं विसेसमुप्पण्णं- वा नारक्यां का वचन तव मन कौ दुख विसेस उपजै नवा नारकी कै।

तो दुविह-दुक्खदड्ढो रोसाइट्ठो- तव दोय प्रकार कहतो, एकै तो सरीर की पीडा कौ दुख, अर एक मन की चिंता कौ दुख, त्यांह करि भसम हुवो।

इमं भणई- थकौ महादुखी होय अर रोस कौ भरयौ अगिलां नारकां नै ई भांति कहै नवो नारकी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार उस नारकी के वचन सुनकर उसके मन में विशेष दुःख उत्पन्न होता है। तब दोनों प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक दुःख से भस्म होकर रुष्ट होकर वह नया नारकी इस प्रकार कहता है।

जइ वा पुव्वम्मि भवे जूयं रमियं मए मदवसेण।
तुम्हं को अवराहो कोउवला जेण मं हणइ।।146।।

टव्वाटीका-

जइ वा पुव्वम्मि भवे- जौ पूरवला भव विषै।

जूयं रमियं मए- जूवां खेल्यो हुं।

मदवसेण- मद का वस करि।

तुम्हं को अवराहो- तौ थांनैं कांई दोस हुं, दुख देखौं ही देखौं।

कोउवला- क्रोधवंत हूवा।

जेण मं हणइ- जिह करिथे मोनैं मारौ छै, अब क्षमा करौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि पूर्व भव में मैंने मद के वशीभूत होकर जुआ खेला है तो तुम्हारा क्या अपराध किया है, जिसके कारण तुम क्रोधित होकर जबर्दस्ती मुझे मारते हो।

एवं भणिए घित्तूण सुट्ठु रुट्ठेहिं अग्गिकुंडम्मि।
पज्जलयम्मि णिहित्तो डज्झइ सो अंगमंगेसु।।147।।

टव्वाटीका-

एवं भणिए घित्तूण- ई भांति काहा तोनैं पकडि करि नाखै।

सुट्ठु रुट्ठेहिं- वृथा रोस नैं पान्या जे पापी पूरबला नारकी ते।

अग्गिकुंडम्मि- अगनि कुंड विषै।

पज्जलयम्मि णिहित्तो- तव अगनिकुंड मध्य भाख्यो थकौ नवो नारकी।

डज्झइ सो- दाह नैं प्राप्त होय सो।

अंगमंगेसु- अंग अंग विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ऐसा कहने पर रुष्ट होकर वे नारकी उसे (नये नारकी को) पकड़कर अग्निकुंड में डाल देते हैं। उसमें डाले जाने पर वह नारकी अंग-अंग में जल जाता है।

तत्तो णिस्सरमाणं दट्ठूण ज्झसरेहिं अहव कुंतेहिं।
पिल्लेऊण रडंतं तत्थेव छुहंति अदयाए।।148।।

टव्वाटीका-

तत्तो णिस्सरमाणं- यो नवो नारकी जब निकलै अगनी कुंड मैं सों तव निकलता नैं।

दट्ठूण- देख करि पुरांणां नारकी।

ज्झसरेहिं- फरस्यां करि।

अहव- अर वज्र मई अखंड जे टुटै न मुचै।

कुंतेहिं- ई भांति की वरछी त्यां करि।

पिल्लेऊण- कूंचि कूंचि।

रडंतं- रोवतौ नैं पुकारता नैं।

तत्थेव छुहंति- बहुरि तीही कूंड विषै नाखै।

अदयाए- निरदई होय करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उसको अग्निकुंड से निकलता देखकर पुराना नारकी फरसे से और बरछी से कूंचकर अर्थात् छेदकर चिल्लाते हुए, उसे निर्दयतापूर्वक उसी कुंड में डाल देते हैं।

हा मुयह मं मा पहरह पुणो वि ण करेमि एरिसं पावं।
दंतेहि अंगुलीओ धरेइ कलुणं पुणो रुवई।।149।।

टव्वाटीका-

हा मुयह मं मा पहरह- तव यो पुकारै हाय हाय छोडौ।

पुणो वि- मोनैं अगनि कुंड मैं सौं काढौ म्हारौ किडौ तजौ।

ण करेमि- बहुरि कदे न करिसों।

एरिसं पावं- इसा पाप।

दंतेहि अंगुलीओ धरेइ- दांतों मैं आंगुली धरि धरि।

कलुणं पुणो रुवई- अकेलौ, न हो जेठे कोई सहाई, तेठे दुख कौ पीड्यौ वार वार रोवै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

हाय, मुझे छोड़ दो, मुझ पर प्रहार मत करो, मैं ऐसा पाप पुनः नहीं करूँगा, ऐसा कहते हुए दांतों से अपनी अंगुलियाँ दबाता है और करुण प्रलापपूर्वक बार-बार रोता है।

ण मुयंति तह वि पावा पेच्छह लीलाए कुणइ जं जूवो।
तं पावं विलवंतो एयहिं दुक्खेहिं णित्थरइ।।150।।

टव्वाटीका-

ण मुयंति तह वि पावा- न तजै तौ भी पापी पहला नारकी ई कौ केड़ौ।

पेच्छह लीलाए कुणइ जं जूवो- कहै फल देखौ, लीला करि कैं करता जो जूवां कौ ख्याल, तिहकौ रे पापी जीव।

तं पावं विलवंतो- तिह पाप कौ विलप हुंवां।

एयहिं दुक्खेहिं णित्थरइ- ई दुख मैं स्यों निस्तारो होसी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तो भी वे पापी नारकी उसे नहीं छोड़ते हैं। देखो, जो जीव कुतूहलवश जुआ खेलने का पाप करता है, उस पाप का इस प्रकार विलाप करते हुए दुःखपूर्वक निस्तारा होता है अर्थात् इस प्रकार पाप उदय में आकर समाप्त होता है।

तत्तो पलाइऊणं कह वि य माएण दड्ढसव्वंगो।
गिरिकंदरम्मि सहसा पविसइ सरण त्ति मण्णंतो।।151।।

टव्वाटीका-

तत्तो पलाइऊणं- घणी वार तक अगनि कुंड मैं पड्यो रहे पाछैं भाजि करि नीसरै।

कह वि य माएण दड्ढसव्वंगो- कदाचि वा नरक्यां का प्रमाद का वस करि, किसौ छै दगध होय रह्या छै सर्व अंग जिहका।

गिरिकंदरम्मि सहसा- सो भागौ थकौ खोटा जे नरक भूमी का परवत त्यांहां की गुफा में सीघ्र ही।

पविसइ सरण त्ति- प्रवेस करै सरणां की जायगा इसी।

मण्णंतो- मानतौ संतौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अग्निकुंड में जला दिये हैं सभी अंग जिसके ऐसा वह नारकी अग्निकुंड से किसी प्रकार भागकर नरक भूमि के पर्वत की गुफा में सहसा प्रवेश करता है, और समझता है कि मुझे यहाँ शरण मिलेगी।

तत्थ वि पडंति उवरिं सिलाउ तो ताहिं चुण्णिओ संतो।
गलमाणरुहिरधारो रडिऊण खणं तओ णीई।।152।।

टव्वाटीका-

तत्थ वि पडंति उवरिं- तव तहां भी पडैं ऊपरां सौं भारी-भारी सिला सिर परि।

सिलाउ तो- जैठैं जाय तैंठै ही।

ताहिं चुण्णिओ संतो- त्यांह सिला करि टूटा छै अंग जिहका अैसौ हुवो थकौ।

गलमाणरुहिरधरो- अर चिगै छै रूधिर की धारा जिहकै।

रडिऊण खणं- सो रहि करि क्षण एक दुख कौ भरयो।

तओ णीइ- तहां थकी भी नीसरै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तब वहाँ पर भी उसके ऊपर भारी-भारी शिलाएँ पड़ती हैं और उससे टूटे हुए अंग वाला और जिसके खून की धाराएँ बह रही हों, ऐसा वह क्षण भर वहाँ रहकर दुःख से भरा हुआ वहाँ से निकलता है।

णेरइयाण सरीरं कीरइ जइ तिलपमाणखंडाइ।
पारद-रसुव्व लग्गइ अपुण्णकालम्मि ण मरेइ।।153।।

टव्वाटीका-

णेरइयाण- नारक्यां कौ।

सरीरं- सरीर।

कीरइ जइ- नारकी करैं जौ।

तिलपमाणखंडाइ- तिल तिल प्रमाण टुक टुक।

पारद-रसुव्व लग्गइ- तौ पारा की नाई मिलि जाय, पणि नास नैं प्राप्त न होय।

अपुण्णकालम्मि ण मरेइ- जव सागरां पर्यंत आयु पूरी होय, तव ही मरै, जेतै मार खावो करै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नारकियों के शरीर के यदि तिल-तिल प्रमाण खंड भी कर दिये जायें तो भी वह पारे के समान तुरन्त आपस में जुड़ जाते हैं क्येंकि नारकी की असमय में अर्थात् समय से पूर्व मृत्यु नहीं होती। कितना भी कष्ट हो उनको अपनी आयु पूर्ण करनी पड़ती है।

तत्तो पलायमाणो रुंभइ सो णारएहिं दट्ठूण।
पाइज्जइ विलवंतो अय-तंबय-कलयलं तत्तं।।154।।

टव्वाटीका-

तत्तो पलायमाणो- तिह परवत की गुफा मैं सौं भागि नीसरयो थकौ।

रुंभइ सो- पकडो सो।

णारएहिं दट्ठूण- नारक्यां देखि करि।

पाइज्जइ- तव पछाड़ि करि पावै।

विलवंतो- विलाप करता नैं।

अय- लोह।

तंबय- अर तांवौ।

कलयलं तत्तं- गाली करि कलकलाट करतौ थकौ ताजौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उस पर्वत की गुफा से निकलकर भागता हुआ देखकर दूसरे नारकी उसे पकड़ लेते हैं और उसे पकड़कर जबरदस्ती रोते हुए उसको तपाया हुआ लोहा, तांबा आदि का रस पिलाते हैं।

पच्चारिज्जइ जं ते पीयं मज्जं महुं च पुब्वभवे।
तं पावफलं पत्तं पिबेहि अयकलयलं घोरं।।155।।

टव्वाटीका-

पच्चारिज्जइ जं ते- अर पाछिली वात यादि दिवावैं जो तैं।

पीयं मज्जं महुं- पीया छा मद अर सहैत।

च पुब्वभवे- पूरब भव विषै।

तं पावफलं पत्तं- तिह पाप कौ फल आय प्राप्त हुवो छै।

पिबेहि अयकलयलं घोरं- अव तू पीय लोह अतिवलतौ भयानक।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वे नारकी उसे पूर्व भव की बात याद दिलाते हैं कि तूने पूर्व भव में इसी प्रकार मद्य और मधु को पिया है। उस पाप का ही यह फल प्राप्त हुआ है। अब तू यह भयानक तांबे और लोहे के रस को पी।

कह वि तओ जइ छुट्टठो असिपत्तवणम्मि विसइ भयभीओ।
णिबडंति तत्थ पत्ताइं खग्गसरिसाइं अणवरयं।।156।।

टव्वाटीका-

कह वि तओ जइ छुट्टो- सो तातौ लोह तांवौ पावैं या वेदना भुगतै, पाछै वचौं ही करि त्यांकना छुटै।
असिपत्तवणम्मि विसइ भयभीओ- तव छुट्यो थकौ असि पत्र वन विषै पैठै भयभीत हुवौ।
णिबडंति तत्थ- पडै अंग ऊपरि तहां।
पत्ताइं- पत्र खडग।
खग्गसरिसाइं- सारिखा।
अणवरयं- निरंतर।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि किसी प्रकार वहाँ से छूट भी जाये तो भयभीत होता हुआ, तलवार के समान तेज धार वाले पत्तों के वन में शरण पाने के लिए प्रवेश करता है। किन्तु वहाँ पर भी तलवार के समान तेज धार वाले पत्ते उस पर निरन्तर गिरते हैं।

तो तम्हि पत्तपडणेण छिण्णकर-चरण भिण्णपुट्ठि-सिरो।
पगलंतरुहिरधरो कंदंतो सो तओ णीइ।।157।।

टव्वाटीका-
तो तम्हि- तव तिह वन विषै।
पत्तपडणेण- पत्रां का पडिवा करि।
छिण्ण- छिदि गया छै।
कर- हाथ।
चरण- पग।
भिण्णपुट्ठि-सिरो- अर भिदि गया छै पूठि अर सिर जिहका।
पगलंत- अर नीसरै छै।
रुहिरधारो कंदंतो- रूधिर की धारा जिहकै रोवतौ थकौ।
सो तओ णीइ- सो तहां सौ भी नीसरै भागि करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तब उस वन में तीक्ष्ण पत्तों के गिरने से उसके हाथ, पैर, कमर और सिर कट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और उनसे खून की धारा बहती है, तो वह क्रन्दन करता हुआ अर्थात् रोता हुआ वहाँ से भी भागता है।

तुरियं पलायमाणं सहसा धरिऊण णारया कूरा।
छित्तूण तस्स मंसं तुंडम्मि छुहंति तस्सेव।।158।।

टव्वाटीका-

तुरियं पलायमाणं- उतावलौ उतावलौ सौ दौड़ता नैं।
सहसा- सीघ्र ही।
धरिऊण णारया कूरा- पकडि करि नारकी क्रूर।
छित्तूण तस्स मंसं- छेदि करि तिह कौ मांस।
तुंडम्मि- अर मूढा मैं।
छुहंति तस्सेव- नाखैं तीह का ही मैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जल्दी-जल्दी उसे दौड़ता हुआ देखकर शीघ्र ही वे क्रूर नारकी उसे पकड़कर, उसका मांस काटकर उसके ही मुँह में डालते हैं।

भोत्तु अणिच्छमाणं णियमंसं तो भणंति रे दुट्ठ।
अदमिट्ठं भणिऊण भक्खंतो आसि जं पुव्वं।।159।।

टव्वाटीका-

भोत्तु अणिच्छमाणं- सो भखिवा नैं न इछै।
णियमंसं- आपणां मांस नैं।
तो भणंति- तव कहैं नारकी।
रे दुट्ठ- रे दुष्ट।
अदमिट्ठं भणिऊण- अति मीठौ अति मीठौ।
भक्खंतो- अैसी कहि करि।
आसि- भखतौ हुवौ।
जं पुव्व- जो पूरव भव विषै पराया मांस।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जब वह अपने मांस को नहीं खाना चाहता है, तब वे नारकी उससे कहते हैं कि रे दुष्ट! तू पूर्व भव में परजीवों का मांस बहुत मीठा है, यह कहकर खाया करता था।

तं किं ते विस्सरियं जेण मुहं कुणसि रे पराहुत्तं।
एवं भणिऊण कुसिं छुहिंति तुंडम्मि पज्जलियं।।160।।

टव्वाटीका-
तं किं ते विस्सरियं- सो कांई तू भूलि गयो जिह करि।
जेण मुहं कुणसि रे पराहुत्तं- अब तू आपणौं मांस खाना करै छै मूढौ पाछौ।
एवं भणिऊण- अैसा दुरवचन कहि करि।
कुसिं- लोह की कुसी।
छुहिंति तुंडम्मि- भाखैं मूढा मैं।
पज्जलियं- वलवलती।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सो क्या तू वह भूल गया है जो तू अब अपना मांस खाने में मुँह पीछे कर रहा है। ऐसा दुर्वचन कहकर वे लोहे की जलती हुई कुश को उसके मुख में डालते हैं।

अइतिव्वदाहसंताविओ तिसावेयणासमभिभूओ।
किमि-पूइ-रुहिरपुण्णं वइतरणिणई तओ विसइ।।161।।

टव्वाटीका-
अइतिव्वदाहसंताविओ- अति तीव्र जो दाह तिह करि संताप नें पायां थकौ अतीत्रिसातुर हुवौ।
तिसावेयणा- सो बेदना करि।
समभिभूओ- पीडित।

किमि-पूइ-रुहिरपुण्णं- कृमि दुरगंध रूधिर करि भरी अैसी जो।
वइतरणि- वैतरणी।
णइं- नदी।
तओ विसइ- तिह विषै तव पवैसै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अति तीव्र दाह से संतप्त होकर और प्यास की प्रबल वेदना से पीड़ित होकर, कीड़े, पीप और खून से भरी हुई वैतरणी नदी में प्रवेश करता है।

तत्थ वि पविट्ठमित्तो खारुण्हजलेण दड्ढसव्वंगो।
णिस्सरइ तओ तुरिओ हाहाकारं पकुव्वंतो।।162।।

टव्वाटीका-
तत्थ वि- तहां भी।
पविट्ठमित्तो- पैठतां मात्र ही।
खारुण्ह- अति खारौ, अति ऊन्हौं, अर अति दुरगंध।
जलेण- जो जल तिह करि।
दड्ढसव्वंगो- दगध हुवा छै सर्व अंग जिहका।
णिस्सरइ तओ- नीसरै वैतरणी मैं सौं।
तुरिओ हाहाकारं पकुव्वंतो- तुरत ही हाय हाय अैसी पुकार करतौ थकौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उसमें घुसने मात्र से ही, खारे और उष्ण जल से उसके सभी अंग जल जाते हैं, तब वह उस वैतरणी नदी से तुरन्त हाहाकार करता हुआ निकलता है।

दट्ठूण णारया णीलमंडवे तत्तलोहपडिमाओ।
आलिंगाविंति तहिं धरिऊण बला विलवमाणं।।163।।

टव्वाटीका-
दट्ठूण णारया- देखी करि तिहनैं और नारकी कहैं।
णीलमंडवे- पकडौ ईनैं लपटावो।
तत्तलोहपडिमाओ- ताती लोह की फूतली सौं।
आलिंगाविंति तहिं- तव लपटावैं तहां तिहनैं।
धरिऊण बला विलवमाणं- पकड़ि करि ताती फूतली सौ जोरावरी, पुकारतानैं, विलविलाट करतानैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उसको भागता हुआ देखकर नारकी उसे पकड़कर काले लोहे से बनाये हुए नीलमंडप में ले जाकर, विलाप करते हुए उसको बलपूर्वक तपाई हुई लोहे की प्रतिमाओं से आलिंगन कराते हैं।

अगणित्ता गुरुवयणं परित्थि-वेसं च आसि सेवंतो।
एण्हिं तं पावफलं ण सहसि किं रुवसि तं जेण।।164।।

टव्वाटीका-

अगणित्ता गुरुवयणं- अर कहैं रे पापी गुरां का वचन न गनि करि भोगाभिलाषी होय करि।
परित्थि- पराई नारी।

वेसं च- वहुरि वेस्या।
आसि सेवंतो- सेवतौ हुवो तू।
एण्हिं तं पावफलं- अवै तिह पाप का फल।
ण सहसि किं- न सहसी कांई।
रुवसि तं जेण- रोवै छै तू जिह करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

और कहते हैं कि- गुरुजनों के वचनों न निगकर तूने पूर्व भाव में परस्त्री और वेश्या का सेवन किया है। अब उसी पाप के फल को क्यों नहीं सहता है? जिससे कि रो रहा है, अर्थात् जैसा किया है, वैसा ही फल पा रहा है तो रोने की क्या बात है?

पुव्वभवे जं कम्मं पंचिदियवसगएण जीवेण।
हसमाणेण विबद्धं तं किं णित्थरसि रोवंतो।।165।।

टव्वाटीका-

पुव्वभवे जं कम्मं- पूर्वला भव विषै जे कर्म।
पंचिदियवसगएण जीवेण- पाचौं इंद्रियां कै वसि होय करि अज्ञानी जीव।
हसमाणेण- हसतै थकै।
विबद्धं- बांध्या।
तं किं णित्थरसि रोवंतो- सो क्यों छूटिसी रोवतौ थकौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पूर्वभव में अज्ञानी जीव पांचों इन्द्रियों के वशीभूत होकर तूने हँसते हुए जो कर्म बाँधे हैं, क्या उन्हें रोते हुए दूर कर सकता है?

किकवाय-गिद्ध-वायसरूवं धरिऊण णारया चेव।
पहरंति वज्जमयतुंड-तिक्खणहरेहिं दयरहिया।।166।।

टव्वाटीका-

किकवाय- कूकडा।
गिद्ध- अथवा गिरदऊ।
वायस- तथा काग।
रूवं धरिऊण- इत्यादि खोटा पंछी का रूप धरि धरि।
णारया चेव- नारकी जीव ही।
पहरंति- इनैं हणैं।
वज्जमयतुंड- वज्र मई चूंच।
तिक्खणहरेहिं- तीह करि कठोर।
दयरहिया- हिरदै हूवा थका दया रहित।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वे दया रहित नारकी जीव ही मुर्गा, गिद्ध, काक आदि के रूपों को धारण कर वज्रमई चोंचों और तीक्ष्ण नखों से उसे नोंचते हैं।

धरिऊण उड्ढजंघं करकच-चक्केहिं केइ फाडंति।
मुसलेहिं मुग्गरेहिं य चुण्णी चुण्णी कुणंति परे।।167।।

टव्वाटीका-

धरिऊण उड्ढजंघं- बहुरि ईह नारकी नैं टांकि करि औंधे अर ईकी दो जांघवा।

करकच-चक्केहिं- विचैं करोंत लगाय करि करौत सौं।

केइ फाडंति- केई पापी नारकी फाडै छै दोय फांट करै छै।

मुसलेहिं मुग्गरेहिं य- अर मूसलां सौं तथा मुदगरा सौं।

चुण्णी चुण्णी कुणंति परे- चून चून करैं छै और केई दुष्ट ईहनैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

बहुत से नारकी इन्हें जाँघें ऊपर और सिर नीचे करके अर्थात् उल्टा करके करोंत से और चक्र से फाड़ डालते हैं और मूसल या मुद्गरों से चूर-चूर कर देते हैं।

जिब्भाछेयण णयणाण फोडणं दंतचूरणं जलणं।
मलणं कुणंति खंडंति केई तिलमत्तखंडेहिं।।168।।

टव्वाटीका-

जिब्भाछेयण- जे कोई जीभ करि पराई कहे छै, चुगली खाहि छै अथवा अभक्ष्य भखै छै, त्यांकी जीभ काटैं छैं, छेदै छैं नरक विषै नारकी।

णयणाण फोडणं- अर आंख्यां करि जो पराई स्त्री मांहुं खोटी नजर चोधैं छै अथवा पराया धन मांहि खोटी नजर चोधैं छैं, त्यांकी आंखि फोडै छैं।

दंतचूरणं- अर ज्यां पाप्यां दांतां करि हाड़ चाव्या छै अथवा और खोटी वस्तु चावी छै त्यांका दांत तोडै छै।

जलणं- अर ज्यां दौं लुगाई छै, सो त्यानैं दावानल विषै वालैं छै।

मलणं कुणंति खंडंति- अर ज्यां बीधा नाज पिसाया छै त्यानैं चाकी मैं पीसै छै, दलै छैं, मलैं छै अर खंड खंड करैं छै।

केई तिलमत्तखंडेहिं- केई तिल प्रमाण टुक टुक करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कितने ही नारकी जीभ काटते हैं, आँख फोड़ते हैं, दाँत तोड़ते हैं, दावानल में जलाते हैं। शरीर दलन-मलन करते हैं, तिल प्रमाण खंड-खंड कर डालते हैं।

विशेषार्थ- जो दूसरों की चुगली करते हैं या अभक्ष्य खाते हैं, उनकी जीभ काटते हैं, जो पराई स्त्री या पराये धन पर बुरी दृष्टि डालते हैं, उनकी आँख फोड़ देते हैं। जो बुरी वस्तु अथवा हाँड़-मांस चबाते हैं, उनके दाँत तोड़ देते हैं। जो दो स्त्रियाँ रखते हैं, उन्हें दावानल में जलाते हैं और जो बीजा हुआ अनाज चक्की में पीसते हैं, उनके शरीर का तिल-तिल प्रमाण कर खंड-खंड कर देते हैं।

अण्णे कलंववालुय थलम्मि तत्तम्मि पाडिऊण पुणो।
लोट्टाविंति रडंतं णिहणंति घसंति भूमीए।।169।।

टव्वाटीका-

अण्णे कलंववालुय- और कितायक ज्यां वीध नाज इत्यादि सेक्यां छै, सिकायो छै ताती वालू विषै त्यानै नरक विषै और नारकी महाकठोर जो वालू।

थलम्मि तत्तम्मि- वलवलती ताती तिहका थल विषै।

पाडिऊण पुणो- पछाडि करि वहूरि।

लोट्टाविंति रडंतं- लुटावै छैं, घीसैं छै, रोवता नैं, पुकारता नैं।

णिहणंति- अर मारैं छैं भांति भांति।

घसंति भूमीए- जेती प्रथ्वी मैं मारे छै, त्यांह करि अर तीसरा नर्क की भूमि तक।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कितने ही नारकी तपाये हुए गर्म रेतीले मैदान में डालकर, रोते हुए उसको (नये नारकी को) लोट-पोट करते हैं, मारते हैं, भूमि पर घसीटते हैं।

विशेषार्थ- जिन्होंने पूर्व भव में बीजे हुए अर्थात् घुन लगे हुए अनाज को सेंका है, सिंकवाया है अथवा उसका सेवन किया है, ऐसे लोगों को नरकों में गर्म रेत में सिकना, तपना पड़ता है।

असुरा वि कूरपावा तत्थ वि गंतूण पुव्ववेराइं।
सुमराविऊण तओ जुद्धं लायंति अण्णोण्णं।।170।।

टव्वाटीका-

असुरा वि कूरपावा- भवनवास्यां की दस जाति मध्ये जे असूरकुमार देव महाक्रूर, महापापी छै।

तत्थ वि गंतूण पुव्ववेराइं- तहां नर्क भूमि विषै हौसी हुवा थका जाय करि त्यांह नारक्यां नैं पूरवला वैर।

सुमराविऊण- यादि कराय कराय।

तओ- ते भी।

जुद्धं लायंति अण्णोण्णं- जुद्ध करावै छैं परसपर सदा काल।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

असुर जाति के क्रूर और पापी देव भी वहाँ जाकर, पूर्व भव के वैरों की याद दिलाकर उन नारकियों को परस्पर लड़वाते हैं।

सत्तेव अहोलोए पुढवीओ तत्थ सयसहस्साइ।
णिरयाणं चुलसीई सेढिंद-पइण्णयाण हवे।।171।।

टव्वाटीका-

सत्तेव अहोलोए- सात ही अधोलोक की।

पुढवीओ तत्थ सयसहस्साइ- जे पृथ्वी त्यांह विषै चौरासी लाख विला छैं नारक्यां का उपजिवा का सो।

णिरयाणं- चौरासी लाख की विगति पहलै नरक लाख 30।

चुलसीई- दूजौ लाख 25, तीजै लाख 15, चौथै लाख 10, पांचमैं लाख 3, छै वै पांच घाटि लाख, सातमैं 5 पांच ही छै विला एवं लाख 84 छै।

सेढिंद-पइण्णयाण हवे- त्यांमैं इंद्रक अर श्रेणिवय अर प्रकीर्णक विलाइ ई भांति तीन प्रकार होय छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अधोलोक में सात पृथ्वी हैं। वहाँ श्रेणीबद्ध, इन्द्रक और प्रकीर्णक नाम के चौरासी लाख बिल हैं।

विशेष अर्थ- पहली पृथ्वी में 30 लाख, दूसरी पृथ्वी में 25 लाख, तीसरी पृथ्वी में 15 लाख, चौथी पृथ्वी में 10 लाख, पांचवीं पृथ्वी में 3 लाख, छठी पृथ्वी में 5 कम एक लाख एवं सातवीं पृथ्वी में मात्र 5 ही बिल हैं। इस प्रकार सात पृथ्वियों में कुल 84 लाख बिल हैं। इनके श्रेणीबद्ध, इन्द्रक और प्रकीर्णक ये तीन प्रकार हैं।

रयणप्पह-सक्करपह-बालुप्पह-पंक-धूम-तमभासा।
तमतमपहा य पुढवीणं जाण अणुवत्थणामाइं।।172।।

टव्वाटीका-

रयणप्पह- पहलौ नरक रतनप्रभा छै।
सक्करपह- दूजौ सर्कराप्रभा छै।
बालुप्पह- तीजौ वालुकाप्रभा छै।
पंक- चोथौ पंकप्रभा छै।
धूम- पांचमौ धूमप्रभा छै।
तमभासा- छठौ तमप्रभा छै।
तमतमपहा- सातमौं महातमप्रभा छै।
य पुढवीणं- ई भांति सात ही प्रथ्वी त्यांका।
जाण- जांणौं।
अणुवत्थणामाइं- वहुरि हेव छए नाम।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पहली पृथ्वी का नाम रत्नप्रभा, दूसरी शर्कराप्रभा, तीसरी वालुकाप्रभा, चौथी पंकप्रभा, पांचवीं धूमप्रभा, छठी तमप्रभा और सातवीं पृथ्वी का नाम महातमप्रभा (तमस्तमप्रभा) है।

पढमाए पुढवीए वाससहस्साइं दह जहण्णाऊ।
समयम्मि पण्णिया सायरोवमं होइ उक्कस्सं।।173।।

पढमाइ जमुक्कस्सं विदियाइसु साहिथं जहण्णं तं।
तिय सत्त दस य सत्तरस दुसहिया बीस तेत्तीसं।।174।।

सायरसंखा एसा कमेण विदियाइ जाण पुढवीसु।
उक्कस्साउपमाणं णिद्दिट्ठं णिवरिंदेहि।।175।।

टव्वाटीका-
पढमाए पुढवीए- प्रथम नरक की प्रथ्वी विषै।
वाससहस्साइं- वरस हजार।
दह जहण्णाऊ- दस जघन्य आयु छै।
समयम्मि पण्णिया- सास्त्र विषै वरणइ छै।
सायरोवमं होइ उक्कस्सं- अर पहलै नरक कि एक सागर प्रमाण होइ छै आयु उतकिष्ट।

पढमाइ- प्रथमादि नरक विषै।
जमुक्कस्सं- जो आयु उतकिष्ट छै।
विदियाइसु- दुतियादि विषै।
साहिथं जहण्णं तं- कही छै जघन्य सो।
तिय- दूजै नरक की उतकिष्ट सागर 3 आयु छै।
सत्त- तीजै सागर 7 उतकिष्ट आयु छै।
दस- चौथै सागर 10।

य सत्तरस- बहुरि पांचमैं नरक कि सागर 17।
दुसहिया बीस- छठै नरकि उतकिष्ट आयु सागर दोय आगला वीस 22।
तेत्तीसं- अर सातमैं उतकिष्ट आयु सागर 33 छै।

सायरसंखा एसा- सागरों की संख्या आयु की या।
कमेण- अनुक्रम करि।
विदियाइ जाण पुढवीसु- दुतियादि नरकों की प्रथ्वी विषै जाणौं।
उक्कस्साउपमाणं- यो उतकिष्ट आयु कौ प्रमाण।
णिद्दिट्ठं- दिखायो।
णिवरिंदेहि- जिनवरदेवां।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

शास्त्र में प्रथम पृथ्वी के नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष कही गई है और उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम होती है।। 173।।

प्रथमादिक पृथ्वी (नरक) में जो उत्कृष्ट आयु होती है, वही द्वितीयादिक पृथ्वी में जघन्य आयु जानना चाहिए। द्वितीय नरक की उत्कृष्ट आयु 3 सागर, तृतीय नरक की उत्कृष्ट आयु 7 सागर, चतुर्थ नरक की उत्कृष्ट आयु 10 सागर, पांचवें नरक की उत्कृष्ट आयु 17 सागर, छठे नरक की उत्कृष्ट आयु 20 सागर तथा सातवें नरक की उत्कृष्ट आयु 33 सागर जाननी चाहिए।। 174।।

द्वितीयादिक पृथ्वियों में उत्कृष्ट आयु का प्रमाण सागरों की संख्या अनुक्रम से जिनेन्द्रदेव के द्वारा बताया गया है।। 175।।

एत्तियपमाणकालं सारीरं माणसं बहुपयारं।
दुक्खं सहेइ तिव्वं वसणस्स फलेणिमो जीवो।।176।।

टव्वाटीका-
एत्तियपमाणकालं सारीरं- एता काल प्रमांण च्यार लाख जाति की नरक जौंनि विषै सरीर संबंधी।
माणसं- अर मन संबंधी।
बहुपयारं- बहुत प्रकार का।
दुक्खं- दुख त्यानैं।
सहेइ तिव्वं- सहै किसा छै नरक का दुख महातीव्र छै।
वसणस्स फलेणिमो- जूवां नैं आदि दे अर जे सात विसन त्यांका फल करि।
जीवो- यो संसारी जीव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इतने प्रमाण (उपर्युक्त काल) काल तक यह जीव व्यसन सेवन के फल से नरकों में तीव्र शारीरिक, मानसिक दुःख को सहन करता है।

ए नरक का दुख कह्या आगे तिरजंच गति का दुख कहै छै

तिर्यंचगतिदुःख-वर्णन

तितियगईए वि तहा थावरकाएसु बहुपयारेसु।
अच्छइ अणंतकालं हिंडंतो जोणिलक्खेसु।।177।।

टव्वाटीका-

तितियगईए वि तहा- तीरजंच गति विषै भी तैसैं ही दुख सहतौ थकौ यो जीव।

थावरकाएसु- थावर सरीर जे।

बहुपयारेसु- बहुत प्रकार का त्यां विषै।

अच्छइ अणंतकालं- तिष्ठै अनंत काल जनम मरण करतौ।

हिंडंतो जोणिलक्खेसु- भ्रमतौ थकौ जोनि लाख वावन जो थावर की त्यां विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इसी प्रकार व्यसन सेवन के फल से यह जीव तिर्यंच गति की लाखों योनियों वाली बहुत प्रकार की स्थावरकाय की जातियों में अनन्तकाल तक भ्रमण करता रहता है।

कहमवि णिस्सरिऊणं तत्तो वियलिंदिएसु संभवइ।
तत्थ वि किलिस्समाणो कालमसंखेज्जयं वसई।।178।।

कहमवि णिस्सरिऊणं- कोई प्रकार करि थावर का यामैं सौं नीसरियो जीव।

तत्तो वियलिंदिएसु- बहुरि विकलत्रय जे वेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री त्यां विषै।

संभवइ- उपजै।

तत्थ वि किलिस्समाणो- तहां भी महाकलेस नैं पावतौ थकौ।

कालमसंखेज्जयं वसइ- कालअसांख्यातौ वसै जो तिलाख छह विषै जामण मरण करतौ संतौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उस स्थावर काय में से किसी प्रकार निकलकर विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है, वहाँ भी महाक्लेश को पाता हुआ असंख्य काल तक भ्रमण करता है।

तो खिल्लविल्लजोएण कह वि पंचिंदिएसु उवण्णो।
तत्थ वि असंखकालं जोणिसहस्सेसु परिभमई।।179।।

टव्वाटीका-

तो खिल्लविल्ल- वहुरि कोई जोग करि।

जोएण- कांई प्रकार करि।

कह वि- कवहू।

पंचिंदिएसु उवण्णो- पंचेंद्री पसु का जनम विषै उतपन्न होइ।

तत्थ वि असंखकालं- तहां भी असंख्यात काल परजंत।

जोणिसहस्सेसु- च्यारि लाख जोनि विषै जामण मरण करतौ संसार वन विषै।

परिभमइ- भ्रमण करै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि किसी प्रकार खिल्लविल्ल योग से पंचेन्द्रियों में उत्पन्न हो गया, तो वहाँ भी असंख्यात काल तक हजारों योनियों में भ्रमण करता रहता है।

छेयण-भेयण-ताडण-तासण-णिल्लंछणं तहा दमणं।
णिक्खलण-मलण-दलणं पउलण उक्कत्तणं चेव।।180।।

बंधण-भारारोवण लंछण पाणण्णरोहणं सहणं।
सीउण्ह-भुक्ख-तण्हादिजाण तह पिल्लयविओयं।।181।।

टव्वाटीका-

छेयण-भेयण- नाक कान इत्यादि छेदिवो अर इत्यादिक भैदिवौ।
ताडण- अर मारिवो।
तासण- त्रास देवौ।
णिल्लंछणं तहा दमणं- अहार विना राखिवौ तथा चिहन रहित करिवौ, मारिवौ, उधेडिवौ इत्यादि।
णिक्खलण- अर ज्यांवणैं ज्यौंहक भांति दमन कहतां वसीभूत करिवौ, अर विना करम कौ जांणी छिटकाय देवौ।
मलण-दलणं- मलिवौ कहतां मसलिवौ, दलिवौ कहतां पीडिवौ।
पउलण- अर प्रजालिवौ दावानल इत्यादि लगायकरि वालिवौ।
उक्कत्तणं चेव- चाकरिवौ इत्यादि तिरजंच का शरीर नैं अनेक आपदा छै।

बंधण- अथवा बांधिवौ।
भारारोवण- घणौं भार लादिवौ।
लंछण- तथा खान।
पाणण्णरोहणं- पान कौ निरोध।
सहणं- अर सहणी।
सीउण्ह- ज्यांहनैं ठंढि गरमी।।
भुक्ख-तण्हा- भूख तिसा ए तौ शरीर का दुख कह्या।
दिजाण तह- तथा हिदै की।
पिल्लयविओयं- चिंता पीडा यो महादुख दूजौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तिर्यंच योनि में छेदन, भेदन, ताड़न, त्रासन, निर्लांछन (चिन्ह रहित करना), दमन, नाक छेदना, मलन, दलन, प्रज्वलन, उत्कर्त्तन आदि अनेक दुःख हैं।180।

बंधन, भार लादना, लांछन (दागन), अन्न-पान-रोधन, शीत-उष्ण, भूख-प्यास आदि बाधाओं को सहता है और पिल्लों (बच्चों) के वियोग से उत्पन्न दुःख को भोगता है।1181।

इच्चेवमाइ बहुयं दुक्खं पाउणइ तिरियजोईए।
विसणस्स फलेण जदो वसणं परिवज्जए तम्हा।।182।।

टव्वाटीका-

इच्चेवमाइ- यां दुखां नैं आदिदे और भी।
बहुयं- बहुत।
दुक्खं- दुख।
पाउणइ- पावै यो जीव।
तिरियजोईए- तिरजंच जोनि विषै।
विसणस्स फलेण जदो- सप्त व्यसन का फल करि पुरवै कह्याते दुख।
वसणं परिवज्जए तम्हा- सर्वर्था प्रकार सर्व विसन तजणां तातैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार व्यसन के फल से यह जीव तिर्यंच योनि में बहुत दुःख पाता है, इसलिए सर्वथा व्यसनों का त्याग करना चाहिए।

ए तिरजंच गति का दुख कह्या

मनुष्यगतिदुःख-वर्णन

मणुयत्ते वि य जीवा दुक्खं पावंति बहुवियप्पेहिं।
इट्ठाणिट्ठेसु सया वियोय-संयोयजं तिव्वं।।183।।

टव्वाटीका-

मणुयत्ते वि य जीवा- बहुरि मनुक्ष गति विषै भी जीव।
दुक्खं- दुख।
पावंति- पावैं छैं।
बहुवियप्पेहिं- बहुत प्रकार करि।
इट्ठा- मन भावतो पदार्थ कौ विजोग।
इट्ठाणिट्ठेसु सया- अर अणभांवतां कौ सदा संजोग।
वियोय-संयोयजं- ई भांति संजोग अर विजोग करि उपज्या।
तिव्वं- महातीव्र मनुष्य देह का दुख त्यानै भोगवै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मनुष्य गति में भी व्यसन के फल से यह जीव इच्छित पदार्थ का वियोग तथा अनिच्छित पदार्थ का संयोग अर्थात् इष्टानिष्ट वियोग-संयोगज तीव्र दुःख बहुत प्रकार से पाता है।

सो मनुष्य गति के दुख केतायक वरणन करै छै

उप्पण्णपढमसमयम्मि कोई जण्णीइ छंडिओ संतो।
कारणवसेण इत्थं सीउण्ह-भुक्ख-तण्हाउरो मरइ।।184।।

टव्वाटीका-

उप्पण्णपढमसमयम्मि- उपजिवा कै प्रथम समै ही।
कोई जण्णीइ- कोईक प्राणी की माता मरि गई सो माता करि।
छंडिओ संतो- छांडयौ थकौ।
कारणवसेण इत्थं- पाप कारण का वस थकी।
सी- सीत।
उण्ह- उश्न।
भुक्ख- भूख।
तण्हाउरो- तिस।
मरइ- त्यांकरि पीड़ित हुवौ महादुख सौ मरै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही कारणवश या माता की मृत्यु होने पर माता के द्वारा छोड़े गये जीव इस प्रकार शीत, उष्ण, भूख और प्यास से पीड़ित होकर मर जाते हैं।

बालत्तणे वि जीवो माया-पियरेहि कोवि परिहीणो।
उच्छिट्ठं भक्खंतो जीवइ दुक्खेण परगेहे।।185।।

टव्वाटीका-

बालत्तणे वि जीवो- तथा बालक अवस्था विषै भी जीव।
माया- माता।
पियरेहि- अर पिता त्यांह करि।
कोवि परिहीणो- कोई रहित हुवा बालक अवस्था ही मैं कोइ का मा बाप मरि गया।
उच्छिट्ठं- तव औंठि पराई।
भक्खंतो- खातौ थकौ।
जीवइ- जीवै।
दुक्खेण- दुख करि।
परगेहे- पराया घर विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

बाल्यावस्था में भी कोई जीव माता-पिता से रहित होकर पराये घर में जूठन खाता हुआ दुःख के साथ जीता है।

पुव्वं दाणं दाऊण को वि सधणो जणस्स जहजोगं
पच्छा सो धणरहिओ ण लहइ कूरं पि जायंतो।।186।।

टव्वाटीका-

पुव्वं दाणं- अर पूर्वलै भव किंचित्मात्र अलप दान।
दाऊण- देय करि।
को वि- कोइक।
सधणो जणस्स- किंचित धनवान भी हुवो प्राणी।
जहजोगं- जथाजोग्य।
पच्छा सो धणरहिओ- पाछैं सो धनरहित हुवो।
ण लहइ- न पावै।
कूरं पि- कुक सा भी।
जायंतो- मांगतौ थकौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि कोई मनुष्य पूर्व भव में किसी प्राणी को यथायोग्य दान देकर किंचित् धनवान हो भी गया और पीछे (पापोदय से) धनरहित हो गया, तो माँगने पर कूर (भात) तक नहीं पाता है।

अण्णो उ पावरोएण बाहिओ णयर-बज्झदेसम्मि।
अच्छइ सहायरहिओ ण लहइ सघरे विचिट्ठेउं।।187।।

तिसओ वि भुक्खिओ हं पुत्ता मे देहि पाणमसणं च।
एवं कूवंतस्स वि ण कोवि वयणं पि सद्दहई।।188।।

तो रोय-सोयभरिओ सव्वेसिं सव्वहियाउ दाऊण।
दुक्खेण मरइ पच्छा धिगत्थु मणुयत्तणमसारं।।189।।

अण्णाणि एवमाईणि जाणि दुक्खाणि मणुयलोयम्मि।
दीसंति ताणि पावइ वसणस्स फलेणिमो जीवो।।190।।

टव्वाटीका-

अण्णो उ पावरोएण बाहिओ- अर और कोई पाप रूपी रोग करि पीडयो थकौ।
णयर-बज्झदेसम्मि- आपणों नगर वरजित परदेस विषै।
अच्छइ सहायरहिओ- तिष्ठै सहाय रहित।
ण लहइ सघरे वि चिट्ठेउं- तथा पाप का उदै करि न पावै घर विषै रहिवौ भी सुख साता।

तिसओ वि भुक्खिओ हं- अर कदाचि धनहीन थकौ घर ही मै रहे तौ तिसायो हुं, भूखो हुं।
पुत्ता मे देहि पाणमसणं च- बेटा हो मैनैं द्योह अहार पांणी।
एवं कूवंतस्स वि- ई भांति पुकार करता का भी।
ण कोइ- न कोई।
वयणं च से देइ- वचन सरदहै।

तो रोय-सोयभरिओ- सो रोग सोग कौ भरयो।
सव्वेसिं सव्वहियाउ दाऊण- सभी के हृदय को कष्ट देकर।
दुक्खेण मरइ पच्छा- दुख करि मरै पाछैं।
धिगत्थु- धिक्कार होहु।
मणुयत्तणमसारं- अैसा असार मनुष्यपणां नैं।

अण्णाणि एवमाईणि- एतौ दुख कह्या अर और भी अनेक यानैं आदि दे।
जाणि दुक्खाणि- जाणौं दुख।
मणुयलोयम्मि- मनुष्य लोक विषै।
दीसंति ताणि- दीखैं छैं जे प्रत्यक्ष त्यानैं।
पावइ- पावै।
वसणस्स- सप्त विसन सेवा का।
फलेणिमो जीवो- फल करि यो जीव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

और कोई पाप रूपी रोग से पीड़ित होकर अर्थात् कुष्ठ जैसे रोग से पीड़ित होकर नगर से बाहर किसी एकान्त प्रदेश में सहायता रहित होकर रहता है। अपने घर में भी नहीं रह पाता है।187।

यदि कदाचित् घर में भी रहे तो, मैं प्यासा हूँ, भूखा हूँ, पुत्र मुझे आहार, पानी दो, इस प्रकार पुकारते हुए को भी कोई वचन से भी आश्वासन नहीं देता है।188।

तो रोग शोक से भरा हुआ सभी के हृदय को दुःख देकर पीछे वह दुःख से मरता है। ऐसे असार मनुष्य योनि को धिक्कार है।189।

इस प्रकार अन्य योनियों में भी आदि से लेकर जितने भी दुःख मनुष्यलोक में दिखाई देते हैं, उन सबको यह जीव व्यसन के फल से पाता है।190।

ए मनुष्य गति का दुख कह्या आगै देवगति का दुख कहै छै

देवगतिदुःख-वर्णन

किंचुवसमेण पावस्स कह वि देवत्तणं पि संपत्तो।
तत्थ वि पावइ दुक्खं विसणज्जियकम्मपागेण।।191।।

टव्वाटीका-

किंचुवसमेण पावस्स- किंचित मात्र उपसम हुवा संता पाप कर्म नैं।
कह वि- कदाचि।
देवत्तणं वि संपत्तो- देवगति नैं भी प्राप्त हूवा जीव।
तत्थ वि- तौ तहां भी।
पावइ दुक्खं- पावै दुख मन संबंधी।
विसणज्जियकम्मपागेण- विसन सेवा करि उपज्यो कर्म तीका उदयकरि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

किंचित मात्र पाप कर्म के उपशम होने से कदाचित जीव देवगति को प्राप्त भी हुआ तो, वहाँ भी व्यसन सेवन से उपार्जित कर्म के उदय से दुःख ही पाता है।

दट्ठण महड्ढीणं देवाणं ठिइज्जरिद्धमाहप्पं।
अप्पड्ढिओ विसूरइ माणसदुक्खेण डज्झंतो।।192।।

हा मणुयभवे उप्पज्जिऊण तव-संजमं वि लद्धू ण।
मायाए जं वि कयं देवदुग्गं तेण संपत्तो।।193।।

टव्वाटीका-

दट्ठूण महड्ढीणं- देखि करि मोटी ऋद्धि का धणी।
देवाणं- देवां नैं।
ठिइज्जरिद्धमाहप्पं- अर पुन्य की स्थिति करि उपजो त्यांह मोटा देवां कै मोटी ऋद्धि तीका प्रभाव नैं, महातम नैं देखि करि।
अप्पड्ढिओ विसूरइ- अलप पुनदिव विसूरै मन मैं विलाप करै जो असी ऋद्धि कौ धणी मोटो देव हुं न हुवौ।
माणसदुक्खेण डज्झंतो- सो मन का दुख करि वलतौ थकौ खेद नै पामैं।

हा मणुयभवे उप्पज्जिऊण- हाय हाय मनुक्ष भव विषै उपजि करि अर।
तव-संजमं वि लद्धू ण- तप जो अनसनादि वारह भेद अर संजम छ काय की दया तथा मन इंद्री कौ निरोध सो तप संजम नैं भी पाय करि।
मायाए जं वि कयं- मैं मूरिख माया जो कपट के लुणी तीकरि जो फल ताकरी।
देवदुग्गं तेण संपत्तो- देवां मैं दुरगति तिह प्रपंच करि पाई।

भावार्थ- इंद्र न हवो, सामानीक न हुवा, लोकपाल, त्रयत्रिंसत, पारत्रि न हुवो, नन्हा देवां मै उपज्यो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देवगति में महान (बड़े) देवों के पुण्य के कारण उत्पन्न ऋद्धि के माहात्म्य को देखकर अल्प ऋद्धि वाला देव विलाप करता है, मानसिक दुःख से जलता हुआ खेद को प्राप्त होता है।192।

और सोचता है कि हाय! मनुष्य गति में उत्पन्न होकर तप, संयम को पाकर भी, उसमें जो कुछ भी मैंने मायाचार किया, उसके फलस्वरूप मैं देव दुर्गति को प्राप्त हुआ अर्थात् अनशन आदि जो बारह प्रकार का तप, छः काय की दया कर संयम और मन इन्द्री का निरोध कर जो तप, संयम में मैंने कपट और मायाचार किया उसके फलस्वरूप ही मैं नीची जाति का देव हुआ।193।

कंदप्प-किब्भिसासुस-वाहण-समोह-देवजाईसु।
जावज्जीवं णिवसइ विसहंतो माणसं दुक्खं।।194।।

टव्वाटीका-

कंदप्प- वा जंत्र जाति कौ देव हुवो तथा दस कर्म कौ करणहारो अभियोग जाति देव हुवो तथा।
किब्भिसासुस- किलैविष हुवौ अति नीच चंडाल समान तथा असुरां मैं हुवो।
वाहण-समोह- अथवा वाहण जाति कौ देव हुवो तथा समूह मैं हुवो जिहकी गणति नहीं।
देवजाईसु- इत्यादि नीच जाति का देव मैं उपज्यो।
जावज्जीवं णिवसइ- सो जनम परजंत वसै देव जौंनि विषै।
विसहंतो माणसं दुक्खं- सहतौ थकौ मन का दुख।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कन्दर्प, किल्विषिक, असुर, वाहन, सम्मोहन आदि व्यन्तरवासी देवों की नीची जाति में उत्पन्न हुआ तथा जन्म पर्यंत मानसिक दुःख को सहन करता हुआ वह निवास करता है।

छम्मासाउयसेसे वत्थाहरणाइं हुंति मलिणाइं।
णाऊण चवणकालं अहिययरं रुयइ सोगेण।।195।।

हा हा कह णिल्लोए किमिकुलभरियम्मि अइदुगंधम्मी ।
णवमासं पूइ-रुहिराउलम्मि गब्भम्मि वसियव्वं।।196।।

किं करमि कत्थ वच्चमि कस्स साहामि जामि कं सरणं।
ण वि अत्थि एत्थ बंधू जो मे धरइ णिवडंतं।।197।।

वज्जाउहो महप्पा एरावण-बाहणो सुरिंदो वि।
जावज्जीवं सो सेविओ वि ण धरेई मं तहवि।।198।।

टव्वाटीका-

छम्मासाउयसेसे- अर मरण आयलागै छ महीनां जब आऊषा का वाकी रहै।
वत्थाहरणाइं- तव वस्त्र आभरणादिक।
हुंति मलिणाइं- मलिन कहतां कांति रहित होय।
णाऊण चवणकालं- तब वो देव जांणि करि आपणौं मरण काल।
अहिययरं रुयइ सोगेण- वहौत अधिक रोवै सोग करि।

हा हा- हाय हाय।
कह णिल्लोए- कहां नर लोक विषै।
किमिकुलभरियम्मि- क्रमि कहतां लट त्यांका समूह करि।
अइदुगंधम्मि- अतिदुरगंध सो।

णवमासं- नव महीना।
पूइ-रुहिरा- कुवस्तु रुध्रिदि।
उलम्मि- करि पूरण।
गब्भम्मि वसियव्वं- अैसौ नो माता कौ गर्भ तिह विषै वसणैं छै जहां।

किं करमि- कांई करूं।
कत्थ वचमि- कहां बचूं।
कस्स साहामि- कुणैं कौ साधन करूं।
जामि कं सरणं- जांऊं कुणैं सरणैं।
ण वि- नही।
अत्थि- छै।
एत्थ बंधू- अैठै अेसौ कोई बांधव तथा मित्र।
जो मे धरइ णिवडंतं- जो मोनैं राखे सुर्गथ की पड़ता मैं।

वज्जाउहो- वज्र कौ छै आयुध जिहकै।
महप्पा- अर महात्मा छै।
एरावण-बाहणो- अर अैरावत हाथी छै वांहण जिहकै।
सुरिंदो वि- इसौ इंद्र सारा कौ स्वामी।
जावज्जीवं- जनमपरजंत मैं।
सो सेविओ वि ण धरेई मं तहवि- सेवो सो भी न राखै मोनैं तौ पणि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देवायु के छः मास शेष रह जाने पर वस्त्र और आभूषण कांतिरहित अर्थात् मलिन हो जाते हैं, तब वह देव अपना मरणकाल निकट जानकर शोक से और भी अधिक रोता है।195।

और कहता है कि हाय! हाय मनुष्यलोक में अर्थात् लटों के समूह से भरा हुआ, अतिदुर्गन्धित पीप और रुधिरादि कुवस्तु से व्याप्त गर्भ में नौ मास तक कैसे रहूँगा?196।

मैं क्या करूँ? किससे कहूँ? कहाँ जाऊँ? कौन सा साधन करूँ? किसकी शरण जाऊँ? यहाँ ऐसा मेरा कोई मित्र या बन्धु नहीं है जो मुझे यहाँ से (स्वर्ग से) गिरते हुए से बचा ले।197।

वज्रायुध वाला, महात्मा, ऐरावत हाथी की सवारी वाला और जीवनपर्यंत जिसकी सेवा की है, देवों का स्वामी इन्द्र भी मुझे यहाँ नहीं रख सकता है।198।

जइ मे होहिहि मरणं ता होज्जउ किंतु मे समुप्पत्ती।
एगिंदिएसु जाइज्जा णो मणुस्सेसु कइया वि।।199।।

अहवा किं कुणइ पुराज्जियम्मि उदयागयम्मि कम्मम्मि।
सक्को वि जदो ण तरइ अप्पाणं रक्खिउं काले।।200।।

टव्वाटीका-
जइ मे होहिहि मरणं- जो म्हारै होइ मरण।
ता होज्जउ किंतु मे समुप्पत्ती- तौ हैज्यो कांईक म्हारी उतपत्ति आछ्या जनम मैं।

एगिंदिएसु- जे एकेंद्रिय जानि त्यांह विषै।
जाइज्जा णो मणुस्सेसु कइया वि- मति होज्यो जनम म्हारौ मध्य लोक विषै कदाचित भी।
अहवा किं कुणइ- अथवा कांई करै सहाय कोई।
पुराज्जियम्मि उदयागयम्मि- पूरवजा उपाज्या उदयागत।
कम्मम्मि- कर्म विषै।
सक्को वि- समर्थ नही छै कोई।
जदो- जातैं।
ण तरइ- दे कोई नैं कोइ सरणौं।
अप्पाणं रक्खिउं काले- सो इंद्रादिक मोटा देव आपही नैं राखिवा समर्थ नहीं काल थकी तौ औरांनै कैसें राखै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि मेरा मरण हो तो हो, किन्तु मेरी उत्पत्ति एकेन्द्रिय जीवों में हो परन्तु मनुष्य गति में कदाचित् भी न हो।199

अथवा क्या कर सकता हूँ, जबकि कोई पूर्व में उपार्जित कर्म के उदय में आने पर इन्द्र जैसा बड़ा देव भी मरण-काल में अपनी रक्षा करने में समर्थ नहीं तो औरों की किस प्रकार करें।200।

एवं बहुप्पयारं सरणविरहिओ खरं विलवमाणो।
एइंदिएसु जायइ मरिऊण तओ णियाणेण।।201।।
तत्थ वि अणंतकालं किलिस्समाणो सहेइ बहुदुक्खं।
मिच्छत्तसंसियमई जीवो किं किं दुक्खं ण पाविज्जा।।202।।
पिच्छह दिव्वे भोए जीवो भोत्तूण देवलोयम्मि।
एइंदिएसु जायइ धिगत्थ संसारवासस्स।।203।।

टव्वाटीका-
एवं बहुप्पयारं- ई भांति बहुत प्रकार।
सरणविरहिओ- सरणां सौ रहित हुवा संतौ।
खरं विलवमाणो- अति कठोर विलाप करतौ थकौ।
एइंदिएसु- एकेंद्री विषै।
जायइ- उपजै सो देव।
मरिऊण- मरि करि।
तओ- तव।
णियाणेण- आपणां उपाज्या पाप करि।

तत्थ वि- तहां एकेंन्द्री जनम विषै भी।
अणंतकालं- अनंतकाल जनम मरण करतौ संतौ।
किलिस्समाणो- कलेस रूप हुवो थको।
सहेइ बहुदुक्खं- सहै बहौत दुख।
मिच्छत्तसंसियमई- मिथ्यात्व करि आश्रित छै बुद्ध जिहकी।
जीवो किं किं दुक्खं ण पाविज्जा- सो जीव कांई कांई न पावै दुख कलेस।

पिच्छह- देखौ देखौ।
दिव्वे भोए- दिव्य भोग।

जीवो भोत्तूण देवलोयम्मि- जीव भोग करि देवलोक विषै।
एइंदिएसु जायइ- अर मरि करि एकेंद्री विषै उपजै तातैं।
धिगत्थु संसारवासस्स- धिक्कार धिक्कार छै ई संसार का वास नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार शरण रहित होकर बहुत प्रकार से करुण विलाप करता हुआ, वहाँ से मरकर निदान के फल से एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता है।

वहाँ पर भी अनन्तकाल तक जन्म-मरण करता हुआ, क्लेश सहता हुआ बहुत दुःख पाता है। मिथ्यात्व से भ्रमित बुद्धि वाला जीव किन-किन दुःखों को नहीं पाता है।

देखो, देवलोक में दिव्य भोगों को भोगकर यह जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता है, ऐसे संसार वास को धिक्कार है।

एवं बहुप्पयारं दुक्खं संसार-सायरे घोरे।
जीवो सरण-विहीणो विसणस्स फलेण पाउणइ।।204।।

टव्वाटीका-
एवं बहुप्पयारं- ई भांति बहुत प्रकार का।
दुक्खं संसार-सायरे घोरे- दुखां नैं।
जीवो सरण-विहीणो- संसार सागर भयानीक विषै।
विसणस्स फलेण पाउणइ- जीव सारणां सौं रहित हुवो थकौ, सप्तविसन का फलकरि पावै।
टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-
इस प्रकार भयानक संसार सागर में जीव शरण रहित होकर सप्त व्यसन के फलस्वरूप अनेक प्रकार के दुःखों को पाता है।

ए देव गति का दुख कह्या, च्यारयों गति का दुखां कौ व्याख्यान पूरण कीये

दर्शनप्रतिमा

पंचुंबरसहियाइ परिहरेइ इय जो सत्त विसणाइं।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावयो भणिओ।।205।।

टव्वाटीका-

पंचुंबरसहियाइ- ई भांति जो जीव पंच उदंवर सहित।
परिहरेइ इय- तजै मन वचन काय करि।
जो सत्त विसणाइं- जो सात विसना नैं।
सम्मत्तविसुद्धमई- सम्यकदर्शन करि निर्मल छै बुद्ध जिहकी।
सो दंसणसावयो भणिओ- सो पहली पडिमा कौ धारक दरसन श्रावक कहैजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सम्यग्दर्शन से निर्मल बुद्धि वाला जीव मन, वचन, काय से पाँच उदुम्बर फल सहित सप्त व्यसनों का त्याग करता है, वह पहली प्रतिमा का धारक दर्शनश्रावक कहा गया है।

एवं दंसणसावयठाणं पढमं समासओ भणियं।
वयसावयगुणठाणं एत्तो विदियं पवक्खामि।।206।।

टव्वाटीका-

एवं दंसणसावयठाणं- ई प्रकार दरसन श्रावक कौ स्थान।

पढमं- पहलौ।

समासओ भणियं- संक्षेप थकी कहयौ।

वयसावयगुणठाणं- व्रत श्रावक का गुणां कौ स्थानक।

एत्तो विदियं पवक्खामि- अब अैंठा छा आगैं दूजौ कहस्यौं

भावार्थ- पहली पडिमा का धारक कौ स्वरूप कह्यो अव दूजी पडिमा का धारक का स्वरूप कहस्यौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार दर्शनश्रावक का पहला स्थान संक्षेप में कहा। अब इससे आगे व्रत श्रावक का दूसरा स्थान कहता हूँ।

दरसन प्रतिमा कौ कथन संपूर्ण आगैं व्रत प्रतिमा कौ स्वरूप कहै छै

द्वितीय व्रतप्रतिमा-वर्णन

पंचेव अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति पुण तिण्णि।
सिक्खावयाणि चत्तारि जाण विदियम्मि ठाणम्मि।।207।।

टव्वाटीका-

पंचेव अणुव्वयाइं- पांच तौ अणुव्रत-दया 1, सत्य 1, अचौर्य 1, परस्त्री कौ त्याग, 1 परिग्रह प्रमाण 1 एवं 5।

गुणव्वयाइं- गुण व्रत हू छै।

हवंति पुण तिण्णि- वहुरि तीन-दिसा प्रमाण 1, देसप्रमाण 1, अनर्थदंडत्याग 1 एवं 3

सिक्खावयाणि चत्तारि- शिक्षा व्रत हूं छै च्यारि भोग प्रमाण 1, उपभोग प्रमाण 1, अतिथिसंविभाग 1, अंतिसधत्रैषण (प्रोषधोपवास) 1, ई प्रकार की कहये अर सामाइक, पोसहा, अतिथिसंविभाग, भोगोपभोग प्रमाण, ए 4 सिक्षाव्रत ठौर ठौर कह्या छै।

जाण विदियम्मि- सो जाणौं ए वारा व्रत दूजी पडिमा का धारक।

ठाणम्मि- श्रावक विषै अब यांकौ वरणन करै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

दूसरी व्रत प्रतिमा में पाँच अणुव्रत- दया, सत्य, अचौर्य, परस्त्री का त्याग एवं परिग्रहप्रमाण, तीन गुणव्रत-दिशाप्रमाण, देशप्रमाण और अनर्थदण्डत्याग, चार शिक्षाव्रत-भोगप्रमाण, उपभोगप्रमाण, अतिथिसंविभाग एवं प्रतिसल्लेखना इस प्रकार जानना चाहिए। सामायिक, प्रोषध, अतिथिसंविभाग एवं भोगोपभोग प्रमाण ये चार शिक्षाव्रत भी स्थान-स्थान पर कहे गये हैं।

पाणाइवायविरई सच्चमदत्तस्स वज्जणं चेव।
थूलयड बंभचेरं इच्छाए गंथपरिमाणं।।208।।

टव्वाटीका-

पाणाइवायविरई- प्राणी जीवां की हिंसा सौं रहितपणौं सो पहलौ अणुव्रत 1।

सच्च- सत्य बोलिवो, अर परपीडा कौ वचन न वोलिवौ, सो दूजौ अणुव्रत।

मदत्तस्स वज्जणं चेव- बहुरि चोरी कौ त्याग, सो तीजौ अणुव्रत।

थूलयड बंभचेरं- स्वदारा संतोष परदारात्याग, सो चौथौ अणुव्रत।

इच्छाए गंथपरिमाणं- त्रिश्ना नैं रोकि अर परिग्रह कौ प्रमाण करिवौ सो पांचमौ अणुव्रत।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

स्थूल रूप से प्राणी जीवों की हिंसा से रहितपना यह पहला अणुव्रत, स्थूल सत्य बोलना और परपीड़ा का वचन न बोलना दूसरा अणुव्रत, स्थूल चोरी का त्याग तीसरा अणुव्रत, स्थूल स्वदारा संतोष परदारा का त्याग चौथा अणुव्रत, तृष्णा को रोक कर स्थूल परिग्रह का प्रमाण करना यह पाँचवां अणुव्रत होता है।

जे तसकाया जीवा पुव्वुद्दिट्ठा ण हिंसियंव्वा ते।
एइं दिया वि णिक्कारणेण पढमं वयं थूलं।।209।।

टव्वाटीका-

जे तसकाया जीवा- जे त्रसकाय का जीव बेइंद्री, तेंइद्री, चौइंद्री, पंचेंद्री, नर, तिरजंच सर्व।

पुव्वुद्दिट्ठा- पहली ज्यांकौ वरणन दिखायौ।

ण हिंसियंव्वा ते- ते न विराध्णां, सर्वथा त्रस काय की रक्षा करणी।

एइं दिया वि णिक्कारणेण- अर एकेंद्री जीव प्रथ्वीकाय 1, जलकाय 1, अगनिकाय 1, वायुकाय 1, वनासपती एवं पते भी वृथा न हणिवा, आहार मात्र, जल, अन्न, अगनि कौ विराधन श्रावक कै छै अधिक नहीं।

पढमं वयं थूलं- सो पहलौ व्रत मोटी हिंसा कौ त्याग अहिंसा नामा अणुव्रत कहजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो त्रसकाय जीव पहले बताये गये हैं, उन्हें नहीं मारना चाहिये और बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय जीवों की भी हिंसा नहीं करनी चाहिये, यह प्रथम स्थूल अहिंसाव्रत है।

अलियं ण जंपणीयं पाणिबहकरं तु सच्चवयणं पि।
रायेण य दोसेण य णेयं विदियं वयं थूलं।।210।।

टव्वाटीका-

अलियं ण जंपणीयं- अर मिथ्या वचन न वोलणौं।

पाणिबहकरं तु- तथा प्राणी जीवां की हिंसा कौ करणहारौ।

सच्चवयणं पि- सत्य भी वचन सर्वथा न बोलणौं।

रायेण य दोसेण य- राग करि अथवा दोष करि असुभ वचन न कहणौं।

णेयं विदियं वयं थूलं- सो जाणौं दूजौ व्रत कौ स्थूल रूप सत्य नाम अणुव्रत।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

असत्य वचन नहीं बोलना तथा प्राणी के घात करने वाला सत्य वचन भी नहीं बोलना, राग-द्वेष के कारण अशुभ वचन नहीं बोलना, यह दूसरा स्थूल सत्य अणुव्रत जानना चाहिए।

पुर-गाम-पट्टठ्ठणाइसु पडियं णट्ठं च णिहिय वीसरियं।
परदव्वमहिएहुतस्स होइ थूलवयं तइदयं।।211।।

टव्वाटीका-

पुर- अर नगर।

गाम- गांव।

पट्टठ्ठणाइसु- पट्टण आदि विषै।

पडियं- ध्रती मैं पडौ गिरयौ।

णट्ठं च- अथवा कोयां कै गुमि गयो बहुरि।

णिहिय वीसरियं- कोई आपणौ थापणि मेल्हि भूल गयो अथवा मरि गयो।

परदव्वमहिएहुतस्स- ई भांति अनेक प्रकार जो परायो धन, तिहनैं अहि कहतां सर्प की नांई जाणौं।

होइ थूलवयं तइयं- परायो धन न हरै तिहकै स्थूल रूप चोरी कौ त्याग नामा तीजौ गुण व्रत होइ छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नगर, ग्राम, पत्तन, क्षेत्र आदि में पड़ा हुआ, खोया हुआ, रखा हुआ, भूला हुआ अथवा रखकर मर गया हो, इस प्रकार जो पराया धन है उसे सर्प के समान जानकर उसे न लेना, यह तीसरा स्थूल अचौर्य अणुव्रत जानना चाहिए।

पव्वेसु इत्थिसेवा अणंगकीडा सया विवज्जंतो।
थूलयडबंभयारी जिणेहि भणिओ पवणम्मि।।212।।

टव्वाटीका-

पव्वेसु इत्थिसेवा- बहैंण, बेटी समान जाणीवा बालौ, अर निजदारा विषै अष्टमी, चतुरदसी आदि जे परवां त्यामैं सेवन न करै, अर दिन कै विषै सेवन न करै।

अणंगकीडा- अर परवी सिवाय और रात्रि विषै सेवन निज स्त्री कौ कदाचि करै तौ भी अनंग क्रीडा कहता मुख चुंवनादि जे राग क्रीडा।

सया विवज्जंतो- त्यांनैं सदा तजतौ थकौं, उदासीनता सों संभोग करैं।

थूलयडबंभयारी- सो मोटै भोगे स्थूल रूप कुसील कौ त्यागी, एकोदेस ब्रह्मचर्य कौ धरनहारौ, चौथा अणुव्रत संयुक्त श्रावक।

जिणेहि- जिनवर देवां।

भणिओ- कह्यो।

पवणम्मि- सिद्धांत विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पर्व में अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी के दिनों में स्त्री-सेवन तथा अनंगक्रीड़ा अर्थात् राग को बढ़ाने वाली क्रीड़ा के सर्वथा त्याग करने को प्रवचन में जिनेन्द्र भगवान ने स्थूल ब्रह्मचारी कहा है। यह चौथा अणुव्रत हुआ।

जं परिमाणं कीरइ धण-धण्ण-हिरण्ण-कंचणाईणं।
तं जाण पंचमवयं णिद्दिट्ठमुवासयज्झयणे।।213।।

टव्वाटीका-

जं परिमाणं कीरइ- अर जो प्रमाण करै।

धण-धण्ण- धन, धन्य, द्वि पद, चतु पद।

हिरण्ण- दीनारादि, रोकडि तथा सुवर्ण, रतनादि, आभरणादि।

कंचणाईणं- समस्त परिग्रह कौ।

तं जाण पंचमवयं- सौ जाणौं पंचम अणुव्रत।

णिद्दिट्ठमुवासयज्झयणे- कह्यो छै भगवान देवां उपासकाध्ययन नामा सातमा अंग विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण आदि समस्त परिग्रह का प्रमाण किया जाता है, उसे पांचवाँ अणुव्रत जानना चाहिये। ऐसा उपासकाध्ययन नामक सातवें अंग में कहा गया है।

ए पांच अणुव्रत कह्या अव तीन गुणव्रत सुणौं

गुणव्रत-वर्णन

पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिमासु काऊण जोयणपमाणं।
परदो गमणणियत्ती दिसि विदिसि गुणव्यवं पढमं।।214।।

टव्वाटीका-

पुव्वुत्तर-दक्खिण- पूरब, उत्तर, दक्षण।

पच्छिमासु- पश्चिम इत्यादि जे दिसा त्यां विषै।

काऊण जोयणपमाणं- करिकैं जोजनां कौ प्रमाण, जो एता जोजन तक ई दिसा जाऊं, आघो न जांऊ।

परदो गमणणियत्ती- सो प्रमाण करैं जो क्षेत्र ता ए दिसा अर विदिसा त्यांकौ जावा कौ त्याग करै।

दिसि विदिसि- दिसि तो पूरवादिक कही अर विदिसा 4, अगनि 1, वायु 1, नैरत्थ 1, ईशान ए दिसा, अर विदिसा त्याकौ।

गुणव्यवं पढमं- प्रमांण सो गुणव्रत पहलो कहजै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पूर्व, उत्तर, दक्षिण, पश्चिम दिशाओं में योजनों का प्रमाण करके उससे आगे दिशा, विदिशाओं अर्थात् अग्नि, वायव्य, नैऋत्य, ईशान विदिशाओं में गमन नहीं करना, यह प्रथम दिग्व्रत नाम का गुणव्रत है।

वय-भंगकारणं होइ जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमणणियत्ती तं जाण गुणव्यवं विइयं।।215।।

टव्वाटीका-

वय-भंगकारणं होइ- अर व्रत भंग कौ होय कारण।

जम्मि देसम्मि- जिह देस विषै।

तत्थ णियमेण- तैंठे निश्चै थकी

कीरइ गमणणियत्ती- करै गमन कौ त्याग।

भावार्थ- जै मलेछादिक नीच देस छै तहां गमन न करै।

तं जाण गुणव्यवं विइयं- सो जाणौं गुणव्रत दूजौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस देश में रहते हुए व्रत भंग का कारण उपस्थित हो अर्थात् म्लेच्छ आदि नीच देश हैं, उस देश में गमन की नियम से निवृत्ति की जाती है। उसको दूसरा गुणव्रत जानना चाहिये।

अय-दंड-पास-विक्कय कूड-तुलामाण कूरसत्ताणं।
जं संगहो ण कीरइ तं जाण गुणव्यवं तइयं।।216।।

टव्वाटीका-

अय-दंड- लोह, सीसा इत्यादि अर दंड।

पास-विक्कय- पासिनैं आदि दे जे हिंसा का कारण छै तै नहीं वेचै।

कूड-तुलामाण- तथा खडी कडी न राखै अर, तोला घटि वधि न राखै।

कूरसत्ताणं- बहुरि क्रूर जीव जे वागुरा, नाहर, चीता, कुतरा, विलाई, वाज़ी, जुररा इत्यादि।

जं संगहो ण कीरइ- ज्यांह कौ संग्रह न करै।

तं जाण गुणव्यवं तइयं- सो जाणौं अनर्थदंड परिहार नामा गुणव्रत तीसरौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

लोहे के शस्त्र तलवार, कुदाली आदि दंड और पाश (जाल) आदि जो हिंसा के कारण हैं उन्हें बेचने का त्याग करना, झूठी तराजू और नाप-तोल के बाटों को कम नहीं करना, क्रूर जीव जैसे चीता, कुत्ता, बिल्ली आदि का संग्रह नहीं करना, यह तीसरा अनर्थदण्ड नाम का गुणव्रत जानना चाहिए।

ए तीन प्रकार गुणव्रत कह्या

शिक्षाव्रत-वर्णन

जं परिमाणं कीरइ मंडण-तंबोल-गंध-पुप्फाणं।
तं भोयविरइ भणियं पढमं सिक्खावयं सुत्ते।।217।।

टव्वाटीका-

जं परिमाणं कीरइ- अब 4 सिक्षाव्रत कहै छै, जो परमाण करै अथवा त्याग करै।

मंडण- स्नान विलेपनादि सरीर कौ संवारिवौ, सिंगारिवौ।

तंबोल- अथवा तंबोल तथा।

गंध-पुप्फाणं- सुगंध पुष्पादिक।

तं भोयविरइ भणियं- तिहकौ नाम भोग प्रमाण नाम कह्यौ।

पढमं- पहलौ।

सिक्खावयं सुत्ते- सिक्षाव्रत सूत्र सिद्धांत विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो परिणाम किया जाता है अथवा त्याग किया जाता है शारीरिक साज श्रृंगार का, ताम्बूल अर्थात् पान, सुगंध तथा पुष्पादि का, उसे उपासकाध्ययन सिद्धान्त सूत्र में भोगविरति नामक प्रथम शिक्षाव्रत कहा गया है।

सगसत्तीए महिला-वत्थाहरणाण जं तु परिंमाणं।
तं परिभोयणिवुत्ती विइयं सिक्खावयं जाण।।218।।

टव्वाटीका-

सगसत्तीए- अर आपणी शक्ति प्रमाण।

महिला- स्त्री कौ।

वत्थाहरणाण- तथा वस्त्र आभरणादिकां कौ।

जं तु- जो बहुरि।

परिंमाणं- प्रमाण करिवौ।

तं परिभोयणिवुत्ती- तिहकौ नाम उपभोग निवृत्ति नामा।

विदियं- दूजौ।

सिक्खावयं जाण- सिक्षाव्रत जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अपनी शक्ति के अनुसार स्त्री और वस्त्राभूषण आदि का जो परिमाण किया जाता है उसे परिभोग-निवृत्ति नाम का दूसरा शिक्षाव्रत जानना चाहिए।

अतिहिस्स संविभागो तइयं सिक्खावयं मुणेयव्वं।
तत्थ वि पंचहियारा णेया सुत्ताणुमग्गेण।।219।।

टव्वाटीका-

अतिहिस्स संविभागो- अर अतिथि कौ संविभाग जे साधु, संत, श्रावक, श्राविका, आर्या, सम्यकदृष्टी तथा दुखित, भूखित, बाल, वृद्ध, पसु, पांखी, रोगी इत्यादि त्यांनै दया करी देणौं, दान विना भोजन न करणौ।

तइयं- यौ तीसरौ।

सिक्खावयं मुणेयव्वं- सिक्षावृत जाणौं।

तत्थ वि पंचहियारा- तिह अतिथि संविभाग व्रत विषै पांच अधिकार छै।

णेया- ते जांणिवा।

सुत्ताणुमग्गेण- सूत्र कै मार्ग करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो साधु, संत, श्रावक, श्राविका, आर्यिका तथा सम्यक्दृष्टि हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन देना, दुःखी, भूखे, बच्चे, वृद्ध, पशु, पक्षी तथा रोगी को दयापूर्वक भोजन दान दिये बिना भोजन न करना, यह तीसरा अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत जानना चाहिये। इसके पांच अधिकार उपासकाध्ययन सूत्र के अनुसार जानना चाहिये।

पत्तंतर दायारो दाणविहाणं तहेव दायव्वं।
दाणस्स फलं णेया पंचहियारा कमेणेदे।।220।।

टव्वाटीका-

पत्तंतर दायारो- पांच अधिकारां मध्ये पात्र का भेद तथा दाता का लक्षण।

दाणविहाणं- अर दान कौ विधान।

तहेव दायव्वं- बहुरि देवा जोग्य जो वस्तु सो देणी।

दाणस्स फलं णेया- अर दान का फल जाणनां।

पंचहियारा कमेणेदे- पांच अधिकार अनुक्रम करि ए अतिथिसंविभागव्रत विषै कह्यो छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पांच अधिकारों में पात्र का भेद, दाता का लक्षण, दान का विधान, देने योग्य वस्तु और दान का फल इनको क्रम से जानना चाहिए।

पात्रभेद-वर्णन

तिविहं मुणेह पत्तं उत्तम-मज्झिम-जहण्णभेएण।
वय-णियम-संजमधरो उत्तमपत्तं हवे साहू।।221।।

टव्वाटीका-

तिविहं मुणेह पत्तं- तीन प्रकार जांणौ पात्र।

उत्तम- उत्तम।

मज्झिम- मध्य।

जहण्णभेएण- जघन्य भेदां करि।

वय-णियम-संजमधरो- सो त्यांहमैं नियम संजम कौ धरिवा वालौ।

उत्तमपत्तं हवे साहू- उत्तम पात्र होय छै साधु।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से पात्र तीन प्रकार का जानना चाहिए। उनमें व्रत, नियम और संयम को धारण करने वाला साधु उत्तम पात्र है।

एयारस ठाणठिया मज्झिमपत्तं खु सावया भणिया।
अविरइसम्माइट्ठी जहण्णपत्तं मुणेयव्वं।।222।।

टव्वाटीका-

एयारस ठाणठिया- अर एकादस स्थानां विषै तिष्ठत थका अणुव्रती।

मज्झिमपत्तं- मध्य पात्र।

खु सावया भणिया- श्रावक कह्या छै।

अविरइसम्माइट्ठी- तथा अव्रत सम्यकद्रिष्टी नैं।

जहण्णपत्तं मुणेयव्वं- जघन्य पात्र जांणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ग्यारह प्रतिमा-स्थानों में स्थित श्रावक मध्यम पात्र कहे गये हैं और अविरत सम्यक्दृष्टि जीव को जघन्य पात्र जानना चाहिये।

वय-तव-सीलसमग्गो सम्मत्तविवज्जिओ कुपत्तं तु।
सम्मत्त-सील-वयवज्जिओ अपत्तं हवे जीओ।।223।।

टव्वाटीका-

वय-तव-सीलसमग्गो- अर व्रत सील करि पूरिण महाव्रतादि अठाईस मूलगुण अर चौरासी लाख उत्तरगुण त्यांकौ धारक।

सम्मत्तविवज्जिओ- परंतु सम्यकदर्शन तैं रहित।

कुपत्तं तु- सो कहियै कुपात्र।

सम्मत्त-सील-वयवज्जिओ- बहुरि सम्यक्त अर व्रत शील दोन्यां थकी जे वरजित

अपत्तं हवे जीओ- नतै जिहकै भाव चारित्र न द्रव्य चारित्र।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो व्रत, तप और शील से सम्पन्न हैं, अट्ठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तरगुणों के धारक हैं किन्तु सम्यग्दर्शन से रहित हैं, वे कुपात्र हैं। सम्यक्त्व, शील और व्रत से रहित जीव अपात्र हैं। उनके न भाव चारित्र है न द्रव्य चारित्र।

जातैं सो अपात्र होइ छै यो पात्रपात्र कौ भेद कह्यो आगै दाता का लक्षण कहै छै

दातार-वर्णन

सद्धा भत्ती तुट्ठी विण्णाणमलुद्धया खमा सत्ती।
जत्थेदे सत्त गुणा तं दायारं पसंसंति।।224।।

टव्वाटीका-

सद्धा- श्रधा।

भत्ती- भक्ति।

तुट्ठी- हरष।

विण्णाणमलुद्धया- जाणपणौं निरलोभता।
खमा- क्षमा।
सत्ती- अर सत्य।
जत्थेदे- जहां ए।
सत्त गुणा- सप्त गुण दातार विषै होइ प्रगट।
तं दायारं- तिह दातार नैं।
पसंसंति- सिद्धांत मैं प्रसंसैं छैं भलौ कहैं छै महापुरिष।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

श्रद्धा, भक्ति, संतोष, विज्ञान, निरलोभता, क्षमा और शक्ति जहाँ ये सात गुण दातार में प्रकट हो, सिद्धान्त में अर्थात् आचार्यों ने शास्त्रों में उस दातार की प्रशंसा की है, उसे महापुरुष कहते हैं।

दाता का लक्षण कह्या आगै दान की विधि कहै छै

दानविधि-वर्णन

पडिगह मुच्चट्ठाणं पादोदयमच्चणं च पणमं च।
मण-वयण-कायसुद्धी एसणसुद्धी य दाणविही।।225।।

टव्वाटीका-
पडिगह- नमस्कार करि साधू नैं अर पडगाहिवौ, आइए आइए स्वामी, यो घर पवित्र कीयो इसा वचन कहिवौ।
मुच्चट्ठाणं- अर उच्च स्थान देवौ, आप नीचा ऊभा रहवो।
पादोदय- अर प्रासुक जल सौं पाव धोइवो।
मच्चणं च- बहुरि पूजिवौ।
पणमं च- अर प्रणाम करिवौ।
मण- अर मन की शुद्ध।
वयण- वचन की शुद्ध।
कायसुद्धी- काया की शुद्ध।
एसणसुद्धी य- बहुरि अहार की शुद्ध।
दाणविही- ए नव मुनिराज का दान की विधि कही।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पड़िगाहना- आइए-आइए कहकर बुलाना, उच्चासन देना अर्थात् स्वयं से ऊँचे आसन पर बिठाना, प्रासुक जल से पैर धोना, पूजन करना, प्रणाम करना, मन की शुद्ध, वचन की शुद्ध, काय की शुद्ध और एषणा अर्थात् भोजन की शुद्ध ये नौ प्रकार की मुनिराज के दान की विधि कही।

सो फेरि भी जुदी जुदी विस्तार करि कहै छै

पत्तं णियघरदासे दट्ठूणण्णत्थ वा विमग्गित्ता।
पडिगहणं कायव्वं णमोत्थु ठाहु त्ति भणिऊण।।226।।
णेऊण णिययगेहं णिरवज्जाणु तह उच्चठाणम्मि।
ठविऊण तओ चलणाण धोवणं होइ कायव्वं।।227।।

पाओदयं पवित्तं सिरम्मि काऊण अच्चणं कुज्जा।
गंधक्ख्य-कुसुम-णेवज्ज-दीव-धूवेहिं य फलेहिं।।228।।
पुप्फंजलिं खिवित्ता पयपुरओ वंदणं तओ कुज्जा।
चइऊण अट्ट-रुद्दे मणसुद्धी होइ कायव्वा।।229।।
णिट्ठुर-कक्कस वयणाइवज्जणं तं वियाण वचिसुद्धि।
सव्वत्थ संपुडंगस्स होइ तह कायसुद्धी वि।।230।।

टव्वाटीका-
पत्तं- पात्र नैं।
णियघरदासे- आपणा घर कै द्वारै।
दट्ठूण- देखि करि।
ण्णत्थ- और अर्थ प्रयोजन।
वा विमग्गित्ता- समस्त ही तजि करि।
पडिगहणं कायव्वं- रिष कौ प्रतिग्रहण करणौं।
णमोत्थु- नमोस्तु स्वामी।
ठाहु त्ति- तिष्ठ तिष्ठ अैसा।
भणिऊण- संवद कहि करि गृहस्थ छै सो जती नैं पडिगाहै, अहार के वास्ते थांभै।

णेऊण- बहुरि ले जाय करि।
णिययगेहं- द्वार थकी आपणा मंदिर मैं।
णिरवज्जाणु- तथा पाछैं तिष्ठावै।
तह उच्चठाणम्मि- उच्चस्थानक विषै।
ठविऊण- तिष्ठाय करि।
तओ- तव।
चलणाण धोवणं होइ कायव्वं- चरण धोवै, ग्रहस्थ नैं मुनि का चरणों कौ धोयवौ होइ छै करतव्य।

पाओदयं पवित्तं- पाछैं मुनि कौ चरणोदक जो पवित्र।
सिरम्मि- सो सीस विषै।
काऊण- चढावै।
अच्चणं कुज्जा- अर अर्चन करै।
गंधक्ख्य-कुसुम- गंध, अक्षत, पुष्प।
णेवज्ज-दीव-धूवेहिं- नैवेद्य, दीप, धूप।
य फलेहिं- फलां करि पूजै।

पुप्फंजलिं खिवित्ता- पूजा कीयां पाछै, पुष्पांजली चढाय करि।
पयपुरओ वंदणं तओ कुज्जा- चरणां कै आगैं नीचौ होय करि, वंदना करै पंचांग।
चइऊण अट्ट-रुद्दे- अर तजि करि आरति, रौद्र ध्यान।
मणसुद्धी होइ कायव्वा- धर्मध्यान रूप मन कौ करिवौ सो मन श्रुद्ध कहजै, सो होइ छै दान का करणहारानैं करतव्य।

णिट्ठुर- अर प्रीति तोडा वचन।

कक्कस- अथवा कठोर वचन।

वयणा इवज्जणं- इत्यादि अजोग वचन।

तं वियाण वचिसुद्धं- त्यांकौ जो तजीवौ सो जाणों वचन की शुद्धि।

सव्वत्थ संपुडंगस्स- अर सर्व अंग संकुचित रहणौं विनै रूप।

होइ तह कायसुद्धी वि- सो काय शुद्धि होइ छै श्रावक विषै, ई भांति ए श्रावक की, अब अहार की शुद्ध कहै छै नौमी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पात्र को अपने घर के द्वार पर देख कर और समस्त अर्थ प्रयोजन को तज कर मुनि को हे स्वामी नमोस्तु! नमोस्तु! तिष्ठ, तिष्ठ कहकर आहार के लिए पड़गाहें।। 226।।

पुनः अपने घर ले जाकर, निर्दोष उच्च स्थान पर बिठाकर, पश्चात् उनके चरण धोने चाहिये।। 227।।

पवित्र चरणोदक को सिर से लगाकर फिर गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से पूजन करना चाहिये।। 228।।

पूजा करने के पश्चात् पुष्पांजलि चढ़ाकर झुककर पंचांग वंदना करें तथा आर्त्त और रौद्र ध्यान को तजकर मन शुद्धि करनी चाहिये।। 229।।

निष्ठुर, कर्कश वचनों के त्याग करने को वचन शुद्धि जानना चाहिये। सभी ओर से संकुचित अंग वाले अर्थात् विनय रूप अंग वाले के काय शुद्धि होती है।। 230।।

***णह-जंतु-रोम-अट्ठी-कण-कुंढय-मंस-रुहिर-चम्माइं।**
कंद-फल-मूल-बीया छिण्ण मला चउद्दसा होंति।।231।।

टव्वाटीका-

णह- नख।

जंतु- जीव।

रोम- रोम।

अट्ठी- हाड।

कण-कुंढय- मल मूत्र।

मंस- मांस।

रुहिर- रूधिर।

चम्माइं- चांम।

कंद-फल-मूल-बीया- कंद, मूल, अशुद्ध फल अर वीज।

छिण्ण मला चउद्दसा होंति- अर ढांक्यौ मल कहता असुध अहार अर असोधि सौं करयौ ए मल चौदा होय छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नख, जंतु, केश, हड्डी, मल, मूत्र, मांस, रुधिर, चर्म, कंद, फल, मूल, बीज और अशुद्ध आहार ये भोजन सम्बन्धी चौदह दोष होते हैं।

---

*यह गाथा वर्तमान वसुनंदि श्रावकाचार में नहीं है किन्तु पाण्डुलिपि में है

चोद्दसमलपरिसुद्धं जं दाणं सोहिऊण जइणाए।
संजयजणस्स दिज्जाइ सा णोया एसणासुद्धी।। 231।।

टव्वाटीका-

चोद्दसमलपरिसुद्ध- चौदह मल का संजोग से रहित पवित्र।
जं दाणं सोहिऊण जइणाए- जो अहार सो दयापूर्वक सोधि करि।
संजयजणस्स दिज्जाइ- संजमी जीवां नैं दीजै।
सा णोया एसणासुद्धी- सो जांणौं अहार की शुद्धि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चौदह मल दोषों से रहित, पवित्र, दयापूर्वक, यत्नपूर्वक शोधकर संयमीजनों को जो आहारदान दिया जाता है, वह एषणा-शुद्ध जानना चाहिये।

दाणसमयम्मि एवं सुत्तणुसारेण णव विहाणाणि।
भणियाणि मए एण्हिं दायव्वं वण्णइस्सामि।।232।।

टव्वाटीका-

दाणसमयम्मि- मुनि का अहारदान कै समै।
एवं- ई भांति।
सुत्तणुसारेण- सूत्र कै अनुसार।
णव विहाणाणि- नव प्रकार।
भणियाणि- कह्या।
मए एण्हिं- मैं विधान अब।
दायव्वं वण्णइस्सामि- देवा जोग्य जे वस्तु सो वरणस्यौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार उपासकाध्ययन सूत्र के अनुसार आहार दान के समय में आवश्यक नौ विधानों को मैंने कहा। अब देने योग्य वस्तु का वर्णन करूँगा।

या दान की विधि कही, संजम्यां नैं विनै करि देवाकी, अव-देवा जोग्य कांई, न देवा जोग्य कांई सो कहै छै।

दातव्य-वर्णन

आहारोसह-सत्थाभयाभेओ जं चउव्विहं दाणं।
तं वुज्जइ दायव्वं णिद्दिट्ठमुवासयज्झयणे।।233।।

टव्वाटीका-

आहारोसह- आहार, औषद।
सत्थाभयाभेओ जं- शास्त्र तथा अभैं दान यां भेदां करि उपज्यो।
चउव्विहं दाणं- च्यारि प्रकार दान।
तं वुज्जइ- सो कह्यो छै।

दायव्वं- देवां जोग्य।

णिद्दिट्ठ- जांणौं थे ई भांति।

मुवासयज्झयणे- उपासकाध्ययन नामा जो सातमौं अंग तिह विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

आहार, औषध, शस्त्र और अभय के भेद से जो चार प्रकार का दान है, वह देने योग्य अर्थात् दातव्य कहलाता है, ऐसा उपासकाध्ययन के सातवें अंग में कहा गया है।

असणं पाणं खाइयं साइयमिदि चउविहो वराहारो।
पुव्वुत्त-णव-विहाणेहिं तिविहपत्तस्स दायव्वो।।234।।

टव्वाटीका-

असणं- असन कहतां रसोई।

पाणं- पान कहतां दूध, जल इत्यादि।

खाइयं- खादि कहतां मेवा मिठाई।

साइयमिदि- स्वादि कहतां लवंग इत्यादि इह भांति।

चउविहो- च्यारि प्रकार का।

वराहारो- श्रेष्ठ अहार।

पुव्वुत्त-णव-विहाणेहिं- पूर्वक ही जे नव विधि त्यांकरि।

तिविहपत्तस्स दायव्वो- त्रिविध पात्र जे मुनि, श्रावक, अव्रत सम्यक द्रिष्टी त्यानैं देणौं।

भावार्थ- महाव्रती, अणुव्रती अर अव्रती यां त्रिविध पात्रां नैं तौ भक्ति करि देणौं यो पात्र दान कौ स्वरूप कह्यौ, अव अनुकंपा दान कौ स्वरूप कहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अशन अर्थात् रसोई अर्थात् भोजन, पान अर्थात् दूध, जल इत्यादि, खाद्य अर्थात् मेवा, मिठाई और स्वाद्य अर्थात् लौंग, सौंफ इत्यादि इस प्रकार यह चार प्रकार का श्रेष्ठ आहार पूर्वोक्त नवद्या भक्तिपूर्वक तीन प्रकार के पात्र अर्थात् मुनि, अणुव्रती श्रावक तथा अव्रती सम्यक्दृष्टि को भक्तिपूर्वक देना चाहिये।

आज के समय में सप्तव्यसन त्याग का महत्त्व?

1. मद्यपान- पुराने समय में सप्त व्यसन के सेवन को अत्यन्त अपमानजनक दृष्टि से देखा जाता था, अतः व्यक्ति यदि किसी भी व्यसन का सेवन करता था तो वह उसको छुपाकर करता था। मन में समाज का भय होता था, किन्तु आज के समय में व्यसन सेवन करना बुरा नहीं है। इसे सम्मान की बात न भी समझें, किन्तु इसे आधुनिकता एवं उच्च परिवार तो समझते ही हैं। आज के समय में मद्यपान ना करना आश्चर्य की बात है। लगभग 99 प्रतिशत लोग मद्यपान करते हैं और इसे सम्मान की बात समझते हैं। यह आधुनिकता का प्रतीक है। बड़े लोगों में उठना-बैठना है, अपने स्तर को उठाना है तो मद्यपान आवश्यक है अन्यथा आपको पिछड़ा हुआ तथा पुराने विचारों का समझा जायेगा। आज के समय में तो पुरुष क्या स्त्रियाँ भी काफी आधुनिक और प्रगतिशील हो गई हैं। वे भी किसी कार्य में पुरुषों से पीछे नहीं हैं। मद्यपान में हिंसा की तो बात ही छोड़ दीजिये, यह तो कोई सुनना ही नहीं चाहता, अपितु आज का मानव मद्यपान से जो भयानक स्थिति बन रही है उसे भी नज़रअंदाज कर अपने आप में मस्त रहना चाहते हैं। आज मद्यपान आम बात है। इसके बाद लोग नशे में ही गाड़ी चलाकर अपने घर तक जाते हैं, जिसमें उनकी अपनी तथा अन्य सैंकड़ों की जान खतरे में होती है। नशे के पश्चात् यदि कोई हमारे साथ गलत व्यवहार करे तो हम इस अवस्था में नहीं होते कि उसका प्रतिकार कर स्वयं की रक्षा कर सकें। माता-

पिता पार्टियों में व्यस्त हैं, घर में बच्चे क्या कर रहे हैं या उनके साथ क्या हो रहा है इसका उन्हें पता ही नहीं। हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कार पता नहीं कहाँ पीछे छूट गए हैं और हम बहुत दूर निकल गये हैं। मद्यपान से मरकर नर्क जब मिलेगा तब मिलेगा किन्तु आज कितने घर इससे उजड़ जाते हैं और बर्बाद होकर लोग इसी जन्म में जीवित रहकर ही नर्क का साक्षात् अनुभव करते हैं।

मैं तो कहती हूँ इस कृत्रिम नशे को बन्द करो। एक बार नशा प्यार का, सफलता का, अपनेपन का, सेवा का करके तो देखो। इस नशे का भी अलग ही आनन्द है। व्यसन सेवन हमारी सभ्यता नहीं है। अपनी सभ्यता पर गर्व करो। अपनी संस्कृति की धरोहर अपनी पीढ़ियों को प्रदान करो। अपने कर्त्तव्यों को समझो और नई दिशा में कदम बढ़ाओ।

2. जुआ खेलना- हम सभी खेल खेलते हैं। सभी बच्चे खेलकर ही बड़े होते हैं। जुआ कोई खेल नहीं है अपितु खेलों में ही हार जीत में पैसे लगाना या शर्त में पैसे हारना या जीतना जुआ कहलाता है। प्राचीन समय में युधिष्ठर ने अपनी पत्नी को ही दाँव पर लगा दिया था और हार भी गये थे। आज भी मैं अखबरों में पढ़ती हूँ कि घर और पैसा तो क्या लोग अपनी पत्नी तथा बच्चों को भी दाँव पर लगा देते हैं। आज जुआ खेलना उच्च वर्ग की निशानी हो गया है। अब तरह-तरह के क्लब खुल गये हैं। उनमें कसीनों चलता है। वहाँ से लोग अपनी जमा-पूंजी बर्बाद करके बाहर निकलते हैं। यह जुआ खेलने का आधुनिक रूप है। यह मनोरंजन का साधन नहीं अपितु वंश नाश का कारण है अतः इसको अवश्य छोड़ना चाहिये। जुआ खेलने वाला मनुष्य कभी फल-फूल नहीं सकता अर्थात् आबाद नहीं हो सकता, उसकी बर्बादी निश्चित है।

3. मांस खाना- दो इन्द्रिय से लेकर संज्ञी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जितने भी औदारिक शरीर हैं, उन मृतक शरीरों को सेवन करना, मांस खाना कहा जाता है। यदि हम किसी मरे हुए जीव का शरीर देखें तो हम उसको छूना भी पसन्द नहीं करते तो खा कैसे सकते हैं? उस शरीर के अन्दर विभिन्न प्रकार के कीटाणु होते हैं, जो मांस खाने वाले को नुकसान देते हैं। मांस भक्षण करने से विभिन्न प्रकार के रोगों की संभावना बढ़ जाती है। सभी जीव जीना चाहते हैं। जब आप किसी जीव को मारते हो तो उसके शरीर में भय से अनेक रसायनों का स्राव होता है जो मानव के लिये अत्यन्त खतरनाक है। यदि मांस खाने वाला उन जीवों को मरते हुए देख ले तो वह कभी भी उनको खा नहीं सकता। मानव शरीर भी मांस खाने के लिए नहीं बनाया गया है। मानव के दाँत, आँते आदि शाकाहार के लिए ही बने हैं, मांसाहार के लिए नहीं।

4. वेश्या सेवन- कुछ स्त्रियां मज़बूरी में, कुछ शौक से देह व्यापार में संलग्न हो जाती है। इन स्त्रियों को पैसे के कारण यह कार्य करना होता है। अतः जो भी पुरुष वेश्या गमन करते हैं वे अपनी धन-दौलत को गँवा देते हैं। जब तक उसके पास पैसा है तब तक वह उससे बात करेगी, उसको खुश करेगी किन्तु धन समाप्त होते ही वह उसको पहचानेगी भी नहीं। वेश्यागमन से मानव की धन-दौलत तथा सम्मान नष्ट हो जाता है, इसके साथ-साथ अनेक प्रकार की भयंकर, कष्टकारी बीमारियां भी शरीर में उत्पन्न हो जाती हैं।

5. शिकार- मनोरंजन के लिए खेल-खेल में मूक एवं निरीह पशु-पक्षियों की जान लेना शिकार नाम का व्यसन कहलाता है। अपने आनन्द के लिए किसी की जान लेना कितना दुःखद है। प्राचीनकाल में आनन्द के लिए शिकार खेलते थे। आधुनिक युग में धन के लिए शिकार करते हैं। सैंकड़ों जानवरों को मारकर उनकी खाल बेचते हैं। हाथी दाँत के लिए हाथियों को मार देते हैं। आज का मानव हृदयरहित हो गया है। आज तो आतंकवादी मानवों

को ही मार देते हैं। यह निर्दयता का वीभत्स रूप है। जिस हृदय में दया नहीं करुणा नहीं, वह मनुष्य कहलाने के लायक नहीं।

6. चोरी- किसी व्यक्ति की रखी हुई, भूली हुई या गिरी हुई वस्तु को उसके मालिक की अनुमति के बिना ग्रहण करना चोरी कहलाता है। चोरी को पहले भी अपराध माना जाता था और आज भी चोरी को अपराध ही माना जाता है। चोरी ही मात्र एक ऐसा व्यसन है, जिसे अपराध की श्रेणी में रखा जाता है तथा जिसके साबित होने पर दण्ड की भी व्यवस्था है। चोरी करने वाला समाज में सामान्य लोगों के बीच सम्मानपूर्वक नहीं रह सकता। अन्य सभी व्यसन अपराध के समान होते हुए भी अपराध नहीं है ना ही उनकी कोई दण्ड व्यवस्था है। किसी का सामान चोरी से उठाना ही समाज में अपराध है, किन्तु टैक्स की चोरी, ब्लैकमनी आदि सभी शास्त्रों में चोरी ही कहे गये हैं। सामान को कम-ज्यादा तोलना, मिलावट करना, अच्छा बताकर खराब सामान देना, यह सब चोरी के अंतर्गत ही आता है। अतः इनका त्याग करना चाहिए।

7. परस्त्रीसेवन- अपनी विवाह की हुई स्त्री के अलावा अन्य सभी स्त्रियों को माता, बहन या पुत्र के समान समझना चाहिये। किसी पराई स्त्री के साथ की इच्छा करना, उसको देखना, उसको छूना, परस्त्री सेवन के अंतर्गत आता है। हमारे समाज में एक व्यवस्था बनाई गई है, जिसके अंतर्गत एक परिवार, समाज तथा देश में सभी पारस्परिक प्रेम तथा सद्भाव से रहते हैं। परिवार में रहने वाले सभी व्यक्ति प्रसन्नता से तथा बच्चे एवं स्त्रियां सुरक्षा से आनन्द से रहते हैं। सामाजिक रीति के साथ विवाह करने वाले स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी हैं तथा वे मर्यादापूर्वक आनन्द के साथ अपना जीवनयापन करते हैं। जहाँ कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन होता है वहाँ दुःख, क्लेश तथा विनाश का प्रारंभ हो जाता है। मन में विश्वास समाप्त हो जाता है। रिश्तों में अपनापन नहीं रह जाता। हमारे देश की संस्कृति में तो हर पराई स्त्री, उम्र के अनुसार, माँ, बहन तथा पुत्र है और हर पराया पुरुष पिता, भाई या पुत्र के समान हैं। रावण ने मात्र पराई स्त्री का दुर्भावना से हरण किया, जिससे उसके सम्पूर्ण कुल का विनाश हो गया। अतः परिगृहीत या अपरिगृहीत परस्त्रियों का मन, वचन, काय से त्याग करना चाहिये।

अइबुड्ढ-बाल-मूयंध-बहिर-देसंतरीय-रोडाणं।
जहजोग्गं दायव्वं करुणादाण त्ति भणिऊण।।235।।

टव्वाटीका-

अइबुड्ढ- अतिवूढौ।

बाल- वालक।

मूयंध- गूंगौ अंध।

बहिर- वहरौ।

देसंतरीय-रोडाणं- परदेसी अथवा दुखी।

जहजोग्गं- और कोई दरिद्री त्यांनैं जथाजोग्य।

दायव्वं- देणां आहार, औषध, वस्त्रादिक।

करुणादाण त्ति भणिऊण- करूणादान छै, यो इसौ जांणि करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अतिवृद्ध, बालक, मूक (गूँगा), अंध, वधिर (बहरा), परेदशी अथवा दुःखी और रोगी, दरिद्री जीवों को यथायोग्य आहार, औषध तथा वस्त्रादिक का दान देना करुणादान जानना चाहिये।

उववास-वाहि-परिसम-किलेस-परिपीडयं मुणेऊण।
पत्थं सरीरजोग्गं भेसजदाणं पि दायव्वं।।236।।

टव्वाटीका-

उववास- अर मुन्यां नैं उपवासां का करिवा करि।

वाहि- अथवा रोगादि व्याधि करि।

परिसम-किलेस- खेद तथा कलेस करि।

परिपीडयं- पीडित।

मुणेऊण- जांणि करि।

पत्थं सरीरजोग्गं- पथ्य देणौं त्यांह का सरीर जोग्य।

भेसजदाणं पि दायव्वं- अर औषधदान भी देणौं विधिपूर्वक।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उपवास, व्याधि, परिश्रम तथा क्लेश से पीड़ित जानकर शरीर के योग्य पथ्यरूप औषधदान भी देना चाहिये। अर्थात् मौसम और शरीर की अवस्था के अनुरूप औषधि देनी चाहिये।

आगम-सत्थाइ लिहाविऊण दिज्जं ति जं जहाजोग्गं।
तं जाण सत्थदाणं जिणवयणज्झावणं च तहा।।237।।

टव्वाटीका-

आगम-सत्थाइ लिहाविऊण- षट् आवस्यक कौ छै व्याख्यान ज्यांह मैं जो आचारांग सूत्रादि धर्म का शास्त्र लिखाय करि।

दिज्जं ति- दीजै।

जं जहाजोग्गं- जो जथाजोग्य।

तं जाण सत्थदाणं- सो जाणौं शास्त्रदान।

जिणवयणज्झावणं च तहा- तथा जिनवचन कौ पढायवौ सौ शास्त्रदान छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

षटावश्यक का व्याख्यान हो जिसमें ऐसे आचारांग, सूत्रदि आगम शास्त्र को लिखाकर यथायोग्य पात्रों को दिये जाते हैं, उसे शास्त्रदान जानना चाहिये तथा जिनवचनों को पढ़ाना भी शास्त्रदान है।

जं कीरइ परिरक्खा णिच्चं मरण-भयभीरुजीवाणं।
तं जाण अभयदाणं सिहामणिं सव्वदाणणं।।238।।

टव्वाटीका-

जं कीरइ परिरक्खा- जे विवेकी जीव करै पराई रक्षा।

णिच्चं- सदा।

मरण-भय- मरण का भय करि।

भीरु- भयवंत जे।

जीवाणं- जीव त्यांह की।

तं जाण अभयदाणं- सो जाणौं अभैदान।

सिहामणिं- किसौ छै अभैदान सिंहासन विषै।

सव्वदाणणं- तिष्टै छै सर्वदानों के।

भावार्थ- सर्वदानों का राजा अभैदान छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मरण के भय से भयवंत जीवों की जो नित्य रक्षा की जाती है, वह अभयदान जानना चाहिए। सर्वदानों में अभयदान शिखामणि रूप है अर्थात् सर्वदानों का राजा अभयदान है।

यो देवा जोग्य को स्वरूप कह्यौ आगैं फल कहै छै

दानफल-वर्णन

अण्णाणिणो वि जम्हा कज्जं ण कुणंति णिप्फलारंभं।
तम्हा दाणस्स फलं समासदो वण्णइस्सामि।।239।।

टव्वाटीका-

अण्णाणिणो वि जम्हा- अज्ञानी जीव छै तै भी जातैं।

कज्जं ण कुणंति- कारिज न करैं छैं।

णिप्फलारंभं- फलरहीत।

तम्हा- तातैं।

दाणस्स फलं- दान कौ फल।

समासदो- संक्षेपता थकी।

वण्णइस्सामि- वरणिस्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अज्ञानी जीव भी फलरहित कार्य को नहीं करते हैं, इसलिए दान के फल का संक्षेप में वर्णन करूँगा।

जह उत्तमम्मि छित्ते पइण्णमण्णं सुबहुफुलंहोइ।
तह दाणफलं णेयं दिण्णं तिविहस्स पत्तस्स।।240।।

टव्वाटीका-

जह उत्तमम्मि छित्ते- जैसैं उत्तम क्षेत्र विषै।

पइण्णमण्णं- वारयो अन्न।

सुबहुफुलं होइ- सो बहुत फल होइ घणौं फलै।

तह दाणफलं णेयं- तैसैं दान कौ फल जाणौं।

दिण्णं- दीयो थकौ।

तिविहस्स पत्तस्स- भक्ति करि त्रिविध पात्रां नैं बहुत फल करै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार उत्तम क्षेत्र (खेत) में बोया हुआ अन्न बहुत अधिक फल देता है, उसी प्रकार भक्तिपूर्वक त्रिविध पात्र को दिये गये दान का फल जानना चाहिये।

जह मज्झिम्मि खित्ते अप्पफलं होइ वावियं बीयं।
मज्झिमफलं विजाणह कुपत्तदिण्णं तहा दाणं।।241।।

टव्वाटीका-

जह मज्झिम्मि खित्ते- अर जैसे मध्य क्षेत्र विषै।

अप्पफलं होइ- अलप फल होइ।

वावियं बीयं- वारयो थकौ बीज।

मज्झिमफलं विजाणह- तैसैं मध्य फल जाणौं।

कुपत्तदिण्णं तहा दाणं- कुपात्रां नैं दीयौ दान।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार मध्यम क्षेत्र (खेत) में बोया गया बीज अल्प फल देता है, उसी प्रकार कुपात्र में दिये गये दान का मध्यम फल जानना चाहिये।

जह ऊसरम्मि छित्ते पइण्णबीयं ण किं पि रुहोइ।
फलवज्जियं वियाणह अपत्तदिण्णं तहा दाणं।।242।।

टव्वाटीका-

जह ऊसरम्मि छित्ते- अर जैसै ऊसर क्षेत्र विषै।

पइण्णबीयं- वारयो बीज।

ण किं पि रुहोइ- न कांई भी फल होइ योंही वीज वृथा जाय।

फलवज्जियं- फल वर्जित।

वियाणह- जाणौं।

अपत्तदिण्णं- अपात्र नैं दीयो।

तहा दाणं- तैसैं दान।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार ऊसर (बंजर) क्षेत्र (खेत) में बोया गया बीज कुछ भी फल नहीं देता है, व्यर्थ हो जाता है, उसी प्रकार अपात्र को दिया गया दान भी फलरहित जानना चाहिये।

कम्हि अपत्तविसेसे दिण्णं दाणं दुहावहं होइ।
जह विसहरस्स दिण्णं तिव्वविसं जायए खीरं।।243।।

टव्वाटीका-

कम्हि अपत्तविसेसे- अर कोइ एक अपात्र असी भी तरह का छै ज्यांहनै।

दिण्णं- भक्ति सौं दीयो।

दाणं- दान।

दुहावहं होइ- दुखकारी होय छै।

जह विसहरस्स दिण्णं- जैसे विषधर जो सर्प तिहनैं पायौ थकौ।

तिव्वविसं- तीव्र विष।

जायए- होइ छै।

खीरं- दूध।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

किसी अपात्रविशेष को दिया गया दान अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे विषधर सर्प को दिया गया दूध भी तीव्र विषरूप हो जाता है।

मेहाविऊ एसा सामण्णपरूवणा मए उत्ता।
इणिंह पभणामि फलं समासओ मंदबुद्धीणं।।244।।

टव्वाटीका-

मेहाविऊ एसा- जे बुद्धिवंत पुरिष छैं त्यानैं संक्षेप मात्र।

सामण्णपरूवणा- सामान्य प्ररूपण ई भांति।

मए- मैं।

उत्ता- कही।

इणिंह- अब।

पभणामि- कहौं छौं।

फलं समासओ- फल संक्षेप थकी दान का।

मंदबुद्धीणं- मंद बुद्धि जीवां का संदेह निवारिवा कै अर्थ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो बुद्धिमान पुरुष हैं उनके लिए संक्षेप मात्र दान का सामान्य प्ररूपण किया है। अब मन्दबुद्धिजनों के संदेह निवारण के लिए संक्षेप में (किन्तु पहले की अपेक्षा विस्तार में) दान का फल कहता हूँ।

मिच्छादिट्ठी भद्दो दाणं जो देइ उत्तम पत्ते।
तस्स फलेणुववज्जइ सो उत्तमभोयभूमीसु।।245।।

टव्वाटीका-

मिच्छादिट्ठी भद्दो- जो जीव सम्यकरहित छै परंतु भद्रिक परिणामी छै, अर जैनी छै।

दाणं जो देइ- उत्तम कूल कौ छै सो दान जौ देइ अहारादिक।

उत्तम पत्ते- भक्ति करि महाउत्तम पात्र जे भावलिंगी मुनि त्यानैं।

तस्स फलेणु- तौ तिहि दान का फल करि।

ववज्जइ- उपजै।

सो उत्तम- सो उतकिष्ट।

भोयभूमीसु- भोग भूमि विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो सम्यक्त्व से रहित है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है किन्तु भद्र परिणामी अर्थात् मन्दकषायी है, वह पुरुष उत्तम पात्र अर्थात् मुनि को दान देता है, तो उसके फल से उत्कृष्ट या उत्तम भोगभूमियों में उत्पन्न होता है।

जो मज्झिमम्मि पत्तम्मि देइ दाणं खु वामदिट्ठी वि।
सो मज्झिमासु जीवो उप्पज्जइ भोयभूमीसु।।246।।

टव्वाटीका-

जो- अर जे पुरिष।

मज्झिमम्मि पत्तम्मि- मध्यपात्र जे सम्यक्त अर अणुव्रत संयुक्त चार भेद श्रावक त्यांनैं।

देइ दाणं- देइ दान भक्ति करि अहार, औषध, वस्त्र, अन्नादिक।

खु- निश्चै सेति।

वामदिट्ठी वि- सम्यक्त्व रहित थकौ भद्रिक परिणामी।

सो मज्झिमासु- सो मध्य भोगभूमि विषै।

जीवो- जीव।

उप्पज्जइ- उपजै।

भोयभूमीसु- भोगभूमि अढाइदीप मैं 30 छै, ज्यांमैं 10 उतकिष्ट छै, अर 10 मध्य छै, अर 10 जघन्य छै, सो मध्य पात्र कौ देवा वालौ मध्य भोगभूमि पावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो मिथ्यादृष्टि पुरुष मध्यम पात्र अर्थात् अणुव्रतधारी श्रावक को दान देता है, वह जीव मध्यम भोगभूमियों में उत्पन्न होता है।

विशेष- अढाइद्वीप में 30 भोगभूमि हैं, जिसमें 10 उत्कृष्ट भोगभूमि हैं, 10 मध्यम भोगभूमि हैं और 10 जघन्य भोगभूमि हैं।

जो पुण जहण्णपत्तम्मि देह दाणं तहाविहो वि णरो।
जायइ फलेण जहण्णसु भोयभूमीसु सो जीवो।।247।।

टव्वाटीका-

जो पुण- अर जो वहुरि।

जहण्णपत्तम्मि- जघन्य पात्र विषै।

देह- देइ भक्ति करि।

दाणं- दान, अहार, औषध, वस्त्र, शास्त्रादि।

तहाविहो वि णरो- अर आप सम्यक रहित छै।

जायइ- तौ उपजै।

फलेण- तीह दान का फल करि।

जहण्णसु- जघन्य जे।

भोयभूमीसु- भोगभूमि त्यां विषै।

सो जीवो- सो जीव एतौ त्रिविध पात्रां नैं भइ मिथ्याद्रिष्टी दान करै तिह का फल कह्या।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

और जो मिथ्यादृष्टि भी भक्तिपूर्वक जघन्य पात्र में दान देता है, वह जीव उस दान के फल से जघन्य भोगभूमियों में उत्पन्न होता है।

जायइ कुपत्तदाणेण वामदिट्ठी कुभोयभूमीसु।
अणुमोयणेण तिरिया वि उत्तट्ठाणं जहाजोग्गं।।248।।

टव्वाटीका-

जायइ- अर उपजै सम्यक रहित।

कुपत्तदाणेण- कुपात्र जो द्रव्यलिंगी मुनि तिह का दान करि।

वामदिट्ठी- मिथ्याद्रिष्टी भद्रपरिणामी।

कुभोयभूमीसु- कुभोगभूमि विषै।

अणुमोयणेण- अर पात्रदान की अनुमोदना करि पंचैंद्री।

तिरिया वि- तिरजंच भी।

उत्तट्ठाणं जहाजोग्गं- उत्तमभोगभूमि पावै जथाजोग्य।

भावार्थ- तिरजंच त्रिविध पात्रों का दान नैं देखि प्रसंसा करतौ थकौ जथाजोग त्रिविध भोगभूमि पावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मिथ्यादृष्टि जीव कुपात्र को दान देने से कुभोग भूमि में उत्पन्न होता है। पात्रदान की अनुमोदना करने से पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी यथायोग्य उपर्युक्त स्थानों को प्राप्त करते हैं, अर्थात् मिथ्यादृष्टि तिर्यंच उत्तम पात्रदान की अनुमोदना से उत्तम, मध्यम पात्रदान की अनुमोदना से मध्यम तथा जघन्य पात्र दान की अनुमोदना से जघन्य भोगभूमि को प्राप्त करता है। इसीप्रकार कुपात्र और अपात्र दान की अनुमोदना से वैसे ही फल की प्राप्ति होती है।

बद्धाउगा सुदिट्ठी अणुमोयणेण तिरिया वि।
णियमेणुववज्जंति य ते उत्तमभोगभूमीसु।।249।।

टव्वाटीका-

बद्धाउगा सुदिट्ठी- अर सम्यक उपजिवा पहली दान का फल करि भोग भूमि विषै बंध्यौ आयु अर पाछै उपज्यो सम्यक अैसा जे जीव सम्यक द्रिष्टी मनुष्य ते भी।

अणुमोयणेण तिरिया वि- अथवा तिरजंच पहली मिथ्याद्रिष्टी छा अर दान करि बांध्यो छै भोगभूमि विषै आयु अर पाछै उपज्यो सम्यक त्यानैं।

णियमे- निश्चै करि।

णुववज्जंति य- उपजैं।

ते उत्तमभोगभूमीसु- ते भी दस उत्तम भोग भूमि ज्यांह विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि अर्थात् जिसने मिथ्यात्व अवस्था में पहले मनुष्य आयु का बंध कर लिया तथा सम्यग्दर्शन बाद में उत्पन्न हुआ है, ऐसा मनुष्य पात्र दान के फल से तथा इसी प्रकार तिर्यंच पात्र दान की अनुमोदना करने से नियम से उत्तम भोगभूमियों में उत्पन्न होते हैं।

तत्थ वि दहप्पयारा कप्पदुमा दिंति उत्तमे भोए।
खेत्त सहावेण सया पुव्वज्जियपुण्णसहियाणं।।250।।

टव्वाटीका-

तत्थ वि- तहां भोगभूमि विषै।

दहप्पयारा- दस प्रकार का।

कप्पदुमा- कलप वृक्ष।

दिंति उत्तमे भोए- देंहि छैं उत्तम भोगांनैं।

खेत्त- क्षेत्र का।

सहावेण- स्वभाव करि।

सया- सदा।

पुव्वज्जियपुण्णसहियाणं- पूरवैं उपाज्या पुन्य कर्म त्यां संयुक्त जे जीव त्यांहनैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उन भोगभूमियों में दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं, जो पूर्व में उपार्जित पुण्य कर्म से संयुक्त जीवों को क्षेत्र-स्वभाव से सदा ही उत्तम भोगों को देते हैं।

सो कल्पवृक्ष के भेद कहै छै

मज्जंग-तूर-भूसण-जोइस-गिह-भायणंग-दीवंगा।
वत्थंग-भोयणंगा मालंगा सुरतरू दसहा।।251।।

टव्वाटीका-

मज्जंग- मद्यांग कह कामदीपन वस्तु का देणहारा अर।

तूर- तूरजात का वादित्र देणहारा अर।

भूसण- गहणा देणहारा भूषणांग जाति का अर।

जोइस- ज्योतिरांग जाति का जिहकी ज्योति करि चंद्रमा सूरज नजर न आवै।

गिह- अर गृहांग जाति का घर दे।

भायणंग- भाजनांग जाति का वासण दे अर।

दीवंगा- दीपांग जाति का प्रकास करै।

वत्थंग- वस्त्र जाति का वस्त्र दे।

भोयणंगा- भोजन जाति का भोजन दे।

मालंगा- सुगंध पुष्प तथा भांति भांति की सुगंध दे मालांग जाति का।

सुरतरू दसहा- दश प्रकार का कलपवृक्ष दस जाति का फल दे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मद्यांग कामदीपन वस्तु को देने वाला, तूर्यांग वाद्यों को देने वाला, भूषणांग आभूषणों को देने वाला, ज्योतिरंग ज्योति देने वाला, गृहांग घर देने वाला, भाजनांग बर्तन देने वाला, दीपांग प्रकाश देने वाला, वस्त्रांग वस्त्र देने वाला, भोजनांग भोजन देने वाला और मालांग मालाओं को देने वाले यह दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं।

अब दस जाति का कलपवृक्ष कौं विशेष वरणन करै छै

अइसरसमइसुगंधं दिट्ठं चि य जं जणेइ अहिलासं।
इंदिय-बलपुट्ठियरं मज्जंगा पाणयं दिंति।।252।।

टव्वाटीका-

अइसरसमइसुगंधं- प्रथम ही मदांग जाति का कलप तरु अतिरस कौ भरयौ अतिसुगंध।

दिट्ठं चि य- अर देख्यौ थकौ।

जं जणेइ- जो उपजावै।

अहिलासं- अभिलाष नैं।

इंदिय- अर इंद्रिया की।

बलपुट्ठियरं- बल पुष्टि कौ करणहारौ।

मज्जंगा पाणयं दिंति- पांन कहतां रस पीवा जोग्य मद्यांग जाति का कलपवृक्ष देछै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अतिसरस, अतिसुगंधित और जो देखने मात्र से ही अभिलाषा को उत्पन्न करता है, ऐसा इन्द्रिय-बल का पुष्टिकारक पीने योग्य पदार्थ मद्यांग जाति का कल्पवृक्ष देते हैं।

तय-वितय धणं सुसिरं वज्जं तूरंगपायवा दिंति।
वरमउड-कुंडलाइय-आभरणं भूसणदुमा वि।।253।।

टव्वाटीका-

तय-वितय- तंत कहतां तंतिका, वाजा, वीन इत्यादि अर वितत कहतां मठा, वाजा, मृदंगादि।

धणं- घण्टा कहतां कांसी का वाजा का लगियो।

सुसिरं- सुषिर कहतो फुंक का वाजा, तुनहि कर नालि वांस।

वज्जं- भांति भांति का वाजा।

तूरंगपायवा दिंति- वादित्रांग जाति का कलपवृक्ष देह छै।

वरमउड- अर श्रेष्ठ मुकट।

कुंडलाइय- कुंडलादिक अनेक प्रकार का।

आभरणं- आभूषण देंहि छैं।

भूसणदुमा वि- भूषण जाति का कलपवृक्ष।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तत अर्थात् तंति का बाजा बीन इत्यादि, बितत अर्थात् मृदंगादि, घन अर्थात् कांसे का घण्टा आदि सुषिर अर्थात् फूंक वाला बाजा जैसे तुरहि, बांसुरी आदि बाजों को तूर्यांग जाति के कल्पवृक्ष देते हैं। भूषणांग जाति के कल्पवृक्ष श्रेष्ठ मुकुट, कुंडलादि अनेक प्रकार के आभूषणों को देते हैं।

ससि-सूरपयासाओ अहियपयासं कुणंति जोइदुमा।
णाणाविहपासाए दिंति सया गिहदुमा दिव्वे।।254।।

टव्वाटीका-

ससि- अर चांद।

सूर- तथा सूर्य का।

पयासाओ- प्रकास थकी।

अहिय- अधिक।

पयासं- प्रकास नैं।

कुणंति जोइदुमा- करैं छैं जोतिरांग जाति का कलपवृक्ष।

णाणाविहपासाए- अर नाना प्रकार का प्रासाद कहतां मंदिरा त्यानैं।

दिंति सया- देह छैं सदा।

गिहदुमा दिव्वे- गृह जाति का कलपवृक्ष मनोज्ञ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ज्योतिरंग जाति के कल्पवृक्ष सूर्य और चन्द्र से भी अधिक प्रकाश करते हैं। गृहांग जाति के कल्पवृक्ष सदा नाना प्रकार के दिव्य प्रासादों (भवनों, घरों) को देते हैं।

कच्चोल-कलस-थालाइयाइं भायणादुमा पयच्छंति।
उज्जोयं दीवदुमा कुणंति गेहस्स मज्झम्मि।।255।।

टव्वाटीका-

कच्चोल- अर कचोला।

कलस- कलस।

थालाइयाइं- प्याल ईयादि जे वासण त्यानैं।

भायणादुमा पयच्छंति- भोजन जाति का कलपवृक्ष दे छैं।

उज्जोयं- अर प्रकास नैं।

दीवदुमा- दीपांग जाति का कलपवृक्ष।

कुणंति- करै छैं।

गेहस्स- घर कै।

मज्झम्मि- मध्य।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष वाटकी, कलश, थाली आदि भाजनों (बर्तनों) को देते हैं। दीपांग जाति के कल्पवृक्ष घर के मध्य को प्रकाशित करते हैं।

वर-पट्टठ्ठ-चीण-खोमाइयाइं वत्थाइं दिंति वत्थदुमा।
वर-चउविहमाहारं भोयणरुक्खा पयच्छंति।।256।।

टव्वाटीका-

वर-पट्ट- अर श्रेष्ठ पाटांवर।

चीण- तथा चीनी वस्त्र।

खोमाइयाइं- तथा पसमी वस्त्र इत्यादि।

वत्थाइं- अनेक प्रकार का वस्त्रां नैं।

दिंति- देह छैं।

वत्थदुमा- वस्त्र जाति का कलपवृक्ष।

वर-चउविहमाहारं- अर श्रेष्ठ च्यारि प्रकार का अहार नैं।

भोयणरुक्खा- भोजन जाति का कलपवृक्ष।

पयच्छंति- देंह छैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्ष श्रेष्ठ रेशमी, चीनी और कोशे आदि के वस्त्रों को देते हैं। भोजनांग जाति के कल्पवृक्ष श्रेष्ठ चार प्रकार के आहार को देते हैं।

वर बहुल परिमलामोयमोइयासामुहाउ मालाओ।
मालादुमा पयच्छति विविहिकुसुमेहिं रइयाओ।।257।।

टव्वाटीका-

वर- अर श्रेष्ठ।

बहुल- बहुत सुगंध।

परिमलामोय- तिहकी सुगंधता करि।

मोइयासामुहाउ- सुगंध हुवा छैं दसौं दिसारूप स्त्री का मुख।

मालाओ- अैसी सुगंध माला।

मालादुमा- माला जाति का कलपवृक्ष।

पयच्छति- देंह छै।

विविहिकुसुमेहिं- नाना प्रकार का जै सुगंध पुहप त्यांकी।

रइयाओ- रची महासुंदर महासुगंध।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मालांग जाति के कल्पवृक्ष नाना प्रकार के सुगंधित पुष्पों से बनी हुई और श्रेष्ठ, बहुत सुंदर सुगंधित दसो दिशा रूप स्त्री के मुखों को सुगंधित करने वाली मालाओं को देते हैं।

उक्किट्ठ भोयभूमीसु जे णरा उदय-सुज्ज-समतेया।

छधणुसहस्सुत्तुंगा हुंति तिपल्लाउगा सव्वे।।258।।

टव्वाटीका-

उक्किट्ठ- उतकिष्ट।

भोयभूमीसु- भोगभूमि विषै।

जे णरा- जे नर उपज्या छै।

उदय-सुज्ज-समतेया- ते उदय होता सूरज समान तेज नैं लीया छै।।

छधणुसहस्सुत्तुंगा- अर छह हजार धनुष कहता कोस तीन कौ उत्तंग छै अंग ज्यांहकौ।

हुंति तिपल्लाउगा सव्वे- अर हुवै छै उतकिष्ट भोगभूमि का उपज्या तीन पल्य का आऊष का धरणहारा सर्व ही।

भावार्थ- जैठैं अधिकवो छै आयुत छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उत्कृष्ट भोगभूमि में जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं, वे उदय होते हुए सूर्य के समान तेज वाले, छह हजार धनुष ऊँचे और तीन पल्य आयु वाले होते हैं।

देहस्सुच्चतं मज्झिमासु चत्तारि धणुसहस्साइं।

पल्लाणि दुण्णि आऊ पुण्णिंदुसमप्पहा पुरिसा।।259।।

टव्वाटीका-

देहस्सुच्चतं- अर देह की उचाई।

मज्झिमासु- मध्य भोगभूमि विषै।

चत्तारि- च्यारि।

धणुसहस्साइं- हजार धनुष कहतां दोय कोस की छै।

पल्लाणि- अर पल्य।

दुण्णि- दोय की।

आऊ- आयु छै।

पुण्णिंदुसमप्पहा- अर पूर्णमासी का चांद समान छै प्रभा ज्यांह की।

पुरिसा- अैसा छै पुरिष मध्य भोग भूमि का।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मध्य भोगभूमियों में देह की ऊँचाई चार हजार धनुष है अर्थात् दो कोस है, आयु दो पल्य की है और सभी पुरुष पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान प्रभा वाले होते हैं।

दोधणुसहस्सुत्तुंगा मणुया पल्लाउगा जहण्णासु।

उत्तत्तकणयवण्णा हवंति पुण्णाणुभावेण।।260।।

टव्वाटीका-

दोधणुसहस्सुत्तुंगा- अर दौय हजार ध्रुष कहतां ऐक कोस उंचौ छै अंग ज्याह कौ।

मणुया- अैसा मनुष्य।

पल्लाउगा- एक पल्य आयु का धारणहारा।

जहण्णासु- जघन्य भोगभूमि विषै जाणौं।

उत्तत्तकणयवण्णा- ताया सोनां समान छै वर्ण ज्यांह का।

हवंति- हौंहि छैं।

पुण्णाणुभावेण- पुन्य का प्रभाव करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

दो हजार धनुष ऊँचे अर्थात् एक कोस ऊँचे, एक पल्य आयु वाले और तपाये गये स्वर्ण के समान वर्ण वाले मनुष्य जघन्य भोगभूमियों में पुण्य के प्रभाव से होते हैं।

ए तीन प्रकार की भोगभूमि का स्वरूप कह्या आगै कुभोगभूमि कौ स्वरूप कहै छै

जे पुण कुभोयभूमीसु सक्कर-समसायमट्टियाहारा।
फल-पुप्फाहारा केई तत्थ पल्लाउगा सव्वे।।261।।

टव्वाटीका-

जे पुण कुभोयभूमीसु- बहुरि जे कुपात्र का दांन करि कुभोग भूमि विषै उपज्या जीव।

सक्कर-समसाय- ते मिश्री सारिखी।

मट्टियाहारा- कुभोग भूमि की धरती की माटी तीका अहारी छैं।

फल-पुप्फाहारा केई- अथवा अमृत सरीखा फल फूल त्यांका अहारी छै केई।

तत्थ पल्लाउगा सव्वे- तहां कुभोगभूमि विषै भी पल्य एक आयु का धारी छैं सर्व।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कुपात्र को दान देने से जो जीव कुभोगभूमियों में उत्पन्न होते हैं, उनमें से कुछ वहाँ पर स्वभावतः उत्पन्न शक्कर के समान मीठी मिट्टी का आहार करते हैं और कितने ही वृक्ष से उत्पन्न होने वाले अमृत के समान फल-फूल का आहार करते हैं और सभी जीव एक पल्य की आयु वाले होते हैं।

जायंति जुयल-जुयला उणवण्णदिणेहिं जोव्वणं तेहिं।
समचउरससंठाणा घरवजसरीरसंघयणा।।262।।
वावत्तरि कलसहिया चउसट्ठिगुणण्णिया तणुकसाया।
बत्तीसलक्खणधरा उज्जमसीला विणीया य।।263।।
णवमासाउगि सेसे गब्भं धरिऊण सूइ समयम्हि।
सुहमिञ्चुणा मरित्ता णियमा देवत्तु पावंति।।264।।

टव्वाटीका-

जायंति जुयल-जुयला- अर हौंहि छैं भोगभूमि उतकिष्ट, मध्य, जघन्य सर्व ही 30, त्यांह मैं जुगलरूप सारा।

उणवण्णदिणेहिं जोव्वणं- अरगुनचास दिनां मैं फूछै जोवन।

तेहिं- त्यांहकौ।

समचउरससंठाणा- अर भोगभूमियां सारा ही समचतुरश्र संस्थान का धरणहारा छै, माहासुदंर छैं।

घरवजसरीरसंघयणा- अर जुगलिया सारा ही स्त्री अथवा पुरिष वज्रवृषभनाराच संहनन का धारी छै।

बाहत्तरि कलसहिया- किसा छै जुगलिया नृत्यकला नैं आदि दे वहत्तरि कला त्यांकरि सहित छैं अनेक कला का धरणहारा छैं।

चउसट्ठिगुणण्णिया- अर चौंसठि गुणां करि मंडित छैं।

तणुकसाया- मंद कषाई छैं।

बत्तीसलक्खणधरा- बत्तीस लक्षणां का धारी छैं।

उज्जमसीला विणीया य- आठ पहर लीला, विलास, श्रंगार, भोग ही कौ छै उद्यम ज्यांह कै अर विनयवंत छैं।

णवमासाउगि सेसे- नव महीनां जव त्यांह का आयु मैं वाकी रहै तव।

गब्भं धरिऊण सूइ समयम्हि- गर्भ नैं धरैं भोगभूमि की स्त्री अर गर्भ पूरण करि प्रसूति के समै जुगल नैं जणौं।

सुहमिञ्चुणा मरित्ता- पाछैं तव ही शुभ मृत्यु करि मरैं स्त्री पुरिस लार ही सो मरि करि।

णियमा देवत्तु पावंति- निश्चै से तो भोगभूमि का पुरिष अर स्त्री मरि करि देवगति पावैं सगला ही, यो तौ मिथ्याद्रिष्टी दान कौ फल पावैं, सो कह्यो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य 30 भोगभूमियों में सभी जीव युगल-युगलिया ही उत्पन्न होते हैं और वे उनचास (49) दिनों में युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। वे सभी समचतुरस्र संस्थान वाले, श्रेष्ठ, सुन्दर तथा वज्रवृषभनाराच संहनन शरीर वाले होते हैं।। 262।।

वे भोगभूमि के जीव पुरुष बहत्तर कला से युक्त तथा स्त्रियाँ चौंसठ गुणों से मंडित, मन्दकषायी, बत्तीस लक्षणों के धारक, उद्यमशील और विनयवंत होते हैं।। 263।।

नव मास आयु शेष रहने पर गर्भ को धारण करके प्रसूति समय में सुख मृत्यु से मरकर नियम से देवगति को प्राप्त होते हैं।। 264।।

जे पुण सम्माइट्ठी विरयाविरया वि तिविहपत्तस्स।
जायंति दाणफलओ कप्पेसु महड्ढिया देवा।।265।।

टव्वाटीका-

जे पुण सम्माइट्ठी- वहुरि जे सम्यक द्रिष्टी अव्रती।

विरयाविरया- अथवा अणुव्रती श्रावक ते।

वि तिविहपत्तस्स- जौ दान करैं तीन प्रकार का पात्र नैं भक्ति करि अथवा दुखित भुखित जीव नैं अनुकंपा करि।

जायंति- तौ हौंहि ते जीव।

दाणफलओ- दांन का फल थकी।

कप्पेसु- सुर्गलोक विषै।

महड्ढिया देवा- वडी रिद्धि का धारी देव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो अविरत सम्यग्दृष्टि और अणुव्रती श्रावक हैं वे तीनों प्रकार के पात्रों को भक्तिपूर्वक दान देने के फल से स्वर्गलोक में महान ऋद्धिधारी देव होते हैं।

अच्छरसयमज्झगया तत्थाणुहविऊण विविहसुरसोक्खं।
तत्तो चुया समाणा मंडलियाईसु जायंति।।266।।

टव्वाटीका-

अच्छर- जहां अपछरा।

सय- सैंकडा।

मज्झगया- त्यांकै मध्य प्राप्त हुवा।

तत्था- तहां सुर्गलोक मैं।

णुहविऊण- भोगकरि।

विविहसुरसोक्खं- नाना प्रकार का देव पदवी का सुख।

तत्तो चुया समाणा- पाछैं तैंठा सौं चया थका हरष सहित।

मंडलियाईसु जायंति- मंडलीक, राजा हौंहि अथवा चक्रवर्ति, वलिदेव, कामदेव हौंहि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

स्वर्गलोक में सैकड़ों अप्सराओं के मध्य रहकर विविध प्रकार के देवसुखों को भोगकर, आयु के अंत में वहाँ से च्युत होकर मांडलिक राजा आदि में उत्पन्न होते हैं।

तत्थ वि बहुप्पयारं मणुयसुहं भुंजिऊण णिव्विग्घं।
विगयभयइ वेरग्गकारणं किंचि दट्ठूण।।267।।
पडिबुद्धऊण चइऊण णिवसिरिं संजमं च घित्तूण।
उप्पाइऊणाणाणं केई गच्छंति णिव्वाणं।।268।।
अण्णे उ सुदेवत्तं सुमाणुसत्तं पुणो पुणो लहिऊण।
सत्तट्ठभवेहि तओ करंति कम्मक्खयं णियमा।।269।।

टव्वाटीका-

तत्थ वि- तहां भी।

बहुप्पयारं- वहुत प्रकार।

मणुय- मनुष्य भव का।

सुहं भुंजिऊण- सुखां नैं भोगि करि।

णिव्विग्घं- निरविघनपणौं।

विगयभयइ- निरभै हुवा थका।

वेरग्गकारणं- पाछैं वैराग्य कौ कारण।

किंचि- कौंयक।

दट्ठूण- देखि करि।

पडिबुद्धऊण- प्रतिबोध नैं पायकरि।

चइऊण- तजैं।

णिवसिरिं- राजलक्ष्मी नैं।

संजमं च- अर संजम जो चारित्र तिहनैं।

घित्तूण- गृहि करि।

उप्पाइऊण- अर उपजाय करि।

णाणं- केवलज्ञान नैं।

केई गच्छंति णिव्वाणं- केईक तौ प्राप्त हौंहि तिहि भव मोक्ष नैं।

अण्णे उ सुदेवत्तं- और जे केई तीहि भव मोक्ष न जाहि तैं सुंदर देव पद अर उत्तम।

सुमाणुसत्तं पुणो पुणो लहिऊण- मनुष्य भव को ईक वार पाय करि।

सत्तट्ठभवेहि- सात भव देवों का अर आठ भव मनुष्य का करि धरि करि।

तओ करंति- ते भी करैं।

कम्मक्खयं- कर्मों कौ क्षय।

णियमा- निश्चै सेती।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वहाँ भी बहुत प्रकार के मनुष्य भव के सुखों को निर्विघ्न भोगकर भयरहित होते हुए, कोई भी वैराग्य के कारण को देखकर।267।

प्रतिबोध को पाकर राज्यलक्ष्मी को छोड़कर संयम को ग्रहण कर केवलज्ञान को प्राप्त कर कितने ही निर्वाण को प्राप्त होते हैं।268।

और कितने ही जीव सुंदर देव पद को और उत्तम मनुष्य भव को बार-बार प्राप्त कर सात-आठ भव के पश्चात् नियम से कर्मों का क्षय करते हैं।269।

यो दांन कौ फल सम्यक द्रिष्टी जीवां नैं कह्यौ

एवं पत्तविसेसं दाणविहाणं फलं च णाऊण।
अतिहिस्स संविभागो कायव्वो देसविरएहिं।।270।।

टव्वाटीका-

एवं पत्तविसेसं- ई भांति पात्र का भेद।

दाणविहाणं- अर दांन की विधि।

फलं च णाऊण- बहुरि दान का फल जांणि करि।

अतिहिस्स- अतिथि कौ।

संविभागो- संविभाग।

कायव्वो देसविरएहिं- करणौं अणुव्रत का धारी जे श्रावक त्यांनैं।

भावार्थ- श्रावक नैं अतिथिसंविभाग अवस्य करतव्य छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार पात्र की विशेषता को, दान के विधान और दान के फल को जानकर देशव्रती श्रावक को अतिथिसंविभाग अर्थात् दान अवश्य करना चाहिए।

यो ग्यारमो व्रत कौ स्वरूप कह्यो आगै बारमौं व्रत कहै छै

सल्लेखना-वर्णन

धरिऊण वत्थमेत्तं परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं।
सगिहे जिणालए वा तिविहाहारस्स वोसरणं।।271।।
जं कुणइ गुरुपयासम्मि सम्ममालोइऊण तिविहेण।
सल्लेखणं चउत्थं सुत्ते सिक्खावयं भणियं।।272।।

टव्वाटीका-

धरिऊण- आपणौं आऊ छै नजीक जांणि धरि करि।

वत्थमेत्तं- वस्त्र मात्र परिग्रह।

परिग्गहं- और परिग्रह।

छंडिऊण- छोडि करि।

अवसेसं- बाकी समस्त।

सगिहे- अर आपणौं घरि।

जिणालए वा- अथवा जिनालय विषै।

तिविहाहारस्स वोसरणं- मन वचन काय करि आहार कौ त्याग।

जं कुणइ- जो करै।

गुरुपयासम्मि- गुर कौ निकट।

सम्ममालोइऊण- भली भांति उच्चारि करि।

तिविहेण- मन वचन काय सेती।

सल्लेखणं चउत्थं- सो अंतिसल्लेखणा चौथौ।

सुत्ते सिक्खावयं भणियं- सिक्षाव्रत सूत्र विषै कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वस्त्र मात्र परिग्रह को रखकर और शेष समस्त परिग्रह को छोड़कर अपने घर में अथवा जिनालय में रहकर पान के अलावा तीन प्रकार के आहार का त्याग।271।

जो श्रावक गुरु के समीप में मन, वचन, काय से भली प्रकार अपनी आलोचना करके पान को छोड़कर तीन प्रकार के आहार का त्याग करता है, उसे उपासकाध्यन सूत्र में सल्लेखना नाम का चौथा शिक्षाव्रत कहा गया है।272।

ए च्यारि सिक्षाव्रत कह्या अणुव्रत 5 गुणव्रत 3 सिक्षाव्रत 4 एवं व्रत 12

एवं वारसभेयं वयठाणं वण्णियं मए विइयं।
सामाइयं तइज्ज ठाणं संखेवओ वोच्छं।।273।।

टव्वाटीका-

एवं वारसभेयं- ई भांति वारा भेद।

वयठाणं- व्रत स्थानक का।

वण्णियं- वरणया।

मए- मैं।

विइयं- दुजी पडिमा मैं।

सामाइयं तइज्ज- अब सामायक तीजौ।

ठाणं- स्थानक।

संखेवओ वोच्छं- संक्षेप थकी कहुं छूं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार बारह भेद वाले दूसरे व्रत स्थान का मेरे द्वारा वर्णन किया गया। अब सामायिक नामक तीसरे स्थान को मैं संक्षेप में कहूँगा।

ए वारा व्रत कह्या, व्रत प्रतिमा कौ स्वरूप कह्या, अव तीजी सामायक पडिमा कहै छै

सामायिकप्रतिमा

होऊण सुई चेइयगिहम्मि सगिहे व चेइयाहिमुहो।
अण्णत्थ सुइपएसे पुव्वमुहो उत्तरमुहो वा।।274।।
जिणवयण-धम्म-चेइय-परमेट्ठि-जिणालयाण णिच्चपि।
जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तं खु।।275।।

टव्वाटीका-

होऊण- होय करि अंतर वाहिज।
सुई- पवित्र।
चेइयगिहम्मि- चैत्यालय विषै।
सगिहे व- अथवा आपणा घर विषै।
चेइयाहिमुहो- प्रतिमा जी के सनमुख।
अण्णत्थ सुइपएसे- तथा और भी शुचि स्थानक विषै।
पुव्वमुहो उत्तरमुहो वा- पूरव सनमुख अथवा उत्तर सनमुख हुवौ थकौ।

जिण- जिनेसुरदेव।
वयण- जिनवचन।
धम्म- जिनधर्म।
चेइय- जिन प्रतिमा।
परमेट्ठि- पंचपरमेष्ठी।
जिणालयाण- जिन मंदिर।
णिच्चपि- सदा यांकी।
जं वंदणं तियालं- जो वंदना तीनौं काल विषै।
कीरइ- करै।
सामाइयं तं खु- सामाइक सो जाणौं निश्चै सेती।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अन्दर, बाहर से पवित्र होकर चैत्यालय में अथवा अपने घर में प्रतिमा के सन्मुख होकर तथा अन्य पवित्र स्थान में पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर।। 274।।

जिनवाणी, जिनधर्म, जिनबिम्ब, पंचपरमेष्ठी और जिनमंदिर की जो नित्य त्रिकाल वंदना की जाती है, वह निश्चय से सामायिक नाम का तीसरा प्रतिमा स्थान है।। 275।।

काउस्सग्गम्मि विओ लाहालाहं च सत्तु-मित्तं च।
संजोय-विप्पजोयं तिण-कंचण चंदणं वासिं।।276।।

जो पस्सइ समभावं मणम्मि धरिऊण पंचणवयारं।
वर-अट्ठपाडिहेरेहिं संजुयं जिणसरूवं च।।277।।
सिद्धसरूवं झायइ अहवा झाणुत्तमं ससंवेयं।
खणमेक्कमविचलंगो उत्तमसामाइयं तस्स।।278।।

टव्वाटीका-

काउस्सग्गम्हि ठिओ- सरीर कौ ममत्व तज्यां कायोतसर्ग विषै तिष्ठौ संतौ।
लाहालाहं च- लाभ नैं बहुरि अलाभ नैं।
सत्तु-मित्तं च- शत्र नैं तथा मित्र नैं।
संजोय-विप्पजोयं- संजोग नैं अथवा वियोग नैं।
तिण-कंचण- तिण नैं अर कंचन नैं।
चंदणं वासि- चंदन नैं तथा सर्प नैं।

जो पस्सइ- जो देखै।
समभावं- समभाव।
मणम्मि- मन विषै।
धरिऊण- धरि करि।
पंचणवयारं- पंचनमोकार मंत्र नैं।
वर-अट्ठपाडिहेरेहिं- अथवा श्रेष्ठ जे अष्ट प्रातिहार्य त्यांकरि।
संजुयं जिणसरूवं च- संयुक्त जो जिनेश्वर देव कौ स्वरूप तिहनैं मन विषै धारि करि ध्यावै।

सिद्धसरूवं झायइ- तथा सिद्धस्वरूप नैं ध्यावै।
अहवा झाणुत्तमं- अथवा सर्वध्यानां मैं उत्तम ध्यान।
ससंवेयं- आपनैं आप ध्यायवौ स्वरूप कौ अनुभव करिवौ।
खणमेक्कमविचलंगो- क्षण एक निश्चल अंग होय करि।
उत्तमसामाइयं तस्स- उत्तम सामायक तिह कै होय।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो श्रावक कायोत्सर्ग में स्थित होकर लाभ को और अलाभ को, शत्रु को और मित्र को, इष्टवियोग को और अनिष्ट संयोग को, तृण को और कंचन को, चंदन को और सर्प को।। 276।।

जो समभाव से देखता है और मन में पंचनमस्कार मंत्र को धारण कर श्रेष्ठ अष्ट प्रातिहार्यों से संयुक्त जिनेश्वर देव के स्वरूप को और।। 277।।

सिद्ध भगवान के स्वरूप का ध्यान करता है अथवा संवेग-सहित अविचल अंग होकर एक क्षण को भी उत्तम ध्यान करता है, उसके उत्तम सामायिक होती है।। 278।।

एवं तइयं ठाणं भणियं सामाइयं समासेण।
पोसहविहिं चउत्थं ठाणं एत्तो पवक्खामि।।279।।

टव्वाटीका-

एवं- ई भांति।
तइयं- तीजौ।

ठाणं- स्थानक।

भणियं- कह्यो।

सामाइयं- सामाइक।

समासेण- संक्षेपता करि।

पोसहविहिं- अव पोसह की विधि।

चउत्थं- चौथौ।

ठाणं- स्थानक।

एत्तो पवक्खामि- अैंठा आगैं कहस्यौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार सामायिक नाम का तीसरा प्रतिमास्थान संक्षेप में कहा। अब इससे आगे प्रोषधविधि नाम के चौथे प्रतिमास्थान को कहूँगा।

समायक कौ भेद कह्यो अव पोसह कौ भेद कहै छै

प्रोषधप्रतिमा

उत्तम-मज्झ-जहण्णं तिविह पोसहविहाणमुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि चउस्सु पव्वेसु कायव्वं।।280।।

टव्वाटीका-

उत्तम-मज्झ-जहण्णं- उत्तम, मध्य अर जघन्य।

तिविह- तीन प्रकार।

पोसहविहाणमुद्दिट्ठं- पोसह कौ विधान कह्यौ।

सगसत्तीए- आपणी शक्ति प्रमाण।

मासम्मि- एक महीना विषै।

चउस्सु पव्वेसु- दोय अष्टमी दोय चतुरदसी ए च्यार परवी त्यांह विषै।

कायव्वं- करणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार का प्रोषध विधान कहा गया है। श्रावक को अपनी शक्ति के अनुसार एक मास के चारों पर्वों में करना चाहिए।

सत्तमि-तेरसि दिवसम्मि अतिहिजणभोयणावसाणम्मि।
भोत्तूण भुंजणिज्जं तत्थ वि काऊण मुहसुद्धं।।281।।
पक्खालिऊण वयणं कर-चरणे णियमिऊण तत्थेव।
पच्छा जिणिंदभवणं गंतूण जिणं णमंसित्ता।।282।।
गुरुपुरओ किरियकम्मं वंदणपुव्वं कमेण काऊण।
गुरुसक्खियमुववासं गहिऊण चउव्विहं विहिणा।।283।।
वायण-कहाणुपेहण-सिक्खावण-चिंतणोवओगेहिं।
णेऊण दिवससेसं अवराणिहयवंदणं किच्चा।।284।।

रयणि समयम्मि ठिच्चा काउस्सग्गेण णिययसत्तीए।
पडिलेहिऊण भूमिं अप्पपमाणेण संथारं।।285।।
दाऊण किंचि रत्तिं सइऊण जिणालए णियघरे वा।
अहवा सयलं रत्तिं काउस्सग्गेण णेऊण।।286।।
पच्चूसे उट्ठित्ता वंदणविहिणा जिणं णमंसित्ता।
तह दव्व-भावपुज्जं जिण-सुय-साहूण काऊण।।287।।
उत्तविहाणेण तहा दियहं रत्तिं पुणो वि गमिऊण।
पारणदिवसम्मि पुणो पूयं काऊण पुव्वं व।।288।।
गंतूण णिययगेहं अतिहिविभागं च तत्थ काऊण।
जो भुंजइ तस्स पुफडं पोसहविहि उत्तमं होई।।289।।

टव्वाटीका-
सत्तमि-तेरसि- सातैं कै तथा तेरसि।
दिवसम्मि- कै दिन।
अतिहिजणभोयणावसाणम्मि- अतिथिजनां का भोजन कै पाछैं।
भोत्तूण- आप भोजन करि।
भुंजणिज्जं- भोजन जोग्य वस्तु।
तत्थ वि काऊण मुहसुद्धं- अर तहां ही करिकैं मुख की शुद्ध।

पक्खालिऊण वयणं- पाछैं धोय करि मुख अर।
कर-चरणे- हाथ पग।
णियमिऊण तत्थेव- अर निश्चै करिपोसा संयुक्त उपवास कौ तहां ही।
पच्छा जिणिंदभवणं- पाछैं जिनेन्द्र कै मंदिर।
गंतूण- जाय करि।
जिणं णमंसित्ता- जिनेंद्र नैं नमस्कार करि।

गुरुपुरओ- पांछै गुरु कैं आगैं।
किरियकम्मं- क्रिया कर्म।
वंदणपुव्वं- नमस्कारपूर्वक।
कमेण काऊण- अनुक्रमैं करिकैं।
गुरुसक्खिय- गुरां नैं साक्षि दे।
मुववासं- उपवास।
गहिऊण- अंगीकार करै।
चउव्विहं विहिणा- विधिपूर्वक चतुर्विध आहार कौ त्याग करिकैं।

वायण- सो पोसा कै समै जिन वचन वांचै।
कहाणुपेहण- कथन करैं वार वार सूत्र का अर्थ विचारै।
सिक्खावण- औरां नैं सिखावै।

चिंतणोवओगेहिं- आप चितवै इत्यादिक शुभ चेष्टा थकी।
णेऊण दिवससेसं- पूरण करि वाकी कौ दिन धारणा कौ अर।
अवराणिहय- आंधण (अपरान्ह) कै समै।
वंदणं किच्चा- वंदना करि भगवंत की।।

रयणि समयम्मि- अर रात्रि कै समै।
ठिच्चा- तिष्टि करि।
काउस्सग्गेण- कायोत्सर्ग।
णिययसत्तीए- आपणी शक्ति प्रमांण।
पडिलेहिऊण भूमिं- नरम पूजणीं सौं भूमि पूंजि करि।
अप्पपमाणेण संथारं- आपणा शरीर प्रमांण संथारौ करै जौ शक्ति शरीर की होय तो सारी राति ही कायोत्सर्ग करै अर।

णेऊण किंचि रत्तिं- थोड़ी शक्ति शरीर की होय तौ धारणां की राति कितरेक विरियां ही कायोत्सर्ग राखि पाछैं।
सइऊण- शयन करै।
जिणालए- जिनालय विषै ही।
णियघरे वा- अथवा निज घर विषै पोसौ लीयो होय तौ तैंठै।
अहवा सयलं रत्तिं- या तौ अलप शक्ति वाला की बात कही अथवा सारी राति ही।
काउस्सग्गेण णेऊण- कायोत्सर्ग करि पूरी करै ऊभौ (उठा) ही रहै निद्रा न ले शरीर की घणी शक्ति होय तौ।

पच्चूसे उट्ठित्ता- पाछै प्रभात ही उपवास कै दिन उठि करि।
वंदणविहिणा- वंदना की विधि करि।
जिणं णमंसित्ता- भगवान जिनेश्वर नें नमस्कार करि।
तह- तथा।
दव्व-भावपुज्जं- द्रव्य भाव पूजा।
जिण- जिनेंश्वर की।
सुय- श्रुत की अर।
साहूण काऊण- साधु की करिकैं।

उत्तविहाणेण- सूत्र की आज्ञा का विधान करि।
तहा- त्यौंही।
दियहं रत्तिं- दिन अर राति।
पुणो वि गमिऊण- बहुरि उपवास को पूरण करिकैं।
पारणदिवसम्मि पुणो- पारणां कैं दिन बहुरि।
पूयं काऊण पुव्वं व- पूजा करि भगवान की पूर्ववत्।

गंतूण- अर जायकरि।
णिययगेहं- आपणौं घरि बहुरि।
अतिहिविभागं- अतिथि नैं विभाग।

च तत्थ काऊण- तहां करिकैं।

जो भुंजइ- जो आप भोजन करै।

तस्स फुडं- तिह पुरूष कै प्रगटै।

पोसहविहि उत्तमं होइ- पोसा की विधि उत्तम होय छै या उतकिष्ट पोसा की विधि कही आगै मध्य की विधि कहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सप्तमी और त्रयोदशी के दिन अतिथिजन के भोजन के अंत में स्वयं भोजन योग्य वस्तु का भोजन कर और वहीं पर मुख की शुद्धि करके।। 281।।

उसके बाद मुख को और हाथ-पैरों को धेकर वहाँ पर ही उपवास सम्बन्धी निश्चय करके पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के मंदिर में जाकर जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके।। 282।।

गुरु के सामने नमस्कारपूर्वक क्रम से कृतिकर्म को करके, गुरु की साक्षी से विधिपूर्वक चतुर्विध आहार के त्याग रूप उपवास को ग्रहण कर।। 283।।

जिनशस्त्र का वाचन धर्मकथा सुनें-सुनायें, अनुपेक्षा-चिंतन, पठन-पाठन इत्यादि शुभ चेष्टा से दिवस व्यतीत करके तथा अपरान्हिक वन्दना करके।। 284।।

रात्रि के समय अपनी शक्ति के अनुसार कायोत्सर्ग से स्थित होकर, भूमि का संशोधन करके और अपने शरीर प्रमाण बिस्तर लगाकर।। 285।।

रात्रि में कुछ समय तक जिनालय में अथवा अपने घर में सोकर अथवा सारी रात्रि कायोत्सर्ग में बिताकर।। 286।।

प्रातःकाल उठकर वंदना की विधि से जिनभगवान को नमस्कार कर तथा देव, शास्त्र और गुरु की द्रव्य अथवा भावपूजन करके।। 287।।

पूर्वोक्त विधान से उसी प्रकार सारा दिन और सारी रात को पुनः बिताकर पारणा के दिन में अर्थात् नवमी या पूर्णिमा के दिन पुनः पूर्व के समान पूजन करके।। 288।।

तत्पश्चात् अपने घर जाकर और वहाँ अतिथि को आहारदान देकर जो भोजन करता है उसके निश्चय से उत्तम प्रोषधविधि होती है।। 289।।

जह उक्कसं तह मज्झिमं पि पोसहविहाणमुद्दिट्ठं।
णवर विसेसो सलिलं छंडित्ता वज्जए सेसं।।290।।
मुणिऊण गुरुवकज्जं सावज्जविवज्जियं णियारंभं।
जइ कुणइ तं पि कुज्जा सेसं पुव्वं व णायव्वं।।291।।

टव्वाटीका-

जह उक्कसं- जैसे उतकिष्ट पोसह की विधि कही।

तह मज्झिमं- तैंसै मध्य।

पि पोसहविहाणमुद्दिट्ठं- पोसा की भी विधि सूत्र मैं कही छै।

णवर विसेसो- उतकिष्ट मैं अर मध्य मैं इतनौं ही विसेष।

सलिलं छंडित्ता वज्जए सेसं- जो उतकिष्ट पोसह वालौ तौ जल ही न पीवै अर मध्य पोसह वालौ एक वार जल पीवै वाकी तीनों आहार कौ त्याग करै।

मुणिऊण- जाणि करि कोई एक गृहस्थपणौं कौ।

गुरुवकज्जं- धर्म नैं मोटो कारिज जिह विनां नै सरै।

सावज्जविवज्जियं णियारंभं- और तजि घर कौ आरंभ अर आपणा के सब कौ सारो धंधौं छोडि करिऊ पाप थकी रहित कोई एक काम।

जइ कुणइ तं पि कुज्जा- कदाचित जो करै तौ करौ।

सेसं पुव्वं व णायव्वं- और सारी विधि पूरववत जांणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार उत्कृष्ट प्रोषध विधान कहा गया है, उसी प्रकार मध्यम प्रोषध विधान भी जानना चाहिए। उत्कृष्ट और मध्यम में केवल इतना ही विशेष है कि मध्य प्रोषध वाले श्रावक को केवल एक बार जल को छोड़कर शेष सभी आहार का त्याग करना चाहिये।290।

आवश्यक कर्मों को जानकर पाप रहित अपने घर के आरम्भ को करें तो करें, किन्तु शेष विधि पूर्व के समान ही जाननी चाहिये।291।

आयंबिलं णिव्वयडी एयट्ठाणं च एयभत्तं वा।
जं कीरइ तं णेयं जहण्णयं पोसहविहाणं।।292।।

टव्वाटीका-

आयंबिलं णिव्वयडी- अर अत्यंत हीण शक्ति होय उपवास न करि सकै तौ आमिल करै तथा नीकी करै।

एयट्ठाणं- अथवा एक ठाणौं करैं।

च एयभत्तं वा- बहुरि एक भक्त करै।

जं कीरइ- जौ ई भांति करै।

तं णेयं- सो जाणौं।

जहण्णयं पोसहविहाणं- जघन्य पोसह की विधि।

भावार्थ- भात अर पाणी ही लेवौ सौ तौ आमिल, अर एक द्रव्य अलूणौं कोई पाणी सौं संयुक्त लेणौं सो नीकी कहजे, अर एक ही ठाम आहार पाणी लेवौ सो एक ठांणौं कहजे, अर एक बार पहली ही जो अहार भाजन मैं आयो सो ही लेणौ फेर न लेणौं, जौ कोयों ए कडछी दालि में जीतो, एतौ ही आहार ले दुजां न लेणौं सो एक भक्ति कहजैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अत्यन्त हीन शक्ति के कारण उपवास नहीं कर सकता तो अष्टमी आदि पर्व के दिन आचाम्ल, निर्विकृति, एकस्थान अथवा एकभक्त जो करता है, उसे जघन्य प्रोषध विधान जानना चाहिये।

विशेषार्थ- चावल और पानी ही लें तो आचाम्ल और एक द्रव्य खाली पानी से लें तो निर्विकृति कहलाता है और एक ही स्थान पर आहार पानी लेना एकस्थान तथा एक बार पहली ही बार में जो आहार और जितना पात्र में आ जाये उतना ही लेना, दुबारा न लेना एकभक्त कहलाता है।

सिरण्हाणुब्वट्टण-गंध-मल्लकेसाइदेहसंकप्पं।
अण्णं पि रागहेउं विवज्जए पोसहदिणम्मि।।293।।

टव्वाटीका-

सिरण्हाणुब्वट्टण- सिर स्नान कहता सरवांग स्नान अर उवटणां तथा।

गंध-मल्ल- सुंगंध मालादिक।

केसाइ- अथवा केस मुंडनादि।

देहसंकप्पं- सरीर का संकलप।

अण्णं पि रागहेउं- अर और भी राग का कारण।

विवज्जए- तजै।

पोसहदिणम्मि- पोसा कै दिन।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

प्रोषध के दिन सिर से स्नान करना, उबटना करना, सुगंधित द्रव्य लगाना, माला पहनना, केश सज्जा करना, शरीर का संस्कार करना तथा अन्य भी राग के कारणों का त्याग करना चाहिए।

एवं चउत्थठाणं विवण्णियं पोसहं समासेण।
एत्तो कमेण सेसाणि सुणह संखेवओ वोच्छं।।294।।

टव्वाटीका-

एवं चउत्थठाणं- ई भांति चौथो स्थानक श्रावक कौ।

विवण्णियं- वरण्यौं।

पोसहं- पोसह विधान।

समासेण- संक्षेप ताकरि।

एत्तो कमेण सेसाणि- अव अैंठा आगैं अनुक्रम करि और वाकी का।

सुणह- सुणौं श्रावक का भेद।

संखेवओ वोच्छं- संक्षेप थकी कहुं छूं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार चौथा प्रोषध नाम के प्रतिमा स्थान का संक्षेप में वर्णन किया। अब इससे आगे अनुक्रम से शेष प्रतिमा स्थानों (श्रावक के भेद) को संक्षेप से कहूँगा, सो सुनो।

यो पोसह प्रतिमा कौ स्वरूप कह्यौ आगैं सचित्त त्याग कहै छै

सचित्तत्यागप्रतिमा

जं वज्जिज्जइ हरियं तय-पत्त-पवाल-कंद-फल-बीयं।
अप्पासुगं च सलिलं सचित्तणिव्वित्ति तं ठाणं।।295।।

टव्वाटीका-

जं वज्जिज्जइ- भाजी समस्त जो तजै।

हरियं तय- हरया वृक्ष की तृचा।

पत्त- तथा पत्र।

पवाल- अथवा कूपल।

कंद- अर कंद मूल समस्त।

फल-बीयं- बहुरि फल सारा अर बीज सारा।

अप्पासुगं च सलिलं- न भखै कदेही अर काचौं पाणी न पीवै, तीतौ पीवै तथा लवंग कसेलादिक का जोग करि प्राशुक जल हुवो होय सो पीवै।

सचित्तणिव्वित्ति- सचित्त कौ त्यागी।

तं ठाणं- सो पांचमी पडिमा कौ धारक श्रावक कहजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो समस्त हरी सब्जी, वृक्ष की छाल, पत्र, कोपल, कंद-मूल, फल, बीज, अप्रासुक जल अर्थात् कच्चा पानी का त्याग किया जाता है, वह सचित्त-निवृत्तिवाला पाँचवाँ प्रतिमा स्थान है।

यो सचित्त त्याग कौ स्वरूप कह्यौ आगैं छठी पडिमा कौ धारक
दिन विषै सील पालैं अर रात्रि विषै चौविहार करै

रात्रिभुक्तित्यागप्रतिमा

मण-वयण-काय-कय-कारियाणुमोएहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जइ गुणम्मि सो सावओ छट्ठो।296।।

टव्वाटीका-

मण- मन।

वयण- वचन।

काय- काय।

कय- कृत।

कारि- कारित।

याणुमोएहिं- अनुमोदना करि।

मेहुणं णवध- मैथुन तजै, स्त्री संग न करै, नव प्रकार करि सील पालै, मन वचन काय नै कृत कारित अनुमोद सौं गुणे भेद नव होय।

दिवसम्मि जो विवज्जइ- दिन विषै जो तजै कुसील नैं।

गुणम्मि- गुणिवा विषै।

सो सावओ छट्ठो- सो श्रावक हवै छै।

भावार्थ- सो श्रावक छठी पडिमा कौ धारक जांणौं, छठी रात्रि भोजन कौ त्याग, दिन मैथुन त्याग पडिमा कही आगैं सर्वथा सील कहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना इन नौ प्रकार से जो दिन में मैथुन का त्याग करता है अर्थात् स्त्री का संसर्ग नहीं करता है, वह कुशील का त्यागी, छठा गुणस्थानधारी श्रावक कहलाता है। इस प्रतिमा को धारण करने वाले श्रावक का रात्रि भोजन तथा दिवस में स्त्री त्याग का नियम कहा गया है। 296।

भावार्थ- छठी प्रतिमाधारी का रात्रि भोजन त्याग तथा दिवा मैथुन का त्याग कहा है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा

पुव्वुत्तणवविहाणं पि मेहुणं सव्वदो विवज्जंतो।
इत्थिकहाइणिवित्तो सत्तमगुणवंभयारीं सो।।297।।

टव्वाटीका-

पुव्वुत्तणवविहाणं पि- रखै जे नव विधि कही, मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोद करि मैथुन, जो स्त्री संग तिहनैं।

मेहुणं सव्वदो- सर्वथा दिन अर राति विषै।

विवज्जंतो- तजतौ थकौ।

इत्थिकहाइणिवित्तो- अर स्त्री की कथा नैं आदि दे जै सील का अतिचार।

सत्तमगुणवंभयारीं सो- त्यांनैं तजतौ संतौ सातमी पडिमा कौ धारक वृंभचारि कहै जै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पूर्व में बताये गये नौ प्रकार से अर्थात् मन, वचन, काय को कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करके पूर्ण रूप से सर्वथा (रात्रि एवं दिवस) स्त्री संसर्ग का त्याग एवं शील के अतिचार रूप स्त्री कथा आदि का भी त्याग करता है। वह सप्तम प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी श्रावक कहलाता है। 297।

यो ब्रह्मचर्य प्रतिमा कौ स्वरूप कह्यौ, आगै आठमी पडिमा विषै निरारंभ दसा कहै छै

आरम्भनिवृत्तप्रतिमा

जं किंचि गिहारंभं बहु थोवं वा सया विवज्जेइ।
आरंभणियत्तमई सो अट्ठमु सावओ भणिओ।।298।।

टव्वाटीका-

जं किंचि गिहारंभं- जो क्वौंयक गृहस्थपणां कौ आरंभ।

बहु थोवं वा सया विवज्जेइ- बहुत अथवा थौडो सो सदा ही तजै।

आरंभणियत्तमई- असि कहतां खडगादि मसि कहतां साही करि लिखवौ इत्यादिक। कृषि कहतां खेती इत्यादि, वाणिज्य कहतां व्यापार इत्यादि, शिलपि कहतां सुबर्णकार, सिलावटपणौं इत्यादि, पशुपालनादि समस्त ने आरंभ त्यांसौं निवृत छै बुद्ध जिहकी।

सो अट्ठमु सावओ भणिओ- सो आठमी पडिमा कौ धारक अष्टम श्रावक कहजै या आरंभत्याग नामा।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

गृहस्थ संबंधी जो कुछ भी ज्यादा या कम सभी कार्य हमेशा के लिये त्याग देता है। आरंभ के अंतर्गत असि अर्थात् तलवार का कार्य जैसे क्षत्रिय, योद्धा, मसि अर्थात् स्याही से लिखने वाले जैसे- मुनीम, लेखाकार आदि का कार्य, कृषि अर्थात् खेती, किसान आदि वाणिज्य अर्थात् व्यापार और शिल्प अर्थात् शिल्पकार, मूर्तिकार के समान किसी भी प्रकार से धनार्जन का त्याग करनेवाला श्रावक आठवीं प्रतिमा को धारण करने वाला कहलाता है। इस प्रकार यह श्रावक सम्पूर्ण आरम्भ का त्याग कर देता है। 298।

आठमी पडिमा कही आगैं परिग्रह त्याग नामा नवमी पडिमा कहै छै

परिग्रहत्यागप्रतिमा

मोत्तूण वत्थमेतं परिग्गहं जो विवज्जए सेसं।
तत्थ वि मुच्छं ण करेइ जाण सो सावओ णवमो।।299।।

टव्वाटीका-

मोत्तूण वत्थमेतं- वस्त्र मात्र राखे।

परिग्गहं जो विवज्जए सेसं- अर परिग्रह जो तजै वाकी समस्त।

तत्थ वि मुच्छं ण करेइ- अर वस्त्र मात्र जो सीतोसनादिक की वाधा कै वास्तै राखै छै त्यां विषै भी मूर्छा कहतां ममता न करै।

जाण सो सावओ णवमो- जांणौं सौं श्रावक नवमौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नवम प्रतिमाधारी श्रावक के विषय में कहते हैं कि वह वस्त्र मात्र परिग्रह को ग्रहण कर शेष समस्त परिग्रह का त्याग कर देता है। सर्दी, गर्मी से शरीर की रक्षा के लिए जिन वस्त्रों को वह ग्रहण करता है, उसमें भी ममत्व अर्थात् मोह नहीं रखता, उसको नवीं परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी श्रावक समझना चाहिए। 299।

नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा कौ स्वरूप कह्यौ आगैं दसमी कहै छै

अनुमतित्यागप्रतिमा

पुट्ठो वाऽपुट्ठो वा णियगेहि परेहिं च सगिहकज्जमि।
अणुमणणं जो ण कुणइ वियाण सो सावओ दसमो।।300।।

टव्वाटीका-

पुट्ठो वा णियगेहि- पूछौ थकौ भी घर कां।

परेहिं लोगेहि सगिहकज्जमि- अथवा और लोकां आपणां घर का कारिज कै वास्तै।

अणुमणणं- आज्ञा।

जो ण कुणइ- जो न करै संसार कार्य की।

वियाण- जाणौं सौ।

सो सावओ दसमो- श्रावक दसमौं।

भावार्थ- दसमी प्रतीमा कौ धारक धर्म कार्य विना और कार्य आज्ञा न दे पूछौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पूछे जाने पर या बिना पूछे भी, अपने घर के कार्यों या बाहर के कार्यों की अनुमति न तो अपने घर के सदस्यों को देता है, ना ही बाहर के व्यक्ति को किसी प्रकार की आज्ञा, अनुमति या अनुमोदना करता है, ऐसा श्रावक अनुमति त्याग नामक दसवीं प्रतिमा को धारण करने वाला जानना चाहिए। 300।

थकौ भी चुप होय रहै जिन सूत्र भणैं वीजौ वोल न वोलै वो दसमी प्रतिमा कौ भेद कह्यौ आगै ग्यारमी पडिमा कौ स्वरूप कहै छै।

उद्दिष्टत्यागप्रतिमा

एयारसम्मि ठाणे उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो।
वत्थेक्कधो पढमो कोवीणपरिग्गहो विइओ।।301।।

टव्वाटीका-

एयारसम्मि ठाणे- एकादसम स्थांनक विषै।

उक्किट्ठो सावओ- उतकिष्ट श्रावक कहजै।

हवे दुविहो- सो दोय प्रकार छै।
वत्थेक्कधरो पढमो- पहलौ भेद क्षुल्लक सो तौ एक वस्त्र नैं धरयां छै।
कोवीणपरिग्गहो विइओ- अर दूजौ भेद औलि सो कोपीन मात्र परिग्रह ही छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ग्यारहवीं प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक उत्कृष्ट कहा गया है। उसके दो प्रकार बताये गये हैं। प्रथम प्रकार का श्रावक क्षुल्लक कहलाता है- जो एक वस्त्र धारण करता है अर्थात् लंगोट और एक वस्त्र कंधे पर रखता है। द्वितीय प्रकार का श्रावक ऐलक कहलाता है, वह लंगोटी मात्र परिग्रह को ही स्वीकार करता है। 301।

धम्मिल्लाणं चयणंकरेइ कत्तरि छुरेण वा पढमो।
ठाणाइसु पडिलेहइम्मि उवयरणेण पयडप्पा।।302।।
भुंजेइ पाणिपत्तम्मि भायणे वा सइं समुवइट्ठो।
उववासं पुण णियमा चउव्विहं कुणइ पव्वेसु।।303।।
पक्खालिऊण पत्तं पविसइ चरियाइ पंगणे ठिच्चा।
भणिऊण धम्मलाहं जायइ भिक्खं सयं चेव।।304।।
सिग्घं लाहालाहे अदीणवयणो णियतिऊण तओ।
अण्णमि गिहे वच्चइ दरिसइ मोणेण कायं वा।।305।।
जइ अद्धवहे कोइ वि भणइ पत्थेइ भोयणं कुणह।
भोत्तूण णिययभिक्खं तस्सण्णं भुंजए सेसं।।306।।
अह ण भणइ तो भिक्खं भमेज्ज णियपोट्टपूरणपमाणं।
पच्छा एयम्मि गिहे जाएज्ज पासुगं सलिलं।।307।।
जं किं पि पडियभिक्खं भुंजिज्जो सोहिऊण जत्तेण।
पक्खालिऊण पत्तं गचिछज्जो गुरुसयासम्मि।।308।।
जइ एवं ण रएज्जो काउंरिसि गोहणम्मि चरियाए।
पविसत्ति एयभिक्खं पचित्तिणियमेण ता कुज्जा।।309।।
गंतूण गुरुसमीवं पच्चक्खाणं चउव्विहं विहिणा।
गहिऊण तओ सव्वं आलोचेज्जा पयत्तेण।।310।।

टव्वाटीका-

धम्मिल्लाणं- धिमल्ल केस सिर, डाढी, मूछां का।

चयणं- त्यांकौ मुंडन।
करेइ कत्तरि- करावैं कतरणी सौं।
छुरेण वा पढमो- अथवा पाछणां सौं पहलै कहता क्षुल्लक।
ठाणाइसु पडिलेहइम्मि- अर स्थानादिक नैं प्रतिलैखै कहता पूंजै तव तहां वैठै।
उवयरणेण पयडप्पा- उपकरण जो अत्यंत नरम पूंजणी तिह सौं दया विषै जतनवंत छै आत्मा तिहकौ।

भुंजेइ पाणिपत्तम्मि- अैलि श्रावक हुजै तिह तौ कर पात्र ही भोजन करै।
भायणे वा सइं- अर क्षुल्ल्क श्रावक पहलौ भेद वासण विषै आप।
समुवइट्ठो- भोजन करै वैठो थकौ आप।

उववासं पुण णियमा- उपवास बहुरि निश्चै।
चउव्विहं कुणइ पव्वेसु- च्यारि प्रकार करै परव्यां विषै।

पक्खालिऊण पत्तं- पक्षालि करि पात्र नैं प्रासुक जल सौं।
पविसइ चरियाइ- प्रवेस करै भोजन कै निमित्त।
पंगणे ठिच्चा- सों ग्रहस्थ कै अंगण विषै आय करि।
भणिऊण धम्मलाहं- भणि करि धर्म लाभ।
जायइ भिक्खं सयं चेव- अर जाचैं भोजन नैं अथवा गृहस्थ आप ही कहै स्वामी भोजन अैठै ही करौ।

सिग्घं लाहालाहे- सीघ्र ही लाभ होहु तथा अलाभ होहु।
अदीणवयणो- दीनता का वचन सौं रहित हुवो थकौ।
णियतिऊण तओ- पाछौ फिरै तैंठा थकी तव।
अण्णमि गिहे वच्चइ- औरैं घर विषै प्रवेस करै।
दरिसइ- दिखीवै आपनै।
मोणेण- मौन करि।
कायं वा- ई भांति करणी क्षुल्लक नैं विधि।

जइ अद्धवहे कोइ- जो पडगाहै कोई।
वि भणइ- अर कहै।
पत्थेइ- प्रार्थना करि।
भोयणं कुणह- स्वामी भोजन अैठै ही करौ तौ।
भोत्तूण णिययभिक्खं- धरि करि भोजन भिक्षा का पात्र मैं भरि करि।
तस्सण्णं भुंजए सेसं- अर तिह कौ अन्न अहार करै, आपणी जो भूख छै तिह सौं नून।

अह ण भणइ- अथवा न कहै कोई।
तो भिक्खं भमेज्ज- तौ भिक्षा कै अरथि भ्रमैं।
णियपोट्टपूरणपमाणं- आपणौं पेट की पूरणता होय तिह प्रमाण।
पच्छा एयम्मि गिहे- अर अहार पात्र मैं पूरण आय चुकै तैंठा पाछै एक घर विषै।
जाएज्ज पासुगं- जाचि करि।
सलिलं- प्रासुक पांणी।

जं किं पि- अर जो क्योंयक।
पडियभिक्खं- पात्र मैं पडि होय भिक्षा।
भुंजिज्जो सोहिऊण जत्तेण- सो भोजन करै भीटा चूंटा विनां, सोधि करि जुत्ति सौं।

भावार्थ- अन्य घरां सौं ले आय करि भोजन करै, सो घर भी दुर न छै, एक गुवाडी मै छै।

पक्खालिऊण पत्तं- पाछैं पखालि करि पात्र नैं।
गचिछज्जो गुरुसयासम्मि- अर जाय गुरां के समीप।

विस्तृत भावार्थ- क्षुल्लक श्रावक नैं एक घर पूरणता न होइ तौ और घरास्यौं भी अहार लाय, आहार की पूरणता करै। अर प्रासुक जल एक घर ही सौं ले, सो या वात कोइक देस काल का योग सौं कही छैं, अर कुल का

जोग सौं कही छै। जौ क्षुल्लक श्रावक च्यारयां ही वरण का होइ छै। अर अैलि श्रावक तीन ही कुल का होय, शूद्र कुल का न होय। अर अैलि एक ही घर कौ भोजन करै, करपात्र अहार ले, लोंच करै केसां कौ।

जइ एवं ण रएज्जो- जौ न पावै अहार का पुरिष।

काउंरिसिगेहणम्मि चरियाए- जो क्रिपण अथवा निरधन तिह का घर विषै आहार नैं।

पविसत्ति एयभिक्खं- गयो थकौ एक ही घर की भिक्षा कौ छैं नियम जिहकै अैसो जो क्षुल्लक।

पचित्तिणियमेण- तौ तिह दिन आहार कौ नियम ही।

ता कुज्जा- करै उपवास करै काहैतैं, जो ईकै तौ नियम एक घर कौ ही छै, आगैं जांणौ नहीं।

गंतूण- पाछैं जाय करि।

गुरुसमीवं- गुरां कै समीप।

पच्चक्खाणं- बहुरि प्रत्याख्यान।

चउव्विहं- च्यारि प्रकार आहार कौ।

विहिणा- विधिपूर्वक।

गहिऊण तओ- लेय करि तव।

सव्वं आलोचेज्जा- सर्व ही मन, वचन, काय करि कीध कर्म आलोचै।

पयत्तेण- जतन करिकैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पहला उत्कृष्ट श्रावक जो कि क्षुल्लक कहलाता है, वह कैंची, उस्तरे या ब्लेड वाले रेजर आदि से अपने सिर, दाढ़ी, मूंछ आदि को कटवाता है। जिस भी स्थान का प्रयोग करता है, उसे पहले पीछी से प्रयत्नपूर्वक मार्जन करता है, जिससे जीवों को विराधना न हो। 302।

प्रथम ऐलक श्रावक तो पाणिपात्र अर्थात् हाथ में ही आहार ग्रहण करे एवं क्षुल्लक श्रावक दिन में एक बार बैठकर एक पात्र वह चाहे प्लेट हो या कटोरा उसी में आहार ग्रहण करता है किन्तु चारों पर्वों अर्थात् दो अष्टमी एवं दो चतुर्दशी में नियम से चारों प्रकार के आहार का त्याग कर उपवास करता है। 303।

प्रासुक जल से अपने पात्र को धोकर आहार के लिए गृहस्थ के घर में आकर धर्म लाभ कहकर स्वयं ही भोजन की याचना करता है अथवा गृहस्थ स्वयं ही कहे कि स्वामी आप भोजन इधर ही ग्रहण करें। 304।

शीघ्र ही आहार प्राप्त न होने पर बिना दुःखी हुए, दीनतारहित होकर दूसरे घर में प्रवेश करके मौनपूर्वक अपने शरीर को दिखाता है। 305।

यदि रास्तें मे कोई श्रावक मिल जाता है और भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना करता है कि हे स्वामी! भोजन इधर ही ग्रहण करें, तो पहले पात्र में रखा हुआ भोजन करके तत्पश्चात् उसका दिया हुआ आहार ग्रहण करें और जितनी भूख है उससे कम ही भोजन ग्रहण करें, पूरा पेट भरकर नहीं। 306।

अथवा यदि कोई श्रावक आहार के लिए आग्रह न करे, तो आहार के लिए (उदर की पूर्ति के लिए) भ्रमण करें। अर्थात् अन्य श्रावकों के घर जाकर भिक्षा लें। तत्पश्चात जितनी भूख है उतना भोजन प्राप्त हो जाने पर भोजन को पात्र में लेकर एक श्रावक वे घर में जाकर प्रासुक जल की याचना करें। 307।

उसके पात्र में मांगी गई जो कुछ भी भिक्षा अर्थात् भोजन हो उसको प्रयत्नपूर्वक शोधन करके ग्रहण करे। उसके पश्चात् पात्र को धोकर गुरु के पास जायें। 308।

भावार्थ- यदि क्षुल्लक की एक घर से पूर्णता न हो तो वह अन्य घरों से भी भिक्षा ले सकता है।

विशेषार्थ- यह बात देश-काल के योग से कही गई है तथा कुल के योग से बताया है कि क्षुल्लक श्रावक तो चारों ही वर्णों का हो सकता है किन्तु ऐलक, श्रावक तीन कुल का ही हो सकता है। शूद्र कुल का नहीं। ऐलक श्रावक एक ही घर का भोजन करपात्र में करता है तथा केश-लोंच करता है।

यदि इस प्रकार आहार कराने वाला कोई न मिले या किसी को इस प्रकार भोजन करना अच्छा न लगे अथवा किसी का एक घर से ही भिक्षा का नियम हो ऐसा क्षुल्लक उस घर से भिक्षा प्राप्त न होने पर उस दिन आहार का नियम कर उपवास को ग्रहण करे। 309।

तत्पश्चात् प्रत्याख्यानपूर्वक चतुर्विध आहार का त्याग कर, गुरु के समीप जाकर प्रयत्नपूर्वक मन, वचन, काय से अपने कार्यों निन्दा, आलोचना करे। 310।

एमेव होइ बियओ णवरिविसेसो कुणिज्ज णियमेण।
लोचं धरिज्ज पिच्छं भुंजिज्जो पाणिपत्तम्मि।।311।।

टव्वाटीका-

एमेव होइ बियओ- या रीति जो वन कौ रहवौ उदंड अहार लैवौ क्षुल्लक की वताई सो ही वीजौ अैलि तिह की जाणौं।

णवरिविसेसो- परंतु ए तौ विसेष जो।

कुणिज्ज- करै।

णियमेण- निश्चै करि अैलि श्रावक।

लोचं- केसां कौ लोच।

ध्रिज्ज पिच्छं- अर मेलि करि अलग पीछी नैं।

भुंजिज्जो पाणिपत्तम्मि- भोजन करै कर पात्र।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ये जो प्रथम प्रकार की विधि क्षुल्लक की बताई गई है, इसी प्रकार की विधि दूसरे ऐलक श्रावक की जाननी चाहिए। दोनों में मात्र इतना ही अन्तर है कि ऐलक श्रावक को निश्चय से केशलोंच करना चाहिए, पीछी का प्रयोग करना चाहिये तथा आहार पाणिपात्र में ग्रहण करना चाहिये। 311।

दिणपडिम-वीरचरिया-तियालजोगेसु णत्थि अहियारो।
सिद्धांत-रहस्साण वि अज्झयणं देसविरयाणं।।312।।

टव्वाटीका-

दिणपडिम- कदाचि ग्यारमी पडिमा कौ धारक श्रावक रात्रि विषै प्रतिमा योग धरै तौ धरै परंतु दिन विषै प्रतिमा योग ध्रिवा कौ श्रावक नैं अधिकार नहीं।

वीरचरिया- अर वीरचर्या कहतां अकेला रहिबौ तथा वीरासन धरिवौ।

तियालजोगेसु- अर त्रिकाल योग कहतां सीत काल मैं नदी के तीर, वरषा मैं तरु तलि, ग्रीषम मैं गिर सिखर रहवौ।

णत्थि अहियारो- इत्यादि मुनि की क्रिया तिह विषै श्रावक नैं नहीं अधिकार।

सिद्धांत-रहस्साण वि- अर सिद्धांत का रहस्य जे द्रव्यानुजोग रूप आध्यात्म ग्रंथ समयसारादिक।

अज्झयणं- त्यांकौ अध्ययन।

देसविरयाणं- तिह विषै भी अधिकार नहीं श्रावक नैं।

भावार्थ- अध्यात्म का अध्ययन करि सुभ अर अशुभ दोऊ ही फीका लागै, सो जहां तक सर्वथा असुभ की निवृत्ति न होइ चुकै तहां तक शुभ सौं अरुचि न करणी, सो श्रावक कै सर्वथा असुभ मिटो न छै तिहसौं अध्यात्म कौ अधिकार नही छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देशविरति श्रावक को अर्थात् ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक को दिन में प्रतिमायोग को धारण नहीं करना चाहिये (रात्रि में कर सकता है), वीरचर्या अर्थात् अकेले मुनि के समान विचरण नहीं करना चाहिये। त्रिकालयोग अर्थात् शीतऋतु में नदी के तट पर, वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे तथा ग्रीष्म ऋतु में तपते पत्थरों पर ध्यान नहीं करना चाहिये। सिद्धान्त ग्रंथों समयसार आदि को तथा रहस्य ग्रन्थों जैसे प्रायश्चित् ग्रन्थों के अध्ययन का अधिकार भी क्षुल्लक, ऐलक को नहीं है। 312।

उद्दिट्ठपिंडविरओ दुवियप्पो सावओ समासेण।
एयारसम्मि ठाणे भणिओ सुत्ताणुसारेण।।313।।

टव्वाटीका-

उद्दिट्ठपिंड- उपदेस्या अहार कौ छै।

विरओ- त्याग जहां अैसा जो ग्यारमी पडिमा का धारक।

दुवियप्पो- सो दोय प्रकार का।

सावओ- होय छै श्रावक।

समासेण- संक्षेपता करि।

एयारसम्मि ठाणे- एकादसम स्थानक उतकिष्ठ श्रावक कौ तिह विषै।

भणिओ सुत्ताणुसारेण- कहवा सिद्धांत कै अनुसारि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार उद्दिष्ट आहार का त्याग करने वाले ऐलक, क्षुल्लक ग्यारह प्रतिमाधारी दोनों श्रावकों का श्रुत के अनुसार संक्षेप में वर्णन किया गया है। 313।

रात्रिभोजनदोष-वर्णन

एयारसेसु पढमं पि जदो णिसिभोयणं कुणंतस्स।
ठाणं ण ठाइ तम्हा णिसिभुत्तिं परिहरे णियमा।।314।।

टव्वाटीका-

एयारसेसु- ए एकादस श्रावक का स्थानक कह्या त्यां विषै।

पढमं पि- पहलौ भी स्थानक कहतां पहली पडिमा कौ धारकपणौं ही।

जदो- जातैं।

णिसिभोयणं कुणंतस्स- निसि विषै भोजन करणहारा कै न होई।

ठाणं ण ठाइ- कोई ही व्रत कौ स्थानक न होय।

तम्हा णिसिभुत्तिं- तातैं निसि भोजन।

परिहरे- तजैं।

णियमा- निश्चै सेती विवेकी जीव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

रात्रि भोजन त्याग का महत्त्व बताते हुए कहा गया है, कि यद्यपि छठी प्रतिमा के समय रात्रि भोजन त्याग का नियम है, किन्तु आचार्य कहते हैं कि यदि कोई रात्रि भोजन करता है तो उसके पहली प्रतिमा भी नहीं ठहरती, आगे तो बढ़ा ही नहीं जा सकता। अतः आत्मकल्याण के इच्छुक श्रावक को रात्रि भोजन का त्याग अवश्य करना चाहिये।

यो ग्यारमी प्रतिमा कौ भेद कह्यौ ए श्रावक का ग्यारा भेद कह्या आगैं निसि भोजन का दोष कहै छै।

चम्मट्ठि-कीड-उंदुर-भुयंग-केसाइ असणमज्झम्मि।
पडियं ण किं पि पस्सइ भुंजइ, सव्वं पि णिसिसमए।।315।।

टव्वाटीका-

चम्मट्ठि- चर्म हाड।

कीड- कीट।

उंदुर- उंदर।

भुयंग- भुजंग।

केसाइ- केसादि।

असणमज्झम्मि- ए समस्त भोजन कै मध्य।

पडियं- पडता थका।

ण किं पि पस्सइ- रात्रि विषै नहीं कांई भी देखै।

भुंजइ- भोजन करि जाय।

सव्वं पि णिसिसमए- सारौ ही निसि कै समै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

रात्रि के समय भोजन के मध्य गिरा हुआ चमड़ा, हड्डी, कीड़ा, पतंगा, सांप और बाल आदि कुछ भी दिखाई नहीं देता है। जो कोई भी रात्रि भोजन करता है, वह भोजन में पड़ी इन सभी अशुद्ध वस्तुओं को खा लेता है।

दीउज्जोये जइ कुणइ तह वि चउरिंदिया अपरिमाणा।
णिवडंति दिट्ठिरागेण मोहिया असणमज्झम्मि।।316।।

टव्वाटीका-

दीउज्जोये जइ- अर जौ कदाचि दीपक कै उजालै।

कुणइ- करै भोजन।

तह वि- तौ भी।

चउरिंदिया- चौइंद्री जीव।

अपरिमाणा- अप्रमांण कहतां घणां।

णिवडंति- आय पडैं।

दिट्ठिरागेण- आंख्यां का राग करि।

मोहिया- मोह्या थका।

असणमज्झम्मि- भोजन कै मध्य।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि दीपक जलाकर उसकी रोशनी में भोजन करते हैं, तब भी अनेकानेक चार इन्द्रिय जीव जैसे- मच्छर पतंगे आदि दृष्टि रोग के कारण दीपक की रोशनी से आकर्षित होकर भोजन में गिर जाते हैं। 316।

इयएरिसमाहारं भुंजंतो आदणासमिह लोए।
पाउणइ परभवम्मि चउगइ संसारदुक्खाइं।।317।।

टव्वाटीका-

इय- ई भांति।

एरिसमाहारं- इसा आहार।

भुंजंतो- भोजन करतौ संतौ।

आदणास- आपणां शरीर कौ नाना।

मिह लोए- इह लोक विषै।

पाउणइ- पावै।

परभवम्मि- अर परभव विषै।

चउगइ संसारदुक्खाइं- चतुरगति संसार का दुखां नैं पावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार का (जीव राशि सहित) भोजन करने वाला इस संसार में अपने शरीर को नष्ट करता है तथा अगले भव में चारों गतियों में भ्रमण रूप संसार के दुःखों को प्राप्त करता है। 317।

एवं बहुप्पयारं दोसं णिसिभोयणम्मि णाऊण।
तिविहेण राइभुत्ती परिहरियव्वा हवे तम्हा।।318।।

टव्वाटीका-

एवं बहुप्पयारं- ई भांति बहुत प्रकार का।

दोसं- दोष।

णिसिभोयणम्मि- निसि भोजन विषै।

णाऊण- जांणि करि।

तिविहेण- मन वचन काय करि।

राइभुत्ती- रात्रि भोजन।

परिहरियव्वा हवे तम्हा- तजिवौ छै तातैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार रात्रि भोजन में अनेक प्रकार के दोषों को जानकर तीन प्रकार से अर्थात् मन से, वचन से और काया से रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिये। 318।

यो रात्रि भोजन कौ दुषण कह्यो आगै विनय मूल धर्म कहै छै

श्रावक के अन्य कर्त्तव्य

विणओ विज्जाविच्चं कायकिलेसो य पुज्जणविहाणं।
सत्तीए जहजोग्गं कायव्वं देसविरएहिं।।319।।

टव्वाटीका-

विणओ- विनय।

विज्जाविच्चं- वैयावृत्य।

कायकिलेसो- काय कलेस।

य पुज्जणविहाणं- बहुरि पूजा की विधि।

सत्तीए जहजोग्गं- आपणी शक्ति प्रमाण जथाजोग्य।

कायव्वं- करणी।

देसविरएहिं- अणुव्रती नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अणुव्रती श्रावकों को अपनी शक्ति के अनुसार विनय, वैयावृत्य, कायक्लेश अर्थात् व्रत उपवासादि और पूजन विधान आदि करनी चाहिये। 319।

प्रथम ही विनै का लक्षण कहै छै

विनय का वर्णन

दंसण-णाण चरित्ते तव उवयारम्मि पंचहा विणओ।
पंचमगइगमणत्थं कायव्वो देसविरएण।।320।।

टव्वाटीका-

दंसण-णाण चरित्ते- दरसन ज्ञान चारित्र विषै।

तव- अर तप विषै।

उवयारम्मि- अर उपचार विषै उपचार कहतां दरसन, ज्ञान, चारित्र, तपनैं आचरिवा वाला जे पुरिष त्यां विषै।

पंचहा विणओ- ये पांच प्रकार विनय कह्यो।

पंचमगइगमणत्थं- सो पंचम गति जो मोक्ष तिह का गमन कै अर्थि।

कायव्वो- करणौं।

देसविरएण- देसव्रत गुणस्थानक का धारक नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देशव्रती श्रावकों को पंचम गति में गमन करने के लिए अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने के लिए पांच प्रकार की विनय, पहली दर्शन विनय, दूसरी ज्ञान विनय, तीसरी चारित्र विनय, चैथी तप विनय तथा पाँचवीं उपचार विनय करना चाहिये। उपचार विनय का अर्थ है- दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप का आचरण करने वाले पुरुष की विनय करना। 320।

सो पांच प्रकार विनय विषै प्रथम ही दर्शन विनै कहै छै

णिस्संकिय संवेगाइ जे गुणा वण्णिया मए पुव्वं।
तेसिमणुपालणं जं वियाण सो दंसणो विणओ।।321।।

टव्वाटीका-

णिस्संकिय- निसंकित नैं आदि दे।

संवेगाइ- अर संवेग नैं आदि दे।

जे गुणा वण्णिया- जे गुण वरणया।

मए पुव्वं- मैं पूरवैं।

तेसिमणुपालणं- त्यांह कौ पालणौं।

जं- जो।

वियाण- सो जांणौ।

सो दंसणो विणओ- दरसन विनै यो दरसन विनै कौ स्वरूप कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पूर्व में बताये गये निःशंकित और संवेग आदि गुणों का पालन करना दर्शन विनय जानना चाहिये। यह दर्शन विनय का स्वरूप कहा गया है। 321।

णाणे णाणुवयरणे य णाणवंतम्मि तह य भत्तीए।
जं पडियरणं कीरइ णिच्चं तं णाणविणओ हु।।322।।

टव्वाटीका-

णाणे- आगै ज्ञान विनै कहै छै ज्ञान विषै।

णाणु- अर ज्ञान को।

वयरणे- उपकरण जो शास्त्र त्यांह विषै।

य णाणवंतम्मि- अर ज्ञानवंत पुरिष जे आत्म जानि त्यांह विषै।

तह य भत्तीए- त्यौंही भक्ति करि।

जं पडियरणं कीरइ- जो सेवन करै।

णिच्चं तं णाणविणओ हु- सदा सो जाणौं ज्ञानविनै, प्रगट ज्ञानविनै कौ लक्षण कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ज्ञान में विनय रखना, ज्ञान के उपकरण अर्थात् जिनसे ज्ञान की प्राप्ति होती है उन शास्त्रों की विनय करना तथा ज्ञानी पुरुष में अर्थात् उसके आचरण में नित्य भक्ति के साथ जो अनुकूल व्यवहार किया जाता है, वह ज्ञान विनय कहलाता है। 322।

आगैं चारित्र विनै कौ स्वरूप कहै छै

पंचविहं चारित्तं अहियारा जे य वण्णिया तस्स।
जं तेसिं बहुमाणं वियाण चारित्तविणओ सो।।323।।

टव्वाटीका-

पंचविहं चारित्तं- पांच प्रकार चारित्र का।

अहियारा- अधिकार।

जे य वण्णिया तस्स- जे वरणया सामायक 1, छेदोपस्थापना 1, परिहारविसुद्ध 1, सूक्ष्मसांपराय 1, यथाख्यात ए 5 तिह जीव कै।

जं तेसिं बहुमाणं- जो त्यांहकौ बहुत ही छै आदर।

वियाण चारित्तविणओ सो- जाणौं सो चारित्र कौ विनय, चारित्र विनै कौ भेद यो कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चारित्र अर्थात् आचरण, जो इस पांच प्रकार के चारित्र अर्थात् सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात चारित्र और उसको धारण करने वाले की विनय करता है, उसे चारित्र विनय जानना चाहिये। 323।

आगैं तप का विनै कौ स्वरूप कहै छै

बालो यं बुड्ढो यं संकप्पं वज्जिऊण तवसीणं।
जं पणिवायं कीरइ तवविणयं तं वियाणीहि।।324।।

टव्वाटीका-

बालो यं- बालक छै यो।

बुड्ढो यं- अथवा वूढौ छै यो।

संकप्पं वज्जिऊण- इसौ संकलप तजि करि।

तवसीणं- तपस्वी पुरषां कौ।

जं पणिवायं कीरइ- जो नमस्कारादि विनय करणौं।

तवविणयं- तप कौ विनै।

तं वियाणीहि- तिहनैं जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यह बालक है, यह बुजुर्ग है, इस प्रकार के पक्षपात को छोड़कर जो श्रावक तपस्वी पुरुषों को सम्मानपूर्वक अभिवादन या नमस्कार आदि करते हैं, उसे तप विनय समझना चाहिये। 324।

यो तप का विनै कौ वरणन कीया आगै उपचारि विनै कहै छै

उवयारिओ वि विणओ मण-वचि-काएण होइ तिवियप्पो।
सो पुण दुविहो भणिओ पच्चक्ख-परोक्खभेएण।।325।।

टव्वाटीका-

उवयारिओ वि विणओ- उपचार विनय छै सो भी।

मण-वचि-काएण- मन वचन काय का भेद करि।

होइ तिवियप्पो- होइ छै तीन प्रकार।

सो पुण- बहुरि सो भी।

दुविहो- दोय प्रकार।

भणिओ- कह्यौ छै।

पच्चक्ख-परोक्खभेएण- प्रत्यक्ष अर परोक्ष का भेद करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उपचार विनय भी तीन प्रकार की कही गयी है- प्रथम मन उपचार विनय, द्वितीय वचन उपचार विनय और तृतीय काय उपचार विनय और ये तीनों प्रकार की उपचार विनय के भी दो भेद कहे गये हैं- प्रथम प्रत्यक्ष मन, प्रत्यक्ष वचन, प्रत्यक्ष काय उपचार विनय और द्वितीय परोक्ष मन, परोक्ष वचन, परोक्ष काय उपचार विनय।

जं दुप्परिणामाओ मणं णियत्ताविऊण सुहजोए।
ठाविज्जइ सो विणओ जिणेहि माणस्सिओ भणिओ।।326।।

टव्वाटीका-

जं दुप्परिणामाओ- जो खोटा परिणामां थकी।

मणं णियत्ताविऊण- मन नैं निव्रत्ताय करि।

सुहजोए- सुभ जोग विषै।

ठाविज्जइ- जो वरतै।

सो विणओ- सो विनय।

जिणेहि- जिनेश्वर देवां।

माणस्सिओ भणिओ- मन संबंधी कह्यो आगैं वचन कौ विनय कहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो अशुभ परिणामों को मन से हटाकर मन को शुभ मन, वचन, काय की क्रिया अर्थात् शुभ योग में लगाते हैं। उसे जिनेन्द्र भगवान ने मानसिक विनय कहा है। 326।

हिय-मिय पुज्जं सुत्ताणुवीचि अफरसमकक्कसं वयणं।
संजयिजणम्मि जं चाडुभासणं वाचिओ वीणओ।।327।।

टव्वाटीका-

हिय-मिय- हीत कौ वचन तथा मरजादा नैं लीयां।

पुज्जं- अर स्तुति रूप वचन।

सुत्ताणुवीचि- अर सूत्र कै अनुसार।

अफरसमकक्कसं- तथा अजोग्य ताकौ नही सपरस जिहमैं अर करकसता रहित।

वयणं- इसा वचन।

संजयिजणम्मि- संजमी जनां सौं।

जं- जो।

चाडुभासणं- विनै रूप कहणां।

वाचिओ- सो वचन कौ।

वीणओ- विनय जांणौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

हितकारी वचन, मर्यादायुक्त वचन, पूजनीय वचन, सूत्र (शास्त्र) के अनुसार वचन, हृदय को अच्छे प्रिय लगने वाले वचन, मधुर वचन बोलना और संयम धारण करने वाले पुरुषों के साथ विनय रूप सम्भाषण करना वचन विनय कहलाता है। 327।

आगैं काया कौ कहै छै।

किरियम्मब्भुट्ठाणं णवणंजलि आसणुच्चकखाणं।
एते पच्चुग्गमणं च गच्छमाणे अणुव्वजणं।।328।।
कायाणुरूवमद्दणकरणं कालाणुरूवपडियरणं।
संथारभणियकरणं उवयरणाणं च पडिलिहणं।।329।।
इच्चेवमाइ काइयविणओ रिसि-सावयाण कायव्वो।
जिणवयणमणुगणंतेण देसविरएण जहजोग्गं।।330।।

टव्वाटीका-

किरियम्मब्भुट्ठाणं- उट्ठि खडा होनौं वीनती करतां।

णवणंजलि- अर नमस्कार करणौं हाथ जोड़ना।

आसणुच्चकखाणं- ऊंचौ आसन आपंणा हाथां मेलनौं।

एते पञ्चुग्गमणं- अर आता थकां सनमुख जाय ल्यावणां।
च गच्छमाणे- बहुरि ते उठि चालैं।
अणुव्वजणं- तव पहुंचावा लार चालनौ।

कायाणुरूवमद्दणकरणं- मुन्यां का शरीर कै अनुसार जाव इत्यादि मर्दन करिवौ।
कालाणुरूवपडियरणं- अर जिसी सीरति देखणी तिसौ इलाज करणौं, सदा काल साधां की सेवा मैं रहणौं।
संथारभणियकरणं- त्रिण पराल इत्यादिक कौ संथरौ बिछाय देणौं।
उवयरणाणं च पडिलिहणं- अर धर्मोपकरण शौचोपकरण संयमोपकरण कौ प्रतिलेखिवौ।

इच्चेवमाइ- इहनैं आदि दे।
काइयविणओ- काय करि विनय।
रिसि- रिषि अर।
सावयाण कायव्वो- श्रावकां कौ करणौं।
जिणवयणमणुगणंतेण- जिन वचन की श्रद्धा कौ करणहारौ जो।
देसविरएण जहजोग्गं- श्रावक तिहनैं जथाजोग्य।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उठकर विनती करना, हाथ जोड़ कर नमस्कार करना, अपने हाथ से उच्चासन देना, अपनी तरफ उन्हें आते हुए देखकर उनके सन्मुख जाना और उनके उठकर चलने पर उनके पीछे-पीछे चलकर जाना। 328।

काया के अनुरूप अर्थात् मुनि के या श्रावक के शरीर के अनुसार उनकी सेवा या मालिश करना, जैसी शरीर की तासीर हो उसी के अनुसार उनका इलाज करना, प्रतिसमय साधु की सेवा में तत्पर रहना, तिनके और पराल आदि से उनके शयन की व्यवस्था बनाना और धर्म के उपकरण शास्त्र, शौच के उपकरण कमण्डल तथा संयम के उपकरण पीछी आदि का यत्नपूर्वक ध्यान रखना। 329।

मुनि और श्रावकों की इसप्रकार की यथायोग्य विनय जिनेन्द्र भगवान के वचनों का अनुकरण करने वाले देशविरती श्रावकों को करनी चाहिये। यह कायिक विनय कहलाती है। 330।

इय पच्चक्खो एसो भणिओ गुरुणा विणा वि आणाए।
अणुवट्ठिज्जए जं तं परोक्खविणओ त्ति विण्णओ।।331।।

टव्वाटीका-
इय पच्चक्खो- ई भांति प्रत्यक्ष।
एसो- इह।
भणिओ- कह्यो।
गुरुणा- गुरां।
विणा वि- विनय कौ स्वरूप।
आणाए- जिन आज्ञा प्रमाण।
अणुवट्ठिज्जए जं तं- अर जो परोक्षि गुरां की आग्या प्रमाण प्रवर्तिवौ।
परोक्खविणओ त्ति विण्णओ- सो परोक्ष विनय जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार मन, वचन, काय की प्रत्यक्ष विनय का स्वरूप कहा। जब गुरु प्रत्यक्ष रूप से विराजमान न हों तब भी उनकी आज्ञा को गुरु के समान मानकर, उसका मन, वचन, काय से पालन करना ही मन, वचन, काय की परोक्ष विनय समझनी चाहिये। 331।

विणएण ससंकुज्ज्लजसोहधवलियदियंतओ पुरिसो।
सव्वत्थ हवइ सुहओ तहेव आदिज्जवयणो य।।332।।

टव्वाटीका-

विणएण- विनय का फल करि।

ससंकुज्ज्ल- चंद्रमा समान उज्जल।

जसोह- जस का समूह करि।

धवलियदियंतओ पुरिसो- उज्जल करी छै दसौं दिसा जिह अैसौ पुरिष होय

भावार्थ- विनय करि दसौं दिसा मैं जस प्रगटै।

सव्वत्थ हवइ सुहओ- अर सर्वत्र सुखी होय।

तहेव- बहुरि त्यौंही।

आदिज्जवयणो य- आदित्य कहतां सूर्य सारिखौ वदन जिहकौ असौ होय महा तेजस्वी होय।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो पुरुष विनयपूर्वक मुनि तथा श्रावक की सेवा करता है, उसके फलस्वरूप उसका यश दसों दिशाओं में चन्द्रमा की उज्जवल चांदनी के समान फैलता है। वह सर्व प्रकार से सुखी होता है तथा उसका शरीर भी सूर्य की कांति के समान दैदीप्यमान हो जाता है। 332।

जे केइ वि उवएसा इह-परलोए सुहावहा संति।
विणएण गुरुजणाणं सव्वे पाउणइ ते पुरिसा।।333।।

टव्वाटीका-

जे केइ वि उवएसा- अर जे केई उपदेस।

इह-परलोए- इहलोक परलोक विषै।

सुहावहा संति- सुख का दायक छै ते।

विणएण गुरुजणाणं- विनय करि गुरजनां थकी।

सव्वे पाउणइ ते पुरिसा- सर्व ही पावै पुरिष।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वे सभी पुरुष गुरुजनों की विनयपूर्वक की गई सेवा से ही उस उपदेश को प्राप्त करते हैं, जो उन्हें इस संसार एवं परलोक में सुख को देने वाला है। 333।

देविंद-चक्कहर-मंडलीयरायाइजं सुहं लोए।
तं सव्वं विणयफलं णिव्वाणसुहं तहा चेव।।334।।

टव्वाटीका-

देविंद- देवतां का इंद्र।

चक्कहर- अर चक्रवरति।

मंडलीयरायाइ- तथा मंडलीक राजादि का।

जं- जे।

सुहं लोए- सुख इह लोक विषै छै।

तं सव्वं विणयफलं- ते सर्व विनय कौ फल जांणौं।

णिव्वाणसुहं तहा चेव- अर त्यौंही निरवांण का सुख भी विनय कौ ही फल जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देवताओं के इन्द्र, चक्रवर्ती, मंडलीक राजा आदि जो सांसारिक सुख हैं, वे सभी गुरुजनों की विनयपूर्वक की गई सेवा का फल है तथा मोक्ष का सुख भी विनयपूर्वक कही गई सेवा का ही फल है। 334।

सामण्णा वि य विज्जा ण विणयहीणस्स सिद्धमुवयाइ।
किं पुण णिव्वुइविज्जा विणयविहीणस्स सिज्झेइ।।335।।

टव्वाटीका-

सामण्णा वि य विज्जा- सामान्य कहतां तुछ मात्र भी विद्या सो।

ण विणयहीणस्स- विनयहीण पुरिष कै नही।

सिद्धमुवयाइ- सिद्ध नैं पामैं।

किं पुण- तौ वहुरि कांई।

णिव्वुइविज्जा- निर्वाण की विद्या।

विणयविहीणस्स- विनयहीण कै।

सिज्झेइ- सिद्ध होइ कदाचि न होइ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

विनयहीन मनुष्य सांसारिक तुच्छ विद्या को भी प्राप्त नहीं कर सकता, ऐसी स्थिति में संसार सागर से पार उतारने वाली मोक्ष लक्ष्मी की सिद्धि विनयहीन मनुष्य को कैसे हो सकती है? अर्थात् कभी नहीं हो सकती।

सत्तू वि मित्तभावं जम्हा उवयाइ विणयसीलस्स।
विणओ तिविहेण तओ कायव्वो देसविरएण।।336।।

टव्वाटीका-

सत्तू वि मित्तभावं- शत्रू छै सो भी मित्र भाव नैं।

जम्हा उवयाइ- जातैं प्राप्त होइ।

विणयसीलस्स- विनयवंत कै।

विणओ तिविहेण तओ- तातैं मन वचन काय त्रिविध करि विनय।

कायव्वो- करणौं।

देसविरएण- श्रावक नैं चतुर्विध संघ कौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

विनयवान पुरुष के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, अतः एक देश व्रतों का पालन करने वाले पुरुष को मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं की मन, वचन, काय से विनयपूर्वक सेवा करनी चाहिये। 336।

यो पंच प्रकार विनय कह्यो आगैं वैयावृत्य कौ स्वरूप कहै छै

वैयावृत्य का वर्णन

अइबाल-बुड्ढ-रोगाभिभूय-तणुकिलेससत्ताणं।
चाउव्वण्णे संघे जहजोग्गं तह मणुण्णाणं।।337।।
कर-चरण-पिट्ठ-सिरसाणं मद्दण-अब्भंग-सेवकिरियाहिं।
उव्वत्तण-परियत्तण-पसारणाकुंचणाईहिं।।338।।
पडिजग्गणेहिं तणुजोय-भत्त-पाणेहिं भेसजेहिं तहा।
उच्चराईण विकिंचणेहिं तणुधोवणेहिं।।339।।
संथारसोहणेहि य विज्जावच्चं सया पयत्तेण।
कायव्वं सत्तीए णिव्विदिगिच्छेण भावेण।।340।।

टव्वाटीका-

अइबाल- अतिवालक।

बुड्ढ- अति बूढा।

रोगाभिभूय- अर रोगां करि पीडित घणौं।

तणुकिलेससत्ताणं- सरीर कौ कलेस छै विद्यमान ज्याहंकै।

चाउव्वण्णे संघे- अैसा जे च्यारि प्रकार का संघ जति आर्या, श्रावक, श्राविका।

जहजोग्गं- त्यांह कौ जथा जोग्य।

तह मणुण्णाणं- वैयावृत करणौं तथा मनोज्ञ मुन्यां कौ वैयावृत्य करणौं।

कर- हाथ।

चरण- पग।

पिट्ठ- पीठि।

सिरसाणं- माथौ इत्यादि।

मद्दण- दावाणों मुन्यां का अर श्रावकां का श्रावक नैं।

अब्भंग-सेवकिरियाहिं- अर कदाचि मुनि कै रोगादि वाधा अधिक उपजी होय, अर रोगादिक कै सबव करि छठा गुण ठाणा था साधु, पांचमैं गुणठाणै आयो होय तो श्रावक आपणौं घरि ल्याय अनेक जतन करै, तेल तरह तरह का लगावै तथा अगनि सेक करै ईत्यादि क्रिया करि चतुरविध संघ कौ वैयावृत्य करणौं। साधु असाध्य होय गयौ होय तो श्रावक इसा जतन करि सचेत करै, आछा हुवा नवी दिक्षा ले साधु।

उव्वत्तण- ऊंचा करैं।

परियत्तण- नीचा करै।

पसारणा- पसारै।

कुंचणाईहिं- सकौडै हस्त पादादि इत्यादि श्रावक वैयावृत्य करै चतुर्विध संघ का।

पडिजग्गणेहिं- प्रतिग्रहण कहतां बहुत आदर करै।

तणुजोय- अर त्यांह का सरीर माफिक।

भत्त-पाणेहिं- आहार पाणी करि।

भेसजेहिं तहा- तथा औषधादिक करि जतन करै।

उच्चराईण- मल मूत्रादि संजम्या का आपनां खिआवै।

विकिंचणेहिं- और भी जो कांई सेवा होय सो करै।

तणुधोवणेहिं च- अर संजम्यां का सरीर नैं धोवे।

टव्वाटीका-

संथारसोहणेहि य- अर संथारा का सोधिवा करि।

विज्जावच्चं- वैयावृत्य।

सया पयत्तेण- सदा यत्न करि।

कायव्वं सत्तीए- करणौं आपणी शक्ति प्रमाण।

णिव्विदिगिच्छेण भावेण- सूग रहित भाव करि।

भावार्थ- संयम्यां की सेवा विषैं घिणा न करणी, जतन करणां तरह तरह करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चतुर्विध संघ अर्थात् मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका में यदि कोई छोटा बालक हो या बुर्जुग हो अथवा कोई रोगी हो, कोई कष्ट में हो, उन सभी का तथा जो मन की बात जानने वाले ऋषि-सिद्धि युक्त मुनि हों, उनकी यथायोग्य सेवा करना। 337।

हाथ, पैर, कमर, मस्तक आदि को दबाना और यदि मुनि या श्रावक के कदाचित् रोगादि की अधिक बाधा हो गई हो, तो श्रावक अनेक प्रकार से प्रयत्नपूर्वक तेल से मालिश करे, उनके अंग की सिकाई करे, उन्हें नहलाये-धुलाये, उनको उठाये-बिठाये, उनको ऊपर-नीचे करे, उनके शरीर के अंगों को फैलाये या सिकोड़े। इस प्रकार चतुर्विध संघ की वैय्यावृत्ति करे। 338।

बहुत आदरपूर्वक उनके (मुनि या श्रावक के) शरीर के योग्य आहार-पानी की व्यवस्था करे, रोग के अनुसार प्रयत्नपूर्वक औषधि दे, संयमी के मल-मूत्र को स्वयं साफ करे और शरीर को स्वयं धोये। 339।

ग्लानि रहित भाव से उनके शयन के बिछौने को साफ करे और कोमलता से यथाशक्ति सेवा अर्थात् वैय्यावृत्य करना चाहिये। 340।

णिस्संकिय-संवेगाइय जे गुणा वण्णिया मणो विसया।
ते होंति पायडा पुण विज्जावच्चं करंतस्स।।341।।
देह-तव-णियम-संजम-सील-समाही य अभयदाणं च।
गइ मइ बलं च दिण्णं विज्जावच्चं करंतेण।।342।।

टव्वाटीका-

णिस्संकिय-संवेगाइय- निस्संकितादिक अर संवेगादिक।

जे गुणा वण्णिया- जे गुण वरणया।

मणो विसया- माहा मनोहर।

ते होंति पायडा पुण- तैं हौंहि छैं बहुरि प्रगट सगला।

विज्जावच्चं करंतस्स- वैयावृत्य करनहारा कै।

देह- शरीर।

तव- तप।

णियम- नियम।

संजम- संजम।

सील- सील।

समाही य- समाधान।

अभयदाणं च- बहुरि अभैदान।

गइ- तथा सुभ गति।

मइ- सुभ मति।

बलं च- बलवीर्य।

दिण्णं- सगलौ दीयो संघ नै।

विज्जावच्चं करंतेण- वैयावृत्य के करणहारै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वैय्यावृत्य करने वाले मनुष्य के निःशंकित और संवेगादि सुन्दर गुण, जिनका पूर्व में वर्णन किया गया है, स्वयं ही प्रकट हो जाते हैं। 341।

वैय्यावृत्य करने वाले श्रावक के द्वारा शरीर, तप, नियम, संयम, शील समाधान और अभयदान, शुभ गति, शुभ मति, बल और वीर्य दिया जाता है। 342।

गुणपरिणामो जायइ जिणिंद-आणा य पालिया होइ।
जिणसमय-तिलयभूओ लब्भइ पत्तो वि गुणरासी।।343।।
भमइ जए जसकित्ती सज्जणसुइ-हियय-णयण-सुहजणणी।
अण्णेवि य होंति गुणा विज्जावच्चेण इहलोए।।344।।

टव्वाटीका-

गुणपरिणामो- गुण रूप परिणाम।

जायइ- उपजै तिहकै।

जिणिंद-आणा य- वहुरि जिनेन्द्र की आज्ञा।

पालिया होइ- पाली तिह ही।

जिणसमय- जिह जीव जिनसिद्धांत कौ।

तिलयभूओ- तिलक रूप।

लब्भइ- पायो।

पत्तो- पात्र।

वि गुणरासी- गुणां की रासि।

भमइ जए- भ्रमै ज्यांह की जगत विषै।

जसकित्ती- जस कीर्ति।

सज्जणसुइ- सज्जन पुरिषां का कान।

हियय- हिदय।

णयण- नेत्रां नैं।

सुहजणणी- सुख की उपजावनहारी।

अण्णेवि य- अर और भी।

होंति- हौंहि।

गुणा- बहुत गुण।

विज्जावच्चेण- वैयावृत्य करि।

इहलोए- इह लोक विषै भव्य जीवां कै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार की विनय से गुण रूप परिणाम अर्थात् नये सदगुण उत्पन्न तथा विकसित होते हैं, वह श्रावक जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पालन करने के परिणामस्वरूप अनेक गुणों को प्राप्त करता है तथा जिनसिद्धान्त के तिलकरूप पात्रता को प्राप्त करता है। 343।

सज्जन मनुष्यों के कान, हृदय तथा आँखों को सुख देने वाली यशकीर्ति संसार में व्याप्त होती है और भव्य पुरुषों को बहुत से गुण इस संसार में प्राप्त होते हैं। 344।

परलोए वि सरूवो चिराउसो रोय-सोय-परिहीणो।
बल-तेय-सत्तजुत्तो जायइ अखिलप्पयाओ वा।।345।।
जल्लोसहि-सव्वोसहि-अक्खीणमहाणसाइरिद्धीओ।
अणिमाइगुणा य तहा विज्जावच्चेण पाउणइ।।346।।
किं जंपिएण बहुणा तिलोहसंखोहकारयमहंतं।
तित्थयरणामपुण्णं विज्जावच्चेण अज्जेई।।347।।

टव्वाटीका-

परलोए वि सरूवो- अर परलोक विषै भी सुरूप होइ।

चिराउसो- दीर्घायु होय।

रोय- रोग।

सोय- सोग।

परिहीणो- करि रहित होय।

बल- वल।

तेय- तेज।

सत्तजुत्तो- पराक्रम करि युक्त होय।

जायइ अखिलप्पयाओ वा- अर अखंडित प्रताप होय।

जल्लोसहि- जलौषधी रिद्धि ज्यांह का पसेब कौ छींटौ लागां सारा रोग जाय।

सव्वोसहि- सर्वौषधी ऋद्धि ज्यांह का सरीर का सपरस की पौंन करि सारा रोग मिटि जाय।

अक्खीणमहाणसाइरिद्धीओ- अर अक्षीणमहानसी रिद्धि सो कहावै ज्यांका अहार लेवा करि तिह दिन अहार अटुट होय जाय।

अणिमाइगुणा य तहा- अर अणिमा ऋद्धि कहतां शरीर अणू प्रमाण नान्हौं करि ले इत्यादि जे ऋद्धि गुण।

विज्जावच्चेण पाउणइ- तनी वैयावृत्य करि पावै विवेकी जीव।

किं जंपिएण बहुणा- और घणौं कहवा करि कांई।

तिलोहसंखोहकारयमहंतं- तीन लोक नैं क्षोभ कौ करनहारौ महामोटौ।

तित्थयरणामपुण्णं- तीथंकर नामा पुण्य सो भी।

विज्जावच्चेण अज्जेई- वेयावृत्य करि उपारजै ज्ञानी जीव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वैय्यावृत्य के कारण जीव परलोक में भी सुन्दर रूप वाला, लम्बी आयु वाला, रोग-शोक से रहित, बल, तेज, शक्तिशाली और अखंड पराक्रमी होता है। 345।

जल्लौषधि ऋद्धि (इसमें ऋद्धिधारी मनुष्य के मूत्र की छींटों से ही रोगी का रोग दूर हो जाता है), सर्वोषधि ऋद्धि (इस ऋद्धिधारी मनुष्य के शरीर को छूने से ही सभी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं), अक्षीणमहानस ऋद्धि (इस ऋद्धि को धारण करने वाले के आहार लेने से उस चौके में उस दिन चक्रवर्ती की सेना भी भोजन कर ले तब भी भोजन समाप्त नहीं होता) और अणिमा ऋद्धि (इस ऋद्धि के फलस्वरूप वह अपने शरीर को अणु से भी छोटा कर लेता है) वैय्यावृत्य के फलस्वरूप जीव को प्राप्त होती है। 346।

अधिक कहने से क्या लाभ, तीनों लोकों को आह्लादित करनेवाला महान अतिशयकारी तीर्थंकर नाम का पुण्य भी वैय्यावृत्य करने वाले जीव को प्राप्त होता है। 347।

तरुणियण-णयण-मणहारि रूव-बल-तेय-सत्तसंपण्णो।
जाओ जायव विज्जावच्चं पुव्वं काऊण वसुदेवो।।348।।

टव्वाटीका-

तरुणियण-णयण-मणहारि- स्त्रियां का मन अर नेत्रां कौ हरणहारौ।

रूव-बल-तेय- रूप, वल, तेज।

सत्तसंपण्णो- पराक्रम करि संयुक्त।

जाओ जायव- हुवो जादव कुल विषै।

विज्जावच्चं पुव्वं काऊण वसुदेवो- वैयावृत्य का प्रसाद करि वसुदेव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यादव कुल में जन्म लेने वाला वसुदेव भी पूर्व जन्म में की गई वैय्यावृत्य के फलस्वरूप स्त्रियों के मन और नेत्रों को हरण करने वाला रूप, बल, तेज और पराक्रम से संयुक्त, वसुदेव नाम का कामदेव हुआ। 348।

वारवईए विज्जाविच्चं किच्चा असंजदेणावि।
तित्थयरणामपुण्णं समज्जियं वासुदेवेण।।349।।

टव्वाटीका-

वारवईए- मुन्यां का अर वारह व्रत का धारी जे श्रावक त्यांहका।

विज्जाविच्चं किच्चा- वैयावृत्य करि।

असंजदेणावि- यद्यपि श्रीकृष्ण असंजमी छा, अव्रती छा।

तित्थयरणामपुण्णं- तौ भी तीर्थंकर नाम पुण्य।

समज्जियं- उपारज्यौ।

वासुदेवेण- नवमैं वासुदेवैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

असंयमी वासुदेव कृष्ण ने मुनियों एवं बारह व्रत को धारण करने वाले श्रावकों की वैय्यावृत्य के फलस्वरूप तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृति को प्राप्त किया। 349।

एवं णाऊण फलं विज्जावच्चस्स परमभत्तीए।
णिच्छयजुत्तेण सया कायव्वं देसविरएण।।350।।

टव्वाटीका-

एवं णाऊण- ई भांति जाणी करि।

फलं- फल।

विज्जावच्चस्स- वैयावृत्य का।

परमभत्तीए- अर परम भक्ति करि।

णिच्छयजुत्तेण सया कायव्वं- निश्चय संयुक्त होय करणौं।

देसविरएण- श्रावक नैं वैयावृत्य जिनधर्म्या कौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार वैय्यावृत्य के फल को जानकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक, दृढ़तापूर्वक श्रावक को वैय्यावृत्य करना चाहिये। 350।

यो वैयावृत्य कौ निर्नय कीयो आगै कायकलेस कौ स्वरूप कहै छै

कायक्लेश का वर्णन

आयंबिल णिव्वियडो एयट्ठाणं छट्ठमाइखवणेहिं।
जं कीरइ तणुतावं कायकिलेसो मुणेयव्वो।।351।।

टव्वाटीका-

आयंबिल- आमिल करिवौ भात अर पाणी ही लेवौ।

णिव्वियडो- अर नीवी करिवौ एक द्रव्य अलूणौं पांणी मैं घालि लेवै ति नीवी कहियै।

एयट्ठाणं- एक ठांम अहार पाणी लैवौ सौ इक ठाणौं कहजे।

छट्ठमाइखवणेहिं- तथा उपवास करिवौ अथवा वेला, तिला इत्यादि मासोपवासादि कां करि।

जं कीरइ तणुतावं- जो करै शरीर नैं ताप।

कायकिलेसो- सो कायकलेस।

मुणेयव्वो- जाणणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

आचाम्ल अर्थात् चावल और जल लेना, निर्विकृति अर्थात् एक द्रव्य या एक अकेला अन्न जल में मिलाकर लेना, एकस्थान अर्थात् एक ही जगह पर भोजन एवं जल ग्रहण करना, चतुर्थभक्त अर्थात् उपवास, षष्ठभक्त अर्थात् बेला अष्टमभक्त अर्थात् तेला आदि उपवासों के द्वारा जो शरीर को तपाकर कृश करते हैं, उसे कायक्लेश जानना चाहिये । 351।

मोहाविणरा एएण चेव बुज्झंति बुद्धविहवेण।
ण य मंदबुद्धणो तेण किं पि वोच्छामि सविसेसं।।352।।

टव्वाटीका-

मोहाविणरा- मोह करि संयुक्त प्राणी।

एएण चेव- ए जगत का न कांई।

बुज्झंति- समुझैं।

बुद्धविहवेण-बुद्ध- बुद्ध का वल करि।

ण य मंदबुद्धणो- जीव मंदबुद्धी छैं।

तेण- तिह कारणि।

किं पि वोच्छामि- क्योंयक कहुं छूं।

सविसेसं- विसेष संयुक्त।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

बुद्धिमान मनुष्य तो अपनी बुद्धि के कौशल से थोड़े बताये गये इस कायक्लेश के रूप को समझेंगे किन्तु कमजोर बुद्धि वाले मनुष्यों को समझ में नहीं आयेगा। उन मंदबुद्धि मनुष्यों को समझाने के लिए कायक्लेश के विशेष स्वरूप को कहता हूँ। 352।

पंचमी व्रत का वर्णन

आसाढ कत्तिए फग्गुणे य सियपंचमीए गुरुमूले।
गहिऊण विहिं विहिणा पुव्वं काऊण जिणपुज्जा।।353।।
पडिमासमेक्कखमणेण जाव वासाणि पंच मासा य।
अविछिण्णा कायव्वा मुत्तिसुहं जायमाणेण।।354।।

टव्वाटीका-

आसाढ- असाठ।

कत्तिए- काती।

फग्गुणे य- अर फागुण ए तीन अठाई का महीनां सो।

सियपंचमीए- या तीन महीनां विषै सुकल पंचमी का उपवास की।

गुरुमूले- गुरु का चरणारविंदा।

गहिऊण- गृह करि।

विहिं विहिणा- विधि हर विधि सेती करिवौ।

पुव्वं काऊण जिणपुज्जा- पहली करिकैं भगवान की पूजा।

पडिमासमेक्कखमणेण- महीनां महीनां मैं एक उपवास शुक्ला पांचमी कौ पोसा संयुक्त करणौं।

जाव वासाणि- सो जौलग पांचक रस।

पंच मासा य- अर पांच महीनां वीतै तौलग।

अविछिण्णा- अखंड।

कायव्वा- करणौं शरीर जाय तौ भी न छोडणौं।

मुत्तिसुहं जायमाणेण- पांचमी गति जो मुक्ति तिहका जो अखंड अविनासी अतिंद्रिय सुख, त्यांकी प्रार्थना उर विषै धरि करि, जो शुक्ल पंचमी का व्रत का प्रसाद करि, पंचम गति जो निरवाण सो म्हारै होहु और संसार की झूठी माया म्हारै न चाहिजौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

आषाढ़, कार्तिक या फाल्गुन माह के शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन सर्वप्रथम जिनेन्द्रदेव का पूजन करके तत्पश्चात् गुरु के चरणारविंद को ग्रहण कर अर्थात् गुरु के सानिध्य में विधिपूर्वक उपवास को ग्रहण कर। 353।

मोक्ष सुख की इच्छा रखने वाले श्रावकों को हर महीने शुक्ल पक्ष की पंचमी को पाँच वर्ष, पाँच महीने तक लगातार उपवास करना चाहिये। 354।

अवसाणे पंच घडाविऊण पडिमाओ जिणवरिंदाणं।
तह पंच पोत्थयाणि य लिहाविऊणं ससत्तीए।।355।।
तेसिं पइट्ठयाले जं किं पि पइट्ठजोग्गमुवयरणं।
तं सव्वं कायव्वं पत्तेयं पंच पंच संखाए।।356।।

टव्वाटीका-

अवसाणे- अर व्रत पूरण हुवौं उद्यापन की उतकिष्ट रिति कहै छै।

पंच घडाविऊण- पांच घडाय करि।

पडिमाओ- प्रतिमा।

जिणवरिंदाणं- जिनेश्वर की प्रतिष्ठा करावै नवीन मंदिर करावै भगवांन का।

तह पंच पोत्थयाणि य- तथा पांच पोथी।

लिहाविऊणं- लिखाय करि श्रुत पूजा करावै।

ससत्तीए- आपणी शक्ति प्रमाण।

तेसिं पइट्ठयाले- त्यां की प्रतिष्ठा कै समै।

जं किं पि पइट्ठजोग्गमुवयरणं- जो क्यांयक प्रतिष्ठा जोग्य उपकरण छै।

तं सव्वं कायव्वं- सो सारौ करणौं।

पत्तेयं पंच पंच संखाए- एतौ विसेष जो पंचमी का उद्यापन की प्रतिष्ठा विषै पांच देवल करणां अर देहुरै देहुरै पांच-पांच उपकरण चढावणकारी कलस, वादित्र, छत्र, चमरादिक।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

व्रत सम्पन्न होने पर उद्यापन के समय यथाशक्ति पाँच जिन प्रतिमाएँ बनवाकर, पाँच शास्त्रों को लिखवाकर, छपवाकर। 355।

उनकी प्रतिष्ठा के समय, प्रतिष्ठा योग्य जिस भी उपकरण की आवश्यकता हो जैसे- कलश, वाद्य, छत्र, चमरादि उन सभी को पाँच-पाँच की संख्या में निर्मित करवाना चाहिये। 356।

सहिरण्ण पंचकलसे पुरओ वित्थारिऊण वत्थमुहे।
पक्कण्णं बहुभेयं फलाणि विविहाणि तह चेव।।357।।
दाणं च जहाजोग्गं दाऊण चउव्विहस्स संघस्स।
उज्जवणविही एवं कायव्वा देसविरएण।।358।।

टव्वाटीका-

सहिरण्ण- सोनां कों।

पंचकलसे- पांच कलस।

पुरओ वित्थारिऊण वत्थमुहे- आगैं विस्तारि करि वस्त्र ज्यांह कै मुख।

पक्कण्णं बहुभेयं- अर भगवंत की पूजा करै सो पकवान, मिठाई, मेवा अनेक प्रकार कां करि।

फलाणि विविहाणि तह चेव- अर तथैव नाना प्रकार का फलां करि।

दाणं च जहाजोग्गं- बहुरि दान जथाजोग्य।

दाऊण चउव्विहस्स- देय चतुरविधि।

संघस्स- संघ ने।

उज्जवणविही- पंचमी व्रत का उद्यापना की विधि।

एवं कायव्वा- ई भांति करणी।

देसविरएण- श्रावक नैं पांच वरस पांच महीनां पूरण हुवां।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सोने के पाँच कलशों के मुख पर वस्त्र बाँध कर, उन्हें जिन भगवान के सामने रखकर, अनेक प्रकार के पकवान, मेवा, मिठाई तथा फलों को भी रखकर। 357।

देशविरति श्रावकों को, चतुर्विध संघ को उनके योग्य दान देकर उद्यापन की इस विधि को सम्पन्न करना चाहिये। 358।

उज्जवणविही ण तरइ काउं जइ को वि अत्थपरिहीणो।
तो विउणा कायव्वा उववासविही पयत्तेण।।359।।

टव्वाटीका-

उज्जवणविही- अर कदाचि उद्यापन की विधि नैं।

ण तरइ काउं- न समर्थ होय करिवा।

जइ को वि- जौ कोई।

अत्थपरिहीणो- धनहीन पुरुष।

तो विउणा कायव्वा- तौ दूणीं करणी।

उववासविही पयत्तेण- उपवास की विधि यतन सौं।

भावार्थ- उद्यापन न वनैं तौ पंचमी का उपवास दूणां करण दस वरश दस महीनां करणां।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कदाचित् कोई निर्धन श्रावक इस उद्यापन की विधि को करने में सक्षम नहीं है तो उसे प्रयत्नपूर्वक एवं विधिपूर्वक दुगुने उपवास करने चाहिये। 359।

भावार्थ- यदि कोई धनहीन पुरुष उद्यापन नहीं कर सकता तो उसे दूगने उपवास करने चाहिये अर्थात् उपवास दस वर्ष, दस महीने तक करने चाहिये।

जइ अंतरम्मि कारणवसेण एक्को चयेदि उववासो।
ण कओ तो मूलाओ पुणो वि सा होइ कायव्वा।।360।।

टव्वाटीका-

जइ अंतरम्मि- जौ पांच वरस पांच महीनां पहली पंचमी का उपवास मध्य।

कारणवसेण- कोई कारण का वस करि।

एक्को चयेदि उववासो- तजै एक भी उपवास।

ण कओ तो मूलाओ- तौ न कीयो सो व्रत मूल सौं क्योंही।

पुणो वि सा होइ कायव्वा- बहुरि तिह व्रत की विधि नई करणी आवै, अर प्रायश्चित करणौं आवै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यदि किसी कारणवश उपवास करते हुए बीच में एक, दो उपवास न कर पायें तो उपवास को दोबारा शुरू से ही प्रारम्भ करना चाहिये।

एस कमो णायव्वो सव्वविहीणं भणिज्जमाणाणं।
एवं णाऊण फुडं ण पमाओ होइ कायव्वो।।361।।

टव्वाटीका-

एस कमो णायव्वो- यो अनुक्रम जो पंचमी का व्रत कौ कह्यो सो ही जाणिवौ।

सव्वविहीणं- सर्व व्रतां की विधि विषै।

भणिज्जमाणाणं- आगैं व्रत और भी कहै छै त्यांकी भी रीति ही छै।

एवं णाऊण फुडं- अैसौ प्रगट जांणि करि।

ण पमाओ होइ कायव्वो- प्रमाद करणौं विवेकी नैं जोग्य न होइ, सदा सावधान रहणौं व्रत विधान विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिस प्रकार पंचमी के व्रत का क्रम कहा उसी प्रकार सभी व्रतों की विधि के क्रम को जानना चाहिये। ऐसा जानकर विवेकी पुरुषों को धारण किये गये व्रतों में प्रमादवश कोई अतिचार नहीं लगाना चाहिये।

पंचमिउववासविहिं किच्चा देविंद-चक्कट्टित्ते।
भोत्तूण दिव्यभोए पच्छा पउणइ णिव्वाणं।।362।।

टव्वाटीका-

पंचमिउववासविहिं- पंचमी का उपवास की विधि।

किच्चा- करिकैं।

देविंद-चक्कट्टित्ते- देवेंद्र अर चक्रवरत्यादि पद विषै।

भोत्तूण दिव्यभोए पच्छा- भोगि करि दिव्य भोगां नैं पाछैं।

पउणइ णिव्वाणं- पावै निरवाण नैं यो पंचमी कौ प्रभाव कह्यो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पंचमी के उपवास के प्रभाव से, पंचमी के व्रत को विधिपूर्वक करके श्रावक, देवेन्द्र और चक्रवर्तियों की विभूति को भोगकर उसके बाद निर्वाण लक्ष्मी को प्राप्त करता है।

रोहिणीव्रत-वर्णन

विहिणा गहिऊण विहिं रोहिणिरिक्खम्मि पंच वासाणि।
पंच य मासा जाव उ उपवासं तम्मि रिक्खम्मि।।363।।
काऊणुज्जवणं पुण पुव्विहाणेण होइ कायव्वं।
णवरि विसेसो पडिमा कायव्वा वासुपुज्जस्स।।364।।

टव्वाटीका-

विहिणा गहिऊण विहिं- अर विधि पूरवक अंगीकार करिकैं।

रोहिणिरिक्खम्मि- रोहणी नक्षत्र का व्रत की विधि नैं।

पंच वासाणि- पांच वरस।

पंच य मासा जाव उ- अर पांच ही महीना परजंत।

उपवासं तम्मि- उपवास करणां तिह नक्षत्र विषै।

भावार्थ- महीनां मैं एक वार रोहिणी।

रिक्खम्मि।- नक्षत्र सताईसमैं दिन आवै सो रोहणी कौ उपवास करणौं।

काऊणुज्जवणं पुण- करिकैं उद्यापन बहुरि।

पुव्विहाणेण- पांचैं का विधान प्रमाण ही।

होइ कायव्वं- होइ छै करतव्य।

णवरि विसेसो पडिमा- परंतु ए तौ विसेष प्रतिमा।

कायव्वा वासुपुज्जस्स- ई विधान मैं करांवणी श्री वासुपूज्य स्वामी की।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

रोहिणी नक्षत्र व्रत की विधि को रोहिणी नक्षत्र में ग्रहण करके पाँच वर्ष, पाँच महीने तक उसी नक्षत्र में व्रत रखना चाहिए। रोहिणी नक्षत्र माह में एक बार सत्ताइसवें दिन आता है।

पंचमी व्रत के उद्यापन की विधि के समान ही इसका भी व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन करना चाहिये। रोहिणी व्रत के उद्यापन में मात्र इतना ही अन्तर है कि इसमें वासुपूज्य भगवान की प्रतिमा का निर्माण करवाना चाहिये।

तस्स फलेणित्थी वा पुरिसो सोयं ण पिच्छइ कया वि।
भोत्तूण विउलभोए पच्छा पाउणइ णिव्वाणं।।365।।

टव्वाटीका-

तस्स फलेणित्थी वा- तिह रोहणी व्रत का फल करि स्त्री तथा।

पुरिसो सोयं ण पिच्छइ कया वि- पुरिष सोक नैं न देखै कदाचित भी अर।

भोत्तूण विउलभोए- भोगि करि विसतीरण भोगां नैं।

पच्छा पाउणइ णिव्वाणं- पाछैं पावै निरवांण नैं यो रोहिणी व्रत कौ विधान कह्यो आगैं नक्षत्रमाला व्रत कहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

रोहिणी व्रत के फलस्वरूप स्त्री अथवा पुरुष कभी भी शोकाकुल नहीं होते हैं और अनेकानेक भोगों को भोगकर मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं।

अश्विनीव्रत-वर्णन

गहिऊणस्सिणिरिक्खम्मि विहिं रिक्खेसु सत्तवीसेसु।
रिक्खं पडि एक्केक्को उववासो होइ कायव्वो।।366।।
एवं काऊण विहिं सत्तीए जो करेइ उज्जवणं।
भुत्तूणिच्चूभुदयसुहं सो पावइ अक्खयं सुक्खं।।367।।

टव्वाटीका-

गहिऊण- गृह करि।

स्सिणिरिक्खम्मि विहिं- अस्विनी नक्षत्र विषै व्रत की विधि अर।

रिक्खेसु सत्तवीसेसु- नक्षत्र सताईस विषै।

रिक्खं पडि एक्केक्को- नक्षत्र प्रति एक एक।

उववासो होइ कायव्वो- उपवास करणौं जोग्य होय छै विवेकी जीवां नैं।

एवं काऊण विहिं- ई भांति करिकैं व्रत विधि।

सत्तीए जो करेइ उज्जवणं- अर आपणी शक्ति प्रमाण जो करै उद्यापन नैं।

भुत्तूणिच्चूभुदयसुहं- भोगि करि नित्य छै उदय ज्यांह विषै, अैसा सुखां नैं।

सो पावइ अक्खयं सुक्खं- सो पावै अविनासी सुख नैं संसार भ्रमणाथी छूटै, यो नक्षत्रमाला कौ विधान कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अश्विनी नक्षत्र की विधि को बताते हुए कहते हैं कि अश्विनी नक्षत्र के सत्ताईस नक्षत्रों में प्रत्येक अश्विनी नक्षत्र पर एक-एक व्रत करना चाहिये ।

इस प्रकार विधिपूर्वक अश्विनी व्रत करके यथाशक्ति उद्यापन करने वाला श्रावक सदा विद्यमान स्वर्गों के सुख भोगकर, कभी न नष्ट होने वाले मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

यो रोहिणी व्रत कौ विधान कह्यौ आगै सौख्यसंपति विधान कहै छै

सौख्यसम्पत्तिव्रत-वर्णन

एया पडिवा वीया उ दुण्णि तीया उ तिण्ण चोत्थीओ।
चत्तारि पंचमीओ पंच य छट्ठीउ छट्ठेव।।368।।
सत्तेव सत्तमीओ अट्ठट्ठम्मिओ य णव य णवमीओ।
दस दसमीओ य तहा एयारस एयारसीओ य।।369।।
बारस य बारसीओ तेरह तह तेरसीओ णायव्वा।
चोद्दस य चोद्दसीओ पण्णारस पुण्णिमाओ य।।370।।
उववासा कायव्वा जहुत्तसंखाकमेण एयासु।
एसा णामेण विही विण्णेया सुक्खसंपत्ती।।371।।
एयस्से संजायइ फलेण अब्भुदयसुक्खसंपत्ती।
कमसो मुत्तिसुहस्स वि तम्हा कुज्जा पयत्तेण।।372।।

टव्वाटीका-

एया पडिवा- पडिवा कौ एक उपवास करणौं।
वीया उ दुण्णि- दोयज दोय करणी।
तीया उ तिण्ण चोत्थीओ- तीज तीन करणी।
चत्तारि- चौथि च्यारि करणी।
पंचमीओ पंच- पांचै पांच करणी।
य छट्ठीउ छट्ठेव- बहुरि छठि छह करणी।

सत्तेव सत्तमीओ- सात करणीं सातैं।
अट्ठट्ठम्मिओ य- आठै आठ करणी।
णव य णवमीओ- वहुरि नव करणी नौमी।
दस दसमीओ य तहा- तथा दस दसमी करणी।
एयारस एयारसीओ य- अर ग्यारा करणी ग्यारसि।

बारस य बारसीओ- बहुरि वारा करणी वारसि।
तेरह तह तेरसीओ- तेरह तथा तेरसि करणी।
णायव्वा- जांणनी या रीति।
चोद्दस य- वहुरि चोदा करणी।

चोद्दसीओ- चौदसि।
पण्णारस पुण्णिमाओ य- अर पंद्रा करणी पूरणवासी।

उववासा कायव्वा- उपवास करणां।
जहुत्तसंखाकमेण- जीह भांति कह्या तिह भांति संख्या प्रमांण अनुक्रम करि।
एयासु- यां पंद्रा तिथां विषै।
एसा णामेण विही- इह नाम करि व्रत विधि।
विण्णेया सुक्खसंपत्ती- जांणणी अहो भव्य जीव हो सुख संपति।

एयस्से- इह सुख संपति।
संजायइ फलेण- व्रत का फल करि उपजै।
अब्भुदयसुक्खसंपत्ती- इंद्रादिक उच्च पद का सुखां की संपति अर।
कमसो मुत्तिसुहस्स वि- अनुक्रम करि मुक्ति का सुखां की भी संपति उपजै धर्मवंत जीवां कै।
तम्हा कुज्जा पयत्तेण- तातैं करणौं यत्न करि सुख संपति विधान नामा व्रत विवेक्यां नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पडिवा अर्थात् प्रतिपदा का एक, द्वितीया के दो, तृतीया के तीन, चतुर्थी के चार, पंचमी के पाँच, षष्ठी के छह। 368।

सप्तमी के सात, अष्टमी के आठ, नवमी के नौ, दशमी के दस और एकादशी के ग्यारह। 369।

द्वादशी के बारह और त्रयोदशी के तेरह, चतुर्दशी के चैदह और पूर्णमासी के पन्द्रह उपवास करने चाहिये। 370।

जिस प्रकार बताया गया है उसी संख्या के क्रमपूर्वक उपवास करने चाहिये। इस व्रत विधि का नाम ही सौख्य-सम्पत्ति व्रत जानना चाहिये।। 371।

इस व्रत के फलस्वरूप धार्मिक जीवों को इन्द्रादिक उच्च पद के सुख की प्राप्ति और क्रमपूर्वक मुक्ति रमा अर्थात् मोक्ष सुख की भी प्राप्ति होती है। अतः विवेकी पुरुषों को प्रयत्नपूर्वक सुख सम्पत्ति विधान नामक व्रत को करना चाहिये । 372।

यो सुख संपति विधान कह्यो आगैं नंदीश्वरपंकति कहै छै

नन्दीश्वरपंक्तिव्रत-वर्णन

काऊण अट्ठ एयंतराणि रइयरणगेसु चत्तारि।
दहिमुहसेलेसु पुणो अंजणजिणचेइए छट्ठं।।373।।
णंदीसरम्मि दीवे एवं चउसु वि दिसासु कायव्वा।
उववासा एस विही णंदीसरपंति णामेण।।374।।
जं किं पि देवलोए महड्ढिदेवाण माणुसाण सुहं।
भोत्तूण सिद्धसोक्खं पाउणइ फलेण एयस्स।।375।।

टव्वाटीका-
काऊण अट्ठ एयंतराणि- करिकैं आठ इकांतर उपवास।
रइयरणगेसु- रतिकर आठ परवत छै त्यांह संवंधि।

चत्तारि- अर च्यारि इकांतर उपवास।

दहिमुहसेलेसु पुणो- वहुरि च्यारि दधिमुख परवत छै त्यां का करणां।

अंजणजिणचेइए छट्ठं- अर अंजनगिर परवत कौ एक वेलौ करणौं ई भांति उपवास एक दिसि का करणां।

णंदीसरम्मि दीवे- नंदीसुरदीप विषै।

एवं चउसु वि दिसासु कायव्वा- ई भांति एक एक दिसा विषै तेरा तेरा परवत छै च्यारि दिस का बांवन छै सो करणों च्यारि ही दिसि का।

उववासा- उपवास।

एस विही- ई विधि सौं।

णंदीसरपंति णामेण- या विधि नंदीसुरपंकति नाम व्रत की छै।

जं किं पि- ज्यों क्योंयक।

देवलोए- देवलोक विषै।

महड्ढिदेवाण- मोटी ऋद्धि का धरणी देवां का सुख छै।

माणुसाण सुहं- सो पावै अर मनुक्ष भव का चक्रवर्त्यादि का सुख।

भोत्तूण सिद्धसोक्खं- भोगि करि मोक्ष का सुख।

पाउणइ- पावै।

फलेण एयस्स- इह नंदीसुरपंकति विधान व्रत का फल करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नन्दीश्वरपंक्ति विधान का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नन्दीश्वर द्वीप में प्रत्येक दिशा में आठ रतिकर, चार दधिमुख और एक अंजनगिरि पर्वत है। उन सभी पर्वतों में जिनबिम्ब विराजमान हैं। अतः उनसे संबंधित आठ एकान्तर उपवास (एक दिन भोजन, एक दिन उपवास) रतिकर पर्वत के करके, फिर चार एकान्तर उपवास दधिमुख पर्वत के करके, एक बेला (षष्ठ भक्त उपवास) अंजनगिरि पर्वत पर स्थित जिनप्रतिमा सम्बन्धी करें।

इस प्रकार चार दिशाओं में प्रत्येक दिशा सम्बन्धी तेरह-तेरह पर्वत हैं। चारों दिशाओं में कुल बावन पर्वत हैं। सभी दिशाओं के उपवास करने चाहिये। इसका नाम नन्दीश्वरपंक्ति व्रत विधान है।

इस व्रत के प्रभाव से देवलोक में जो कोई भी महान ऋद्धि के धारी देव होते हैं उनको जो कुछ भी सुख सम्पत्ति वैभव प्राप्त होता है तथा मनुष्यों के जो चक्रवर्ती आदि का सुख हैं उनको भोगकर वह मोक्ष सुख को भी प्राप्त करता है।

यो नंदीसुरपंकति विधान व्रत कह्यो आगै विमानपंकति कहै छै

विमानपंक्तिव्रत-वर्णन

एयंतरोववासा चत्तारि चउद्दिसासु काऊण।
छट्ठं मज्झे एवं तिसट्ठिखुत्तो विहिं कुज्जा।।376।।
पट्ठवणे णिट्ठवणे छट्ठं मज्झम्मि अट्ठयं च तहा।
एस विही णायव्व विमाणपंति त्ति णामेण।।377।।

टव्वाटीका-

एयंतरोववासा- एकांतर उपवास च्यारि।

चत्तारि चउद्दिसासु काऊण- च्यारि ही दिसा का करिकैं।

छट्ठं मज्झे एवं- एक वेलौ मध्य करणौं ई भांति।
तिसट्ठिखुत्तो विहिं कुज्जा- त्रोसहि पटल काई विधि सौं उपवास करणां।

पट्ठवणे- आरंभ विषै वेलौ एक करणौं।
णिट्ठवणे- अर समापत विषै वेलौ एक करणौं।
छट्ठं मज्झम्मि अट्ठयं च तहा- तथा मध्य विषै तेलौ एक करणौं।
एस विही णायव्व- या विधि जांणनी।
विमाणपंति त्ति णामेण- विमानपंकति इसौ नाम व्रत की।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

विमानपंक्ति व्रत के अंतर्गत चार दिशाओं में चार श्रेणीबद्ध विमान हैं। उनके मध्य में एक इन्द्रक विमान है। चार विमान सम्बन्धी चार एकान्तर उवास (एक दिन भोजन, एक दिन उपवास) करके, इन्द्रक विमान सम्बन्धी एक बेला (षष्ठभक्त अर्थात् दो दिन लगातार उपवास) करें। इस प्रकार इस क्रम को तिरेसठ बार करना चाहिये।

व्रत विधान प्रारम्भ करते समय प्रथम व्रत में षष्ठभक्त अर्थात् बेला करें तथा व्रत विधान की समाप्ति पर अन्तिम उपवास भी षष्ठभक्त अर्थात् बेला करें। इन उपवासों के मध्य में एक अष्टम भक्त अर्थात् तेला (तीन दिन लगातार उपवास) करें। इसे विमान-पंक्ति व्रत जानना चाहिये। 377।

फलमेयस्से भोत्तूण देव-मणुएसु इंदियजसुक्खं।
पच्छा पावइ मोक्खं थुणिज्जमाणो सुरिंदेहिं।।378।।

टव्वाटीका-
फलमेयस्से भोत्तूण- इह व्रत का फल थकी भोगि करि।
देव-मणुएसु- देव मनुक्ष विषै।
इंदियजसुक्खं- इंद्रिय उतपन्न सुखां नैं।
पच्छा पावइ मोक्खं- पाछैं पावै मोक्ष।
थुणिज्जमाणो सुरिंदेहिं- स्तव्यो थकौ इंद्रादिक देवां करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस व्रत के फलस्वरूप जीव देव और मनुष्यों के इन्द्रियजनित सुखों को भोगकर, देवेन्द्रों द्वारा पूजित मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

यो विमानपंकति व्रत विधान कह्यो

उद्देसमेत्तमेयं कीरइ अण्णं पि जं ससत्तीए।
सुत्तुत्ततवविहाणं कायकिलेसु त्ति तं विंति।।379।।

टव्वाटीका-
उद्देसमेत्तमेयं कीरइ- व्रतां की विधि विषै कथंचित् मात्र मैं यो कथन कीयो।।
अण्णं पि जं ससत्तीए- और भी व्रत अनेक छै सो और भी जो आपणीं शक्ति करि जो करै भव्य जीव।
सुत्तुत्ततवविहाणं- सूत्रोक्त तप कौ विधान करै।
कायकिलेसु त्ति तं विंति- कायकलेस तिहनैं कहजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यहाँ कुछ ही व्रत-विधियों का कथन किया गया है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक शास्त्रों में बताये गये तप विधानों को जो भव्य जीव अपनी शक्ति के अनुसार करता है, उन सभी को आचार्यों ने कायक्लेश के अंतर्गत वर्णित किया है।

यो कायकलेस कौ कथन कीयो आगैं पूजा कौ कथन करै छै

जिण-सिद्ध-सूरि-पाठय-साहूणं जं सुयस्स विहवेण।
कीरइ विविहा पूज्जा वियाण तं पुज्जणविहाणं।।380।।

टव्वाटीका-

जिण- जिनेसुर देव।

सिद्ध- सिद्ध।

सूरि- आचार्य।

पाठय- उपाध्याय।

साहूणं- साधां की।

जं सुयस्स- अर जो श्रुत की।

विहवेण- आपणी शक्ति माफिक।

कीरइ- करै।

विविहा पुज्जा- नाना प्रकार की पूजा।

वियाण- जांणौं।

तं पूजणविहाणं- तिहकौ नाम पूजाविधान।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनदेव, सिद्धप्रभु, सूरि (आचार्य), पाठक (उपाध्याय), साधुओं की और श्रुत (शास्त्र) की यथाशक्ति पूर्ण वैभव से जो अर्चन-पूजन किया जाता है, उसे पूजा विधान जानना चाहिये। 380।

आगैं पूजा का छह भेंद कहै छै

णाम-ट्ठवणा-दव्वे खित्ते काले वियाण भावे य।
छव्विहपूया भणिया समासओ जिणवरिंदेहिं।।381।।

टव्वाटीका-

णाम- नाम पूजा।

ट्ठवणा- स्थापना पूजा।

दव्वे- द्रव्य पूजा।

खित्ते- क्षेत्र पूजा।

काले- काल पूजा।

वियाण- जाणौं।

भावे य- बहुरि भाव पूजा।

छव्विहपूया भणिया- या छह प्रकार की पूजा कही।

समासओ- संक्षेप थकी।

जिणवरिंदेहिं- जिनेश्वर देवां।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

संक्षेप में जिनदेव ने छह प्रकार की पूजा कही है- नाम पूजा, स्थापना पूजा, द्रव्य पूजा, क्षेत्र पूजा, काल पूजा और भाव पूजा।

नामपूजा

उच्चारिऊण णामं अरुहाईणं विसुद्धदेसम्मि।
पुप्फाणि जं खिविज्जंति वण्णिया णामपूया सा।।382।।

टव्वाटीका-

उच्चारिऊण णामं- उचारि करि नाम।

अरुहाईणं- अरहंतादिकां कौ।

विसुद्धदेसम्मि- अर निर्मल क्षेत्र विषै।

पुप्फाणि जं खिविज्जंति- जो पुष्पांजली खैपे।

वण्णिया णामपूया सा- वरणी नाम पूजा सो सिद्धांत विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अरिहन्तादि प्रभु के नाम का उच्चारण करके निर्मल, शुद्ध क्षेत्र में जो पुष्प क्षेपण करते हैं, वह नाम पूजा कहलाती है।

या नाम पूजा कहो आगैं स्थापना कहै छै

स्थापना पूजा

सब्भावासब्भावो दुविहा ठवणा जिणेहिं पण्णत्ता।
सायारवंतवत्थुम्मि जं गुणारोवणं पढमा।।383।।
अक्खय-वराडओ वा अमुगो एसु त्ति णिययबुद्धीए।
संकप्पिऊण वयणं एसा विइया असब्भावा।।384।।

टव्वाटीका-

सब्भावासब्भावो- सद्भाव अर असद्भाव।

दुविहा- दोय प्रकार।

ठवणा- स्थापना।

जिणेहि पण्णत्ता- जिनेश्वर देवां कही।

सायारवंत- साकारवंत।

वत्थुम्मि- वस्तु विषै।

जं गुणारोवणं पढमा- जो गुणां कौ आरोपणा सो सद्भावथापना कहजे।

अक्खय- अक्षत।

वराडओ वा- सुपारी इत्यादि।

अमुगो एसु त्ति- वस्तु थापि करि।

णिययबुद्धीए- आपणी बुद्ध सेती।

संकप्पिऊण वयणं- वचन कलपना करि जो या फलांणों तीर्थंकर की थापना छै, अराजैं तिहनैं।

एसा विइया- सो या जाणौं।

असब्भावा- असद्भावथापना।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनदेव ने दो प्रकार की स्थापना पूजा कही है- एक सद्भावस्थापना और दूसरी असद्भाव स्थापना। प्रथम सद्भावस्थापना पूजा के अन्तर्गत साकार वस्तु में अरहन्तादि के गुणों को आरोपित किया जाता है।

अपने ज्ञान के अनुसार चावल, सुपारी आदि में अरिहंतदेवादि की कल्पना करना तथा उनका वचन से नाम लेना, यह असद्भावस्थापना नामक द्वितीय पूजन जानना चाहिये।

हुंडावसप्पिणीए विइया ठवणा ण होई कायव्वा।
लोए कुलिंगमइमोहिए जदो होइ संदेहो।।385।।

टव्वाटीका-

हुंडावसप्पिणीए- परंतु हुंडावसर्पणी काल विषै।

विइया ठवणा- सद्भावस्थापना ही जे, ण छै करणी अर असद्भावथापना।

ण होई कायव्वा- न होइ करतव्य।

लोए कुलिंगमइमोहिए- हुंडावसर्पणी विषै पंचमा काल मैं, लोक कुलिंग्यां करि मति भ्रम होय रह्यो छै।

जदो होइ संदेहो- सो मति भ्रम लोकां नै जवैं होई संदेह न, आपणां पराया मन कै निश्चै न पड़ै, तातैं सद्भावस्थापना योग्य छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

किन्तु आचार्य कहते हैं कि हुंडावसर्पिणी काल में मिथ्यादृष्टि जीव इस लोक में भ्रमित होकर चावल या सुपारी को ही देव मान सकता है, अतः भ्रम निवारण हेतु दूसरी असद्भावस्थापना पूजा नहीं करनी चाहिये।

सो स्थापना की विधि कहै छै
कारापक कहतां प्रतिमा थापना का करावा वालौ

कारावगिंदपडिमा पइट्ठलक्खणविहिं फलं चेव।
एदे पंचहियारा णायव्वा पढमठवणाए।।386।।

टव्वाटीका-

काराव- कारापक कहतां विंव प्रतिष्ठा कौ करावां वालौ।

गिंद- अर इंद्र कहतां प्रतिष्ठा कौ अधिकारी गृहस्थाचार्य।

पडिमा- अर प्रतिमा स्थापना कहतां तीर्थंकरदेव की स्थापना।

पइट्ठ- अर प्रतिष्ठा कहतां नवा चैतालय विषै नई प्रतिमा पधवा की विधि।

लक्खणविहिं- यांका लक्षण अर रीति।

फलं चेव- बहुरि पूजा प्रतिष्ठा का फल।

एदे पंचहियारा णायव्वा- ए पांच अधिकार जांणिवा।

पढमठवणाए- प्रथम स्थापना जो सद्भाव तिह विषै करावा वालौ 1, इंद्र 1, प्रतिमा 1, प्रतिष्ठा 1, फल 1 एवं 5 भेद कह्या, त्यां मध्ये प्रथम प्रतिमा का करावा वाला का लक्षण कहै छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

प्रथम सद्भाव स्थापना पूजा के पाँच अधिकार जानने चाहिये। सर्वप्रथम सद्भावस्थापना पूजा में प्रतिमा को बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करानेवाला कारापक, द्वितीय प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य अर्थात् इन्द्र, तृतीय प्रतिमा जी, चतुर्थ नई प्रतिमा जी को प्रतिष्ठित करने की लक्षण विधि एवं पंचम है पूजा प्रतिष्ठा का फल।

कारापक-लक्षण

भागी वच्छल्ल-पहावणा-खमा-सच्च-मद्दवोवेदो।
जिणसासण-गुरुभत्तो सुत्ते कारावओ भणिओ।।387।।

टव्वाटीका-

भागी- भाग्यवांन होइ अर।

वच्छल्ल- वात्सल्य अंग करि युक्त होय।

पहावणा- प्रभावना अंग कौ करनहारौ होय।

खमा- क्षमावान होइ।

सच्च- सत्यवादी होइ।

मद्दवो- मार्दव अंग नैं लीयां होय नगर में होय।

वेदो- समझदार होय अपाणा स्वरूप कौ वेत्ता होय।

जिणसासण- जिनसासन कौ।

गुरुभत्तो- अर गुरां कौ भक्त होय।

सुत्ते कारावओ भणिओ- सूत्र विषै प्रतिमा कौ करवावालौ इसा लक्षणां कौ धारक कह्यो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

प्रतिष्ठाशास्त्र में कारापक के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह भाग्यशाली, वात्सल्यपूर्ण, प्रभावना अंग को धारण करने वाला, क्षमावान, सत्यवादी, मार्दव गुण से युक्त, जिनदेव, जिनशास्त्र एवं वीतरागी गुरुओं का भक्त होना चाहिये।

ए करावा वाला का लक्षण कह्या
आगैं इंद्र का लक्षण कहै छै

इंद्र-लक्षण

देस-कुल-जाइसुद्धो णिरुवम-अंगो विसुद्धसम्मत्तो।
पढमाणिओयकुसलो पइट्ठलक्खणविहिविदण्णू।।388।।
सावयगुणोववेदो उवासयज्झयणसत्थथिरबुद्धी।
एवं गुणो पइट्ठाइरिओ जिणसासणे भणिओ।।389।।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

देस-कुल-जाइसुद्धो- प्रतिष्ठाचार्य का देश, कुल, जात्यादि करि निरमल होय।

णिरुवम-अंगो- अर जिह कौ अंग उपमा रहित होइ, अत्यंत सुंदर, सुरूप होइ।

विसुद्धसम्मत्तो- अर निर्मल सम्यक्त कौ धारक होइ।

पढमाणिओयकुसलो- अर प्रथमा अनुजोग विषै प्रवीण होय।

पइट्ठ- अर प्रतिष्ठा का।

लक्खणविहि- लक्षण की जो विधि।

विदण्णू- तीहकौ वेत्ता होय।

सावयगुणोववेदो- अर श्रावक का गुणां करि मंडित होइ।

उवासयज्झयण- अर उपासकाध्ययन नामा।

सत्थथिरबुद्धी- शास्त्र विषै थिर बुद्धि होय।

एवं गुणो- इसा गुणां कौ धारक ।

पइट्ठाइरिओ- प्रतिष्ठा कौ आचारिज।

जिणसासणे भणिओ- जिनसासन विषै कह्यौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

आगे प्रतिष्ठाचार्य के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह शुद्ध देश, शुद्ध कुल एवं शुद्ध जाति का होना चाहिये। वह अनुपम अंगों का धारी होना चाहिये अर्थात् सुन्दर स्वरूप वाला होना चाहिये। निर्मल, विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाला होना चाहिये। वह प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में प्रवीण हो तथा प्रतिष्ठा विधि को जानने वाला होना चाहिये।

जो श्रावक के गुणों से मंडित हो, उपासकाध्ययन अर्थात् श्रावकाचार में दृढ़ श्रद्धान वाला हो, ऐसा गुणी व्यक्ति जिनशासन में प्रतिष्ठाचार्य के नाम से संबोधित किया गया है।

ए इंद्र का लक्षण कह्या आगैं प्रतिमा का लक्षण कहै छै

प्रतिमा-विधान

मणि-कणय-रयण-रुप्पय-पित्तल-मुत्ताहलोवलाईहिं।
पडिमालक्खणविहिणा जिणाइपडिमा घडाविज्जा।।390।।

टव्वाटीका-

मणि- मणि की।

कणय- कंचन की।

रयण- रतन की।

रुप्पय- रूपा की।

पित्तल- पीतल की।

मुत्ता- मोती की।

हलोवलाईहिं- पाषाण की।

पडिमालक्खणविहिणा- प्रतिमा का जे लक्षण छै अर वणायवा की विधि छै तिह करि।

जिणाइपडिमा- जिनेसुर की प्रतिमा।

घडाविज्जा- घडांवणी ज्ञानी पुरिषां नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

प्रतिमा जी का निर्माण किसके द्वारा किया जा सकता है उसके विषय में बताते हुए कहते हैं कि अरिहंत, सिद्धादि भगवान की प्रतिमा जी विधिपूर्वक मणियों के द्वारा, स्वर्ण के द्वारा, चांदी के द्वारा, पीतल के द्वारा, मोती के द्वारा तथा पाषाण के द्वारा बनवानी चाहिये। 390।

या प्रतिमा की विधि कही आगैं प्रतिष्ठा की विधि कहै छै

बारह-अंगंगिज्जा दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चोद्दहपुव्वाहरणा ठावेयव्वा य सुयदेवी।।391।।
अहवा जिणागमं पुत्थएसु सम्मं लिहाविऊण तओ।
सुहतिहि-लग्ग-मुहुत्ते आरंभो होइ कायव्वो।।392।।

टव्वाटीका-

बारह-अंगंगिज्जा- वारह अंग सो ही छै अंग जिहका।

दंसणतिलया- अर सम्यकदरसन छै तिलक जिह कै।

चरित्तवत्थहरा- अर चारित्र का वस्त्र धरयां छै।

चोद्दहपुव्वाहरणा- चौदह पूरव छै आभरण जिहकै।

ठावेयव्वा य सुयदेवी- अैसी जो श्रुत देती कहतां जिनवांनि, तिहनैं वहौत विनय भाव सौं, उछाह सौं थापै प्रथम ही।

अहवा जिणागमं- अथवा जिनआगम नैं।

पुत्थएसु- पुस्तक विषै।

सम्मं लिहाविऊण तओ- भली भांति लिखाय करि पाछैं।

सुहतिहि- शुभतिथि।

लग्ग- अर सुभ।

मुहुत्ते- लगन महुरत विषै।

आरंभो होइ कायव्वो- आरंभ करणौं जोग्य छै प्रतिष्ठा कौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

शास्त्र स्थापना के विषय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ऐसी श्रुतदेवी की स्थापना करनी चाहिये जो श्रुतज्ञान रूपी बारह अंगोपांग को धारण करनेवाली हो, सम्यग्दर्शन जिसका तिलक हो तथा चारित्र रूपी वस्त्रों को धारण करने वाली हो और चौदह पूर्व रूपी आभूषणों से सुशोभित हो।

अथवा जिनशासन के सूत्रों को आगमानुसार अच्छी प्रकार पुस्तकों में लिखवाकर शुभ तिथि, शुभ लग्न और शुभ मुहूर्त में प्रतिष्ठा का आरम्भ करना योग्य है।

प्रतिष्ठा-विधान

अट्ठदसहत्थमेत्तं भूमिं संसोहिऊण जइणाए।
तस्सुवरि मंडओ पुण कायव्वो तप्पमाणेण।।393।।
चउतोरण-चउदारोवसोहिओ विविहवत्थकयभूसो।
धुव्वंतध्य-वडाओ णाणापुप्पफोवहारड्ढो।।394।।
लंबंतकुसुमदामो वंदणमालाहिभूसियदुवारो।
दारुवरि उहयकोणेसु पुण्णकलसेहि रमणीओ।।395।।
तस्सबहुमज्झदेसे पइट्ठसत्थम्मि वुत्तमाणेण।
समचउरंसं पीठं सव्वत्थ समं च काऊण।।396।।

चउसु वि दिसासु तोरण-वंदणमालोववेददाराणि।
छत्तावत्ताणि तहा दिढाणि रइऊण कोणेसु।।397।।
पडिचीणणेत्तपट्टाइएहिं वत्थेहिं बहुविहेहिं तहा।
उल्लोविऊण उवरिं चंदोवयमणिविहाणेहिं।।398।।
संभूसिऊण चंदद्धचंदवुव्वुयवरायलाईहिं।
मुत्तादामेहिं तहा किंकिणिजालेहिं विविहेहिं।।399।।
छत्तेहिं चामरेहिं य दप्पण-भिंगार-तालवट्टेहिं।
कलसेहि पुप्पफवडिलिय-सुपइट्ठय-दीवणिवहेहिं।।400।।
एवं रयणं काऊण तओ अब्भंतरम्मि भागम्मि।
रइऊण विविहभंडेहिं वेइयं चउसु कोणेसु।।401।।

टव्वाटीका-

अट्ठदसहत्थमेत्तं- अठारा हाथ प्रमांण।
भूमिं संसोहिऊण- भूमि नैं सोधि करि।
जइणाए- दया सौं अर।
तस्सुवरि- तिह कै ऊपरि।
मंडओ पुण- मंडप वहुरि।
कायव्वो तप्पमाणेण- करणौं तिह प्रमाण ही।

चउतोरण- च्यारि तोरण।
चउदारोवसोहिओ- च्यारि दरवाजा त्यां करि सोहै छै।
विविहवत्थकयभूसो- नाना प्रकार का वस्त्रां करि सिंगारयौ थकौ अर।
धुव्वंतधय-वडाओ- फरहरै छै धुजा कौ वस्त्र जहां।
णाणापुप्पफोवहारड्ढो- अर नाना प्रकार का पुष्पां का जे समूह तिह करि पूरण छै।

लंबंतकुसुमदामो- लंवायमान छै फूलां की माला जैंठै।
वंदणमालाहिभूसियदुवारो- अर वंदनमाला करि सोभायमांन छै दुवारि जिहकौ।
दारुवरि- अर दरवाजा ऊपर।
उहयकोणेसु- दोन्यौं कूणां विषै।
पुण्णकलसेहि रमणीओ- संपूरण कलसां करि रमणीक छै।

तस्सबहुमज्झदेसे- तिह मंडप कै मध्य स्थानक विषै।
पइट्ठसत्थम्मि- प्रतिष्ठा सास्त्र मांही।
वुत्तमाणेण- कह्यो तिह प्रमाण।
समचउरंसं पीठं- वरावरि चौकूंटौ पीठ कहता च्यौंतरौ।
सव्वत्थ समं च काऊण- सर्वत्र समान करिकैं।

चउसु वि दिसासु- च्यारि ही दिसा विषै।
तोरण- तोरणां की।
वंदणमालोववेददाराणि- पंकति करि मंडित छै दुवार जिहका।

छत्तावत्ताणि तहा दिढाणि- तथा छत्र भमण सारिखा गोल मनोज्ञ।
रइऊण कोणेसु- रचि करि कूंणां विषै।।
पडिचीणणेत्तपट्टाइएहिं- माहामनोज्ञ पाटांवरादि।
वत्थेहिं- वस्त्र।
बहुविहेहिं तहा- अनेक प्रकार का त्यांह करि तथा।
उल्लोविऊण- ताणि करि।
उवरिं- ऊपरि।
चंदोवयमणिविहाणेहिं- चंद्रवा, रतन जड़ित।
संभूसिऊण- सिंगारि करि सोभायमान करि चंदवा।
चंदद्धचंदवुव्वुयवरायलाईहिं- चंद्र, अर्धचन्द्र, बुदबुद, वराटक आदि से।
मुत्तादामेहिं- मोत्यां की झाली करि।
तहा किंकिणिजालेहिं- तथा क्षुद्र घंटिका का समूह।
विविहेहिं- नाना प्रकार का त्यांह करि।
छत्तेहिं- छत्र।
चामरेहिं य- चमर।
दप्पण- दर्पण।
भिंगार- झारी।
तालवट्टेहिं- ताड कौ पत्रौ त्यां करि।
कलसेहि- तथा कलस।
पुप्फवडिलिय- पुष्पमाला।
सुपइट्ठय- से सुप्रतिष्ठ।
दीवणिवहेहिं- अर दीपादिक का समूह करि सोभित करै मंडप नैं।
एवं रयणं काऊण- ई भांति रचना करि।
तओ- पाछैं।
अब्भंतरम्मि भागम्मि- मंडप कै मांहैं।
रइऊण- रचि करि नाना प्रकार का।
विविहभंडेहिं- वहुत भांडां जो मांटी का वासण त्यांकरि।
वेइयं चउसु कोणेसु- च्यार, चौकूणां विषै संयुक्त अैसी वेदी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

प्रतिष्ठा की वेदी का निर्माण किस प्रकार करना चाहिये उसका कथन करते हुए कहते हैं कि 18 हाथ प्रमाण लम्बाई-चैड़ाई वाली भूमि को प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करके उसके ऊपर उतने ही बड़े मंडल का निर्माण करना चाहिये।

उस मंडप के विषय में बताते हुए कहते हैं कि वह चार तोरणों और चार द्वारों से शोभित हो, अनेक प्रकार के वस्त्रों से श्रंगारित हो, जिसके ऊपर वस्त्रों की बनी ध्वजाएँ फहरा रही हों और जो अनेक प्रकार के फूलों की मालाओं से मंडित हो।

उसमें लम्बी-लम्बी फूलों की मालाएँ लटक रही हों, उसके द्वार फूलों के वंदनवार से शोभित हों, द्वार के दोनों कोनों पर निर्मल जल से भरे हुए कलश सुशोभित हों।

उस मंडप के मध्य प्रतिष्ठाग्रंथ में वर्णित प्रमाणानुसार चौकोर चबूतरा बनाकर उसे सब तरफ से समान अर्थात् एकसार करें।

चारों दिशाओं में स्थित द्वारों को तोरण और पुष्प के वंदनवारों से सजाकर, चारों कोनों में छत्र के समान गोल, मजबूत व दृढ़ नंद्यावर्त की रचना कर।

महामनोज्ञ रेशमी वस्त्रों से निर्मित रत्न एवं मणियों से अलंकृत चौकोर चंदोवे को ऊपर तानकर।

उस चंदोवे को पूर्णचन्द्राकार, अर्धचन्द्राकार, कौड़ी, रत्न, मोती, छोटी-छोटी, सुंदर-सुंदर घंटियों के समूह से सजाकर।

उसको (चंदोवे को) आभूषित करने के लिए उसमें रत्नजड़ित छत्र, चँवर, दर्पण, झारी, ताड़पत्र, कलश, फूलमाला, स्वस्तिक एवं दीपों के समूह का प्रयोग करें।

इस प्रकार रचना करके मंडप के अंदर के भाग में चारों कोनों में अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तनों से उस वेदिका का निर्माण करना चाहिये।

इंदो तह दायारो पासुयसलिलेण धारणादियहं।
पक्खालिऊण देहं पच्छा भोत्तूण महुरण्णं।।402।।
उववासं पुण पोसहविहिणा गहिऊण गुरुसयासम्मि।
णव-धवलवत्थभूसो सिरिखंडविलित्तसव्वंगो।।403।।
आहरण-वासियाईहिं भूसियंगो संग सबुद्धीए।
सक्कोहमिइ वियप्पिय विसेज्ज जागावणिं इंदो।।404।।

टव्वाटीका-

इंदो- वहुरि जिनप्रतिष्ठा कौ आचारिज़।
तह दायारो- अर प्रतिष्ठा कौ करायवा वालौ ए दोऊ।
पासुयसलिलेण- प्रासुक जल सेती।
धरणादियहं- धारणा कै दिन।
पक्खालिऊण देहं- सनान करि।
पच्छा- पाछैं।
भोत्तूण महुरण्णं- भोजन करि मधुर अन्न।
उववासं पुण- उपवास पवित्र।
पोसहविहिणा- पोसह विधान संयुक्त।
गहिऊण- ग्रह करि।
गुरुसयासम्मि- गुरां कै निकटि।
णव-ध्वलवत्थभूसो- नवां ऊजला वस्त्रां करि सोभयमान अर।
सिरिखंडविलित्तसव्वंगो- मलियागिर चंदन करि लिप्त छै सर्व अंग जिह कौ अर।
आहरण-वासियाईहिं- आभरण अर सुगंधादि द्रव्यां करि।
भूसियंगो- सोहै छै सर्व अंग जिहकौ।
संग सबुद्धीए- आपणी बुद्धि करि।
सक्कोहमिइ वियप्पिय- इंद्र छूं हूं इसौ आपनैं ठहराय करि।

विसेज्ज- प्रवेस करै।

जागावणिं इंदो- प्रतिष्ठा की भूमि विषै, इंद्र कहतां प्रतिष्ठां की विधि कौ करावा वालौ गृहस्थाचार्य।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिन प्रतिष्ठा को करने वाले प्रतिष्ठाचार्य एवं प्रतिष्ठा कराने वाले कारापक (दान दातार) प्रतिष्ठा के दिन शुद्ध जल से स्नान करके, स्वादिष्ट भोजन करके। 402।

गुरु के समीप जाकर प्रोषधविधिपूर्वक् उपवास ग्रहण कर, नये स्वच्छ, सफेद वस्त्रों को धारण कर, मलयागिरि चंदन से सम्पूर्ण अंगों को लेप कर। 403।

आभूषण और सुगंधित द्रव्यों से स्वयं को सुशोभित करके स्वयं में वैभवशाली इन्द्र की स्थापना करके अर्थात् स्वयं को इन्द्र मानकर प्रतिष्ठा मंडप में प्रवेश करे। 404।

पुव्वुत्तवेइमज्जे लिहेज्ज चुण्णेण पंचवण्णेण।
पिहुकण्णियं पइट्ठाकलावविहिणा सुकंदुत्थं।।405।।

टव्वाटीका-

पुव्वुत्तवेइमज्जे- अर पूर्वोक्त वेदी कै मांहि।

लिहेज्ज- लिखै।

चुण्णेण पंचवण्णेण- पंचवर्णा चून करि।

पिहुकण्णियं- विसतीरण कर्णिका संयुक्त मांडलौ।

पइट्ठाकलावविहिणा सुकंदुत्थं- प्रतिष्ठा कलपसूत्र की विधि करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

प्रतिष्ठामंडल में जाकर पूर्वकथित वेदिका के बीच में पांच रंग के चूर्ण (चून) से विस्तृत कर्णिका वाले नीलकमल की रचना करे।

रंगावलिं च मज्झे ठविज्ज सियवत्थपरिवुडं पीठं।
उचिदेसु तह पइट्ठोवयरणदव्वं च ठाणेसु।।406।।

टव्वाटीका-

रंगावलिं च मज्झे- बहुरि रंगावली कहतां मांडलौ तिहकै मध्य।

ठविज्ज- थापै।

सियवत्थपरिवुडं- सुपेद वस्त्र करि ढांक्यो।

पीठं- सिंहासन।

उचिदेसु तह पइट्ठोवयरणदव्वं् च ठाणेसु- अर त्यौंही थापै तिह च्यौंख्टा पीठ परि जिह ठ्ठिकांणै जो जो प्रतिष्ठा का उपकरणा चाहिजे सो सो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उस कमल में रंगों को भरकर उसके बीच में शुद्ध सफेद वस्त्र से आच्छादित (ढके) सिंहासन या ठौने को विराजमान करें तत्पश्चात् प्रतिष्ठा में आवश्यक जो-जो उपकरण द्रव्यों की आवश्यकता हो उन्हें यथोचित स्थान पर स्थापित करें।

एवं काऊण तओ ईसाणदिसाए वेइयं दिव्वं।
रइऊण णहवणपीठं तिस्से मज्झम्मि ठावेज्जो।।407।।
अरुहाईणं पडिमं विहिणा संठाविऊण तस्सुवरिं।
धूलीकलसहिसेयं कराविए सुत्तहारेण।।408।।

वत्थादियसम्माणं कायव्वं होइ तस्स सत्तीए।
पोक्खणविहिं च मंगलरवेण कुज्जा तओ कमसो।।409।।

टव्वाटीका-

एवं काऊण- ई भांति रचना करिकैं।

तओ- तव।

ईसाणदिसाए वेइयं दिव्वं- वेदी का ईसांण दिशा विषै मनोज्ञ।

रइऊण णहवणपीठं- रचै स्नांन कौ पीठ।

तिस्से मज्झम्मि ठावेज्जो- अर तिहकै मध्य थापै।

अरुहाईणं- अरहंतादिक की।

पडिमं- प्रतिमा।

विहिणा संठाविऊण- विधि सेति थापि करि।

तस्सुवरिं- तिह कै ऊपरि।

धूलीकलसहिसेयं- अर पहली कलसाभिषैक।

कराविए सुत्तहारेण- करावै प्रतिमा का घडिवावाला कौ।

वत्थादियसम्माणं- पाछैं वस्त्र आभूषणादि करि सनमांन।

कायव्वं होइ तस्स सत्तीए- करणौं होइ तिह कारीगर कौ आपणी शक्ति माफिक।

पोक्खणविहिं च- वहुरि नृत्य की विधि।

मंगलरवेण कुज्जा- मंगल शब्दां करि करै।

तओ कमसो- तवै संगीतशास्त्र की रीति का अनुक्रम करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार रचना करके फिर ईशान दिशा में मनोज्ञ वेदिका बनाकर उसके बीच में एक स्नानपीठ अर्थात् प्रतिमा जी के अभिषेक के लिए एक सिंहासन स्थापित करें। 407।

सिंहासन के ऊपर विधिपूर्वक अरिहंत भगवान की प्रतिमा विराजमान कर, प्रतिमा का निर्माण करने वाले शिल्पकार से धूलीकलशाभिषेक अर्थात् किसी तीर्थस्थान से लाई गई मिट्टी को तीर्थ नदी के पानी में भिगोयें, फिर इस भीगी या गली हुई मिट्टी से प्रतिमा जी का लेप करावें। 408।

तत्पश्चात् उस मूर्तिकार को यथाशक्ति वस्त्राभूषण से सम्मानित करें। फिर क्रमपूर्वक भक्ति नृत्य, मंगल गीत एवं संगीत से प्रोक्षणविधि करें। 409।

तप्पाओग्गुवयरणं अप्पसमीवं णिविसिऊण तओ।
आगरसुद्धं कुज्जा पइट्ठसत्थुत्तमग्गेण।।410।।

टव्वाटीका-

तप्पाओग्गुवयरणं- पाछैं प्रतिष्ठा का अभिषेक योग्य उपकरण।

अप्पसमीवं- आपणौं कनारै।

णिविसिऊण तओ- मेलि करि।

आगरसुद्धं कुज्जा- तव स्थानक शुद्ध करै।

पइट्ठसत्थुत्तमग्गेण- प्रतिष्ठा शास्त्रोक्त मार्ग करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तत्पश्चात् शास्त्र में बताये गये मार्ग के अनुसार आकर शुद्धि के योग्य उपकरणों को अपने पास रखकर आकर शुद्धि करें। (बारह वृक्षों के ढके हुए पूर्वांकुर मांगलिक द्रव्यों से, सप्त औषधियों से पांच फलों से, अष्ट दिव्य औषधियों से, लवंगादि सर्वौषधियों से अन्दर ही प्रतिमा को शुद्ध करना आकर शुद्धि कहलाता है)। 410।

एवं काऊण तओ खुहियसमुद्दोव्व गज्जमाणेहिं।
वरभेरि-करड-काहल-जय-घंटा-संख-णिवहेहिं।।411।।
गुलुगुलुगुलंत तविलेहिं कंसतालेहिं झमझमंतेहिं।
घुम्मंत पडह-मद्दल-हुडुक्कमुक्खेहिं विविहेहिं।।412।।
गिज्जंत संधिबंधाइएहिं गेएहिं बहुपयारेहिं।
वीणावंसेहिं तहा आणयसद्देहिं रम्मेहिं।।413।।
बहुहाव-भाव-विब्भम-विलास-कर-चरण-तणुवियारेहिं।
णच्चंत णवरसुब्भिण्ण-णाडएहिं विविहेहिं।।414।।
थोत्तेहि मंगलेहि य डच्चाहसएहि महुरवयणस्स।
धम्माणुरायरत्तस्स चाउव्वण्णस्स संघस्स।।415।।
भत्तीए पिच्छमाणस्स तओ उच्चाइऊण जिणपडिमं।
उस्सिय सियायवत्तं सियचामरधुव्वमाण सव्वंगं।।416।।
आरोविऊण सीसे काऊण पयाहिणं जिणगेहस्स।
विहिणा ठविज्ज पुव्वुत्तवेइयामज्झपीठम्मि।।417।।
चिट्ठिज्ज जिणगुणारोवणं कुणंतो जिणिंदपडिबिंबे।
इट्ठविलग्गस्सुदए चंदणतिलयं तओ दिज्जा।।418।।
सव्वावयवेसु पुणो मंतण्णासं कुणिज्ज पडिमाए।
विविहच्चणं च कुज्जा कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं।।419।।
दाऊण मुहपडं ध्वलवत्थजुयलेण मयणफलसहियं।
अक्खय-चरु-दीवेहि य धूवेहिं फलेहिं विविहेहिं।।420।।
बलिवत्तिएहिं जावारएहि य सिद्धत्थपण्णरुक्खेहिं।
पुव्वुत्तुवयरणेहि य रएज्ज पुज्जं सविहवेण।।421।।

टव्वाटीका-

एवं काऊण तओ- ई भांति करिकैं पाछैं करैं वाजां का सवद।

खुहियसमुद्दोव्व- क्षोभ नैं प्राप्त हुवो गाजतौ जो समुद्र।

गज्जमाणेहिं- तिह सारिखा गाजता।

वरभेरि- श्रेष्ठ दमांमां, झालरि, झांझि, मजीरा।

करड-काहल- अर करड, काहल।

जय-घंटा- जय, घंटा।

संख-णिवहेहिं- संख इत्यादि जे अनेक जाति का वाजा त्यांका समूह करि।

गुलुगुलुगुलंत तविलेहिं- गुल गुल इसा सवद हौंहि छै वाजां का।

कंसतालेहिं झमझमंतेहिं- अर झुम झुम इसा सवद हौंहि छै अर।

घुम्मंत पडह-मद्दल- बाजैं छै ढोल मांद्दल।
हुडुक्कमुक्खेहिं विविहेहिं- अर बाजैं छैं मृदंग इत्यादि नाना प्रकार का वाजा वाजैं छैं।

गिज्जंत संधिबंधाइएहिं गेएहिं- गाजैं छै संधि वंधादि को करि।
बहुपयारेहिं- बहुत प्रकार ही।
वीणावंसेहिं तहा- वीणा तथा वांसुली।
आणयसद्देहिं रम्मेहिं- अर अनेक जाति का वाजा रमणीक सवादां करि।

बहुहाव- वहुत हाव कहतां मुख की प्रसन्नता।
भाव- भाव कहतां चित्त की प्रसन्नता।
विब्भम- विभ्रम कहतां भौंह हरख रूप।
विलास- विलास कहतां नेत्र प्रफुलित।
कर- अर हाथ।
चरण- पांव।
तणुवियारेहिं- सरीर का विकार करि।
णच्चंत णवरसुब्भिण्ण- नांचैं छै नृत्य कालिनी नवर सरूप।
णाडएहिं- नाटक करि तहां।
विविहेहिं- नाना प्रकार।

थोत्तेहि- स्त्रोतां करि।
मंगलेहि- मंगलां करि।
य डच्चाहसएहि- वहुरि उच्चार का सैकडां करि।
महुरवयणस्स- मधुर वचन का।
धम्माणुरायरत्तस्स- अर धर्मानुराग विषै अनुरक्त।
चाउव्वण्णस्स संघस्स- जे च्यारि प्रकार का संघ।

भत्तीए पिच्छमाणस्स- ते भक्ति करि दैखै छै जगवंत कौ उछाह।
तओ उच्चाइऊण जिणपडिमं- तवै उचाय करि जिन प्रतिमा नैं।
उस्सिय सियायवत्तं- फिरै छै जहाँ प्रतिमा ऊपरि सुपेद छत्र।
सियचामरधुव्वमाण सव्वंगं- अर सुपेद चमर ढलै छैं प्रतिमा जी का संर्व अंग ऊपरि।

आरोविऊण सीसे- ई भांति विधि सौं आरोपि करि सिर ऊपरि प्रतिमा नैं।
काऊण पयाहिणं- अर करिकैं प्रदक्षणा।
जिणगेहस्स- जिनमंदिर की।
विहिणा- पाछैं विधिपूर्वक।
ठविज्ज- थापै।
पुव्वुत्तवेइया- पूर्वोक्त वेदी का।
मज्झपीठम्मि- मध्य पीठ विषै।

चिट्ठिज्ज- प्रवरतै।

जिणगुणारोवणं- जिनेसुर का गुणां कौ।
कुणंतो- आरोपण करतौ थकौ।
जिणिंदपडिबिंवे- जिनेन्द्र का प्रतिबिंब विषै।
इट्ठविलग्गस्सुदए- अर इष्ट लगन का उदय विषै।
चंदणतिलयं तओ दिज्जा- चंदन कौ तिलक तवैं दे।

सव्वावयवेसु पुणो- अर सर्व अवय विषै वहुरि।
मंतण्णासं- मंत्र का स्थापन करि।
कुणिज्ज पडिमाए- भगवंत भाव की स्थापना करै प्रतिमा विषै।
विविहच्चणं च कुज्जा- बहुरि नाना प्रकार की अर्चन करै।
कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं- बहुत प्रकार का पहुपां करि।
दाऊण- देय करि।
मुहपडं- मुख के पट अर।
धवलवत्थजुयलेण- उज्जल वस्त्र जुगल कहतां धोती दुपट्टौ धरि करि।
मयणफलसहियं- मैंण फल सहित।
अक्खय- अक्षत।

चरु- नैवेद्य।
दीवेहि य- दीप।
धूवेहिं- धूप।
फलेहिं विविहेहिं- अर नाना प्रकार का फलां करि पूजै।
बलिवत्तिएहिं- तथा वारणां लेवा करि अर दोन्यौं हाथा नैं जोडि आवर्त करिवाकरि।
जावारएहि य- अर जवारा।
सिद्धत्थपण्णरुक्खेहिं- वहुरि सरसौं का रूख का पत्रां करि तथा सरसौं का दांणां करि।
पुव्वुत्तुवयरणेहि य- अर पूरवैं कह्या जे उपकरण अष्ट मंगल द्रव्य त्यांह करि।
रएज्ज पुज्जं- रचै पूजा।
सविहवेण- विभव सहीत अत्यंत सोभा सहित।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार आकर शुद्धि करने के पश्चात् क्रोधित समुद्र के समान गरजती हुई भेरी के शब्दों से श्रेष्ठ झांझी, मजीरा, करड, काहल, जयघोष, घंटा, शंख इत्यादि अनेक प्रकार के वाद्यों के समूह से।

गुल-गुल शब्द से गुंजित तबलों से, झम-झम करते कसतालों से, घुम-घुम शब्द से गुंजायमान ढोलों से, ढम-ढम करते मृदंगादि संगीत वाद्यों से।

अनेक प्रकार के गाजे-बाजों से, रमणीक सारंगी, वीणा, बांसुरी आदि से, कर्णप्रिय गीत, संगीत विशेष से।

सुन्दर हाव-भाव अर्थात् प्रसन्न मुख मुद्रा व प्रसन्न चित्त से, हर्षित भौंहों से, प्रफुल्लित नेत्रों से, हाथ-पैर व शरीर की विभिन्न मुद्राओं से सुन्दर नृत्य करते हुए, नव रसों को दिखाने वाले नाटकों से।

स्तोत्रों से, सैंकड़ों मांगलिक शब्दों के उच्चारण से उत्साहपूर्वक मधुर वचनों से धर्मानुरागी, परमभक्ति से उत्सव को देखने वाले चतुर्विध संघ के सामने भक्ति करते हैं।

भक्तिपूर्वक जिनप्रतिमा को, जिसके ऊपर श्वेत छत्र विराजमान है तथा जिस प्रतिमा जी के सर्वांग पर श्वेत चँवर ढुराये जा रहे हैं उनको।

इस प्रकार वह प्रतिष्ठाचार्य अपने शीश पर प्रतिमा जी को रखकर, जिनमंदिर की प्रदक्षिणा देकर, पूर्व में बताई गई वेदिका के मध्य में स्थित सिंहासन पर विधिपूर्वक प्रतिमा जी को स्थापित करें।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा में जिनेन्द्र भगवान के गुणों का आरोपण करते हुए शुभ मुहुर्त के उदय में जिन प्रतिमा के चंदन का तिलक लगायें।

पुनः प्रतिमा के सभी अंगोपागों में मन्त्र की स्थापना करें अर्थात् प्रतिमा में भगवंत भाव की स्थापना करें और अनेक प्रकार के पुष्पों से भिन्न-भिन्न प्रकार की पूजा अर्चना करें।

फिर मदनफल सहित उज्जवल सफेद वस्त्रों के जोड़े से अर्थात् धोती दुपट्टे से प्रतिमा के मुख को ढ़ककर अक्षत, नेवैद्य, दीप, धूप, अनेक प्रकार के फलादि से।

पूजा के लिए हाथों से बनाई गई अगरबत्तियों से, जवारकों से, पर्ण वृक्ष के पत्तों से तथा सरसों के दानों से एवं पूर्व में बताये गये अष्ट मंगल द्रव्य सहित उपकरणों से वैभव सहित पूर्ण उत्साह के साथ यथाशक्ति पूजा रचायें।

रत्तिं जग्गिज्ज पुणो ते तिसट्ठि सलायपुरिससुकहाहिं।
संघेण समं पुज्जं पुणो वि कुज्जा पहायम्मि।।422।।

टव्वाटीका-

रत्तिं जग्गिज्ज पुणो- रात्रि नैं जागर्ण करैं वहुरि।

ते तिसट्ठि सलायपुरिससुकहाहिं- त्रेसठि सिलाका महापुरुषां की कथा करि रात्री पुरण करै।

संघेण समं पुज्जं- राति पूरि हुवां संघ सहित भगवान की पूजा।

पुणो वि कुज्जा पहायम्मि- वहुरि करै प्रभात विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पुनः संघ सहित त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा करते हुए रात्रि में जागरण करें तथा रात्रि पूर्ण होने पर प्रभात बेला में फिर संघ के साथ पूजन करें।

एवं चत्तारि दिणाणि जाव कुज्जा तिसंझ जिणपूजा।
नेत्तुम्मीलणपुज्जं चउत्थण्हवणं तओ कुज्जा।।423।।

टव्वाटीका-

एवं चत्तारि दिणाणि- ई भांति च्यारि दिन।

जाव- परजंत।

कुज्जा तिसंझ जिणपूजा- करै तीनौं संध्या विषै भगवान की पूजा।

नेत्तुम्मीलणपुज्जं- आंखि हरखती थकी, मन हरखतौ थकौ।

चउत्थण्हवणं तओ कुज्जा- तवैं चौथौ न्हवण पाछै करैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार चार दिन पर्यंत (तक) तीनों संध्यायों में अर्थात् सुबह, दोपहर एवं शाम के संधि समय में जिन भगवान का पूजन करें। तत्पश्चात् नेत्रोन्मीलन पूजन एवं चतुर्थ अभिषेक करें। 423।

एवं ण्हवणं काऊण सत्थमग्गेण संघमज्झम्मि।
तो वक्खमाणविहिणा जिणपयपूया य कायव्वा।।424।।

टव्वाटीका-

एवं ण्हवणं काऊण- ई भांति न्हवण विधि कराय।
सत्थमग्गेण- शास्त्रोक्त मार्ग करि।
संघमज्झम्मि- संघ कै मध्य।
तो वक्खमाणविहिणा- तैंठा पाछैं कहजे छै विधि जिह की तिह भांति।
जिणपयपूया- जिनेसुर का चरणां की।
य कायव्वा- पूजा वहुरि करणी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार शास्त्रोक्त मार्ग से संघ के मध्य में जिन प्रतिमा का अभिषेक करके पीछे बताई गई विधि से जिनेन्द्र प्रभु के चरणारविंद का पूजन करना चाहिये। 424।

गहिऊण सिसिरकर-किरण-णियर-धवलयर-रययभिंगारं।
मोत्तिय-पवाल-मरगय-सुवण्ण-मणि खचिय वरकंठं।।425।।
सयवत्त-कुसुम कुवलय-रजपिंजर-सुरहि-विमल-जलभरियं।
जिणचरण-कमलपुरओ खिविज्जि ओ तिण्णि धाराओ।।426।।

टव्वाटीका-

गहिऊण सिसिरकर- करि चंद्रमां की।
किरण-णियर- किरण समान।
धवलयर- उजल।
रययभिंगारं- रतनां की झारी।
मोत्तिय-पवाल-मरगय- जलधरा देवा की जो नाली तिहकरि संयुक्त मरकतमणि।
सुवण्ण-मणि खचिय वरकंठं- तथा और सुंदर मणी तिहकरि जाडित छै कंठ जिहका।
सुयवत्त- सूत्रोक्त।
कुसुम कुवलय- पुहप कमलादिक।
रजपिंजर-सुरहि- त्यांकी मकरंद करि पीलौ होय रह्यो अर अति सुगंध।
विमल-जलभरियं- जो जल निरमल तिह करि भरी अैसी मनोज्ञकारी।
जिणचरण-कमलपुरओ- तिह झारी की नाली करि जिनेसुर का चरण कमलां कै आगैं।
खिविज्जि ओ तिण्णि धाराओ- खेवै जल की तीन धारा।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चन्द्रमा की किरणों के समान उज्जवल, मोती, प्रवाल, स्वर्ण और मरकत मणियों से जड़ित श्रेष्ठ कण्ठ वाली चाँदी की झारी को लेकर। 425।

सूत्रोक्त लाल कमल के पुष्प और नीलकमल के मकरंद से पीले तथा निर्मल सुगंधित जल से भरी उस मनोज्ञकारी झारी से जिनेन्द्र प्रभु के चरणारविंद के सामने जल की तीन धारायें छोड़नी चाहिये। 426।

कप्पूर-कुंकुमायरु-तुरुक्कमीसेण चंदणरसेण।
वरवहलपरिमलामोयवासियासासमूहेण।।427।।
वासाणुमग्गसंपत्तमुइयमत्तालिरावमुहलेण।
सुरमउडधिट्ठचलणं भत्तीए समलहिज्ज जिणं।।428।।

टव्वाटीका-

कप्पूर-कुंकुमायरु-तुरुक्कमीसेण- अर कपूर, केसर, अगर।
चंदणरसेण- संयुक्त चंदन का रस करि भगवांन नैं पूजैं।
वरवहलपरिमलामोय- किसौ छै वो चंदन घस्यौ थकौ सुगंध द्रव्यां संयुक्त, जिहकी श्रेष्ठ सुगंधता अत्यंत तिहकरि।
वासियासासमूहेण- सुगंध हुवा छै दसौं दिसा का समूह।

वासाणुमग्ग- अर जिहकी सुवास का प्रभाव करि।
संपत्तमुइयमत्तालि- आय प्राप्त हुवा छै सुगंध का मांतौ भ्रमर त्यांकी पंकति।
रावमुहलेण- तिहका सवद करि वाचाल छै।
सुरमउडधिट्ठचलणं भत्तीए- ईसौ जो चंदन कौ द्रव, तिह करि पूजै भक्ति करि।
समलहिज्ज जिणं- चरण भगवान का, किसा छै भगवान, देवां का मुकट करि पर्स्यां छै चरण ज्यांह का।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अब कपूर, केसर, अगर, चंदन मिश्रित, श्रेष्ठ सुगंध से दशों दिशाओं को सुगन्धित करने वाले। 427।

उस सुगन्ध के मार्ग का अनुकरण करने वाले मदमस्त एवं प्रसन्न भौंरों के शब्दों से गुंजित जो सुगंधित चंदन है उसके द्वारा देवताओं के मुकुटों से (निरन्तर नमस्कार किये जाने के कारण) चरण घिस गये हैं जिनके ऐसे श्री जिनेन्द्र भगवान का भक्ति से पूजन करें। 428।

ससिकंतखंडविमलेहिं विमलजलसित्त अइ सुयंधेहिं।
जिणपडिमपइट्ठयज्जियविसुद्धपुण्णंकुरेहिं च।।429।।
वर कलम-सालितंडुलचएहिं सुछंडिय दीहसयलेहिं।
मणुय-सुरासुरमहियं पुज्जिज्ज जिणिंदपयजुगलं।।430।।

टव्वाटीका-

ससिकंतखंडविमलेहिं- वहुरि अक्षत, चंद्रमा सारिखा सुंदर, उज्जल, अखंड, निर्मल।
विमलजलसित्त अइ सुयंधेहिं- अर निर्मल जल सौं धोया अति सुगंध।
जिणपडिमपइट्ठयज्जिय- त्यांह करि जिन प्रतिमा की पूजा करै।
विसुद्धपुण्णंकुरेहिं च- किसा छै अक्षत, उज्जल पुण्य का अंकुर छै मांनौं।

वर कलम-सालितंडुलचएहिं- अर श्रेष्ठ मिष्ठ सालि का चावल त्यांका समूह।
सुछंडिय दीहसयलेहिं- खोद्या, प्रालांवा, अखंडित त्यांकरि।
मणुय-सुरासुरमहियं पुज्जिज्ज- मनुक्ष तथा सुर, असुरां करि पूजित।
जिणिंदपयजुगलं- जो भगवान जिनेंद्र स्वामी त्यांहका पूजै चरण जुगल।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

चन्द्रकान्तमणि के खंड के समान उज्जवल, सुंदर, अखण्ड, निर्मल जल से धुले हुये, अत्यन्त सुगंधित अक्षत ऐसे प्रतीत होते हैं मानों जिनप्रतिमा प्रतिष्ठा से अर्जित विशुद्ध पुण्य के अंकुर ही हों। 429।

ऐसे श्रेष्ठ, अखण्ड, मिष्ठ, सुगंधित शालिधान्य से उत्पन्न अक्षत के समूह से, मनुष्य तथा सुरासुरों के द्वारा पूजनीय श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणयुगल का पूजन करें। 430।

मालइ-कयंब-कणयारि-चंपयासोय-बउल-तिलएहिं।
मंदार-णायचंपय-पउमुप्पल-सिंदुवारेहिं।।431।।
कणवीर-मल्लिया कचणार-मचकुंद-किंकराएहिं।
सुरवण्ण जूहिया-पारिजातय-जासवण-टगरेहिं।।432।।
सोवण्ण-रुप्पि-मेहिय-मुत्तादामेहिं बहुवियप्पेहिं।
जिणपय-पंकयजुयलं पुज्जिज्ज सुरिंदसयमहियं।।433।।

टव्वाटीका-

मालइ- मालती।

कयंब- कंदव।

कणयारि- कर्णिकार।

चंपयासोय- चंपक, असोक।

बउल- वकुल वोंलसरी।

तिलएहिं- तिलक।

मंदार- मंदार।

णायचंपय- नागचंपौ।

पउमुप्पल- लाल कमलनी, नीलकमल।

सिंदुवारेहिं- चंद्रविकासी कमल तथा।

कणवीर- कणवीर।

मल्लिया- मल्लिका।

कचणार- कचनार।

मचकुंद- मचकुंद।

किंकराएहिं- किंकरात।

'सुरवण्ण- देवों के वन में उत्पन्न होने वाले कल्पवृक्ष।

जूहिया- जूहि।

पारिजातय- पारिजात।

जासवण- जपाकुसुम।

टगरेहिं- तगर।

सोवण्ण-रुप्पि-मेहिय- इत्यादि सचित्त पुहपां सौं तौ आरंभी अव्रती पूजा करै, अर देसव्रती अलपारंभी सुवरण का पहुप, रूपा का पहुप, जडाऊ पहुप।

मुत्तादामेहिं- तथा मोत्यां की माला।

बहुवियप्पेहिं- अनेक प्रकार त्यांह करि।

जिणपय-पंकयजुयलं- जिनेश्वर का पद जुगल।

पुज्जिज्ज- पुजै।

---

*सुरवण्ण शब्द का अर्थ पाण्डुलिपि में नहीं था।

सुरिंदसयमहियं- किसा छै चरण कमल इंद्रां करी पूजनीक छैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मालती, कदम्ब, कर्णिकार (कनेर), चंपक, अशोक, बकुल, तिलक, मन्दार, नागचम्पक, पद्म (लाल कमल), उत्पल (नीलकमल), सिंदुवार (चंद्रविकासी कमल)। 431।

कर्णवीर (कर्नेर), मल्लिका, कचनार, मचकुन्द, किंकराल (अशोक वृक्ष), देवों के नन्दनवन में उत्पन्न होने वाले कल्पवृक्ष, जूही, पारिजातक, जपाकुसुम और तगर आदि उत्तम वृक्षों से उत्पन्न पुष्पों से। 432।

तथा सोने के फूल, चाँदी के फूल, जड़ाऊ फूल तथा मोती की मालाओं से सौ जाति के इन्द्रों से पूजित जिनेन्द्र प्रभु के चरण कमलों का पूजन करें। 433।

विशेष- आरंभी और अव्रती तो सचित्त पूष्पों से भगवान की पूजा करें। किन्तु देशव्रती और अल्पारंभी, स्वर्ण, रजत तथा मुक्ताफलों की मालाओं से जिनेन्द्र भगवान की पूजन करें।

दहि-दुद्ध-सप्पिमिस्सेहिं कलमभत्तेहिं बहुप्पयारेहिं।
तेवट्ठि-विंजणेहिं य बहुविहपक्कण्णभेएहिं।।434।।
रुप्पय-सुवण्ण-कंसाइथालिणिहिएहिं विविहभक्खेहिं।
पुज्जं वित्थारिज्जो भत्तीए जिणिंदपयपुरओ।।435।।

टव्वाटीका-

दहि- दहि।
दुद्ध- दुध।
सप्पिमिस्सेहिं- घृत सौं मिल्या।
कलमभत्तेहिं- मिष्ट भात त्यांह करि।
बहुप्पयारेहिं- और अनेक प्रकार का।
तेवट्ठि-विंजणेहिं य- व्यंजन त्यांह करि।
बहुविहपक्कण्णभेएहिं- अर वहुत प्रकार पकवान का भेद त्यांह करि।

रुप्पय- रूपां का।
सुवण्ण- तथा सोना का।
कंसाइथालिणिहिएहिं- तथा कांसा नैं आदि दे थाल त्यां विषै स्थाप्या।
विविहभक्खेहिं- नाना प्रकार का भोजन त्यांह करि।
पुज्जं वित्थारिज्जो- पूजा विस्तारणी।
भत्तीए- भक्ति करि।
जिणिंदपयपुरओ- जिनैंद्र का चरणां आगैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

दही, दूध और घी को मिलाकर अनेक प्रकार के चावलों के भात से, भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यंजनों से तथा बहुत प्रकार की जाति वाले पकवानों के द्वारा। 434।

चांदी, सोने तथा कांसे की थाली में नाना प्रकार की भोज्य सामग्री को सजाकर, अत्यन्त भक्तिभाव से जिनेन्द्र प्रभु के चरणों के सामने नेवैद्य से पूजन करें। 435।

दीवेहिं णियपहोहामियक्क तेएहि धूमरहिएहिं।
मंदं चलमंदाणिलवसेण णच्चंत अच्चीहिं।।436।।
घणपडलकम्मणिवहव्व दूर मवसारियंधयारेहिं।
जिणचरणकमलपुरओ कुणिज्ज रयणं सुभत्तीए।।437।।

टव्वाटीका-

दीवेहिं- वहुरि दीपां करि करै पूजा।

णियपहोहामियक्क- किसा छैं दीप? आपणी प्रभा का समूह करि।

तेएहि- वहुत सूर्यां का तेज नैं धरयां छै।

धूमरहिएहिं- अर धूम रहित छै।

मंदं- वहुरि मंद मंद चालती।

चलमंदाणिलवसेण णच्चंत अच्चीहिं- अैसी मंद पवन तिहका वस करि नांचै छै मांनौं क्रांति करि।

घणपडलकम्मणिवहव्व- अत्यंत सघणां पटल कर्मां का समूह त्यां समान।

दूर मवसारियंधयारेहिं- जो अंधकार सौ दूरि उडायां छै ज्यांह।

जिणचरणकमलपुरओ- अैसा दीपां करि जिनेसुर का चरण कमलां कै आगैं करै।

कुणिज्ज रयणं सुभत्तीय- रचना भक्ति करि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

दीपों से पूजन करते हुए, उनके स्वरूप के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जिन दीपकों के द्वारा प्रभु का पूजन करते हैं वे दीपक बहुत से सूर्यों के तेज को धारण करने वाले हैं, धुएँ से रहित हैं तथा उनकी लौ मन्द-मन्द वायु के चलने से मानों नृत्य ही कर रही हो। 436।

बहुत घने बादल रूपी कर्म समूह के समान अंधकार को दूर करने वाले दीपकों से अत्यंत भक्तिपूर्वक श्रीजिन के चरणारविंद की पूजन करें। 437।

कालयारु-णाह-चंदह-पुरुक्क-सिल्हारसाइदिव्वेहिं।
णिप्पणधूमवत्तीहिं परिमलाय ट्टियालीहिं।।438।।
उग्गसिहादेसियसग्ग-मोक्खमग्गेहि बहलधूमेहिं।
धूविज्ज जिणिंदपयारविंदजुयलं सुरिंदणुयं।।439।।

टव्वाटीका-

कालयारु-णाह-चंदह-पुरुक्क- कालौ, अगर, चंदर, कपूर।

सिल्हारसाइदिव्वेहिं- सिलारस इत्यादि द्रव्यां थकी।

णिप्पणधूमवत्तीहिं- निहपन जो धूमर्वती।

परिमलाय ट्टियालीहिं- सुगंध का आवर्त्त की पंकति तिह करि।

उग्गसिहादंसियसग्ग- किसी छै धूमवर्ती उग्र जो सिखी तिह करि दिखायो छै सुर्ग।

मोक्खमग्गेहि- मोक्ष को मार्ग ज्यांह।

बहलधूमेहिं- अैसी प्रबल जो धूप की धूम तिह करि।

धूविज्ज जिणिंदपयारविंदजुयलं- पूजै जिनेंद्र का पादरविदं जुगलं।

सुरिंदणुयं- किसा छै चरण जुगल? इंद्रा करि नमस्कार करिवा जोग्य छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कालागुरु, अगर, चंदन, कपूर और शिलाजीत आदि अत्यन्त सुगंधित द्रव्यों से बनी धूप की सुगंध से आकर्षित होकर मदोन्नत भँवरों की पंक्ति आ रही है अर्थात् वह धूप अत्यन्त सुगन्धित है। 438।

जब धूपदान में धूप को खेते हैं तब उसके धुएँ की उग्र शिखा ऊपर की तरफ गमन करती हुई मानों सीधे स्वर्ग एवं मोक्ष का मार्ग ही बता रही है, ऐसी श्रेष्ठ धूप के द्वारा, इन्द्रों द्वारा पूजनीय श्रीजिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों का पूजन करें। 439।

जंबीर-मोच-दाडिम-कवित्थ-पणस-णालिएरेहिं।
हिंताल-ताल-खज्जूर-णिंबु-नारंग-चारेहिं।।440।।
पूईफल-तिंदु-आमलय-जंबु-विल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं।
जिणपयपुरओ रयणं फलेहि कुज्जा सुपक्केहिं।।441।।

टव्वाटीका-

जंबीर-मोच- जंबीरी केला।

दाडिम- दाडिम।

कवित्थ- कैथ।

पणस- पनस।

णालिएरेहिं- नारियल।

हिंताल- हिंताल।

ताल- ताल।

खज्जूर- खजूर।

णिंबु- नींबू।

नारंग-चारेहिं- नारंगी, चिरोंची।

पूईफल-तिंदु- सुपारी, तेन्दु।

आमलय- आमला।

जंबु- जंबु।

विल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं- विल्ल फल इत्यादि सुगंध मिष्ट फलां करि।

जिणपयपुरओ- जिनेसुर का चरणां आगैं।

रयणं- रचना।

फलेहि कुज्जा- फलां करि करै।

सुपक्केहिं- पांकां करि।

भावार्थ- जो आरंभी, असंजमी होय सौं तौ हरया फल चढावै, अर अणुव्रती श्रावक होय सो सुका फल लवंगादिक चढावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जंबीर (नींबू विशेष), मोच (केला), अनार, कपित्थ (कैंथा), पनस, नारियल, हिंताल, ताल, खजूर, निम्बू, नारंगी, अचार (चिरोंजी)। 440।

पूगीफल (सुपारी), तेन्दु, आँवला, जामुन, विल्वफल आदि अनेक प्रकार के सुगंधित, मिष्ट और भली प्रकार से पके हुए फलों से जिन-चरणों के आगे रचना करें अर्थात् पूजन करें। 441।

अट्ठविहमंगलाणि य बहुविहपूजावयरणदव्वाणि।
धूवाणाईहि तिहा जिणपूयत्थं वितीरिज्जा।।442।।

टव्वाटीका-

अट्ठविहमंगलाणि य- अष्ट प्रकार मंगल द्रव्य।
बहुविह- अर वहुत प्रकार।
पूजावयरणदव्वाणि- पुजा का उपकरण द्रव्य।
धूवदहणाइ तहा- धूपाइणां इत्यादि।
जिणपूयत्थं- जिन पूजा के अर्थि।
वितीरिज्जा- चढावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

आठ प्रकार के मंगल द्रव्य (जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल) और पूजा के बहुत प्रकार के उपकरण जैसे थाली, ठौना, धूपदान तथा अनेक द्रव्यादि जिन प्रभु की पूजा के लिए बांटें। 442।

एवं चलपडिमाए ठवणा भणिया थिराए एमेव।
णवरिविसेसो आगरसुद्धं कुज्जा सुठाणम्मि।।443।।
चित्तपडिलेवपडिमाए दप्पणे दाविऊण पडिबिंबे।
तिलयं दाऊण तओ मुहवत्थं दिज्ज पडिमाए।।444।।
आगरसुद्धं च करेज्ज दप्पणे अह व अण्णपडिमाए।
एत्तियमेत्तविसेसा सेसविही जाण पुव्वं व।।445।।

टव्वाटीका-

'एवं- इसी प्रकार।
चलपडिमाए- चल प्रतिमा की।
ठवणा- स्थापना।
भणिया- कही गई है।
थिराए- अचल प्रतिमा की।
एमेव- भी इसी प्रकार।
णवरिविसेसो- न विशेष।
आगरसुद्धं- आकर शुद्ध।
कुज्जा- करें।
सुठाणम्मि- स्वस्थान में।
चित्तपडिलेवपडिमाए- चित्रलेपन प्रतिमा में।
दप्पणं- दर्पण में।

---

*विशेष गाथा नंबर 443, 444,445 की टव्वा टिक्का नहीं मिली।

दाविऊण- देकर।

पडिबिंबे- प्रतिबिंब में।

तिलयं- तिलक।

दाऊण- देकर।

तओ- उसके बाद।

मुहवत्थं- मुख पर वस्त्र।

दिज्ज- दें।

पडिमाए- प्रतिमा के।

आगरसुद्धं च करेज्ज- आकर शुद्ध करें।

दप्पणे- दर्पण में।

अह व- अथवा

अण्णपडिमाए- अन्य प्रतिमा में।

एत्तियमेत्तविसेसा- इतना ही मात्र विशेष।

सेसविही- शेष विधि।

जाण- जानें।

पुव्वं व- पूर्व।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार यह चल प्रतिमा अर्थात् जिनको स्थान से उठाया जा सकता है की स्थापना कही गई है। अचल प्रतिमा (जो स्वस्थान में ही स्थित रहती हैं) की स्थापना भी इसी प्रकार होगी। इसमें कुछ विशेष नहीं, मात्र इतना ही अन्तर है कि अचल प्रतिमा की आकर शुद्धि स्वस्थान में ही होगी। 443।

किसी दीवार, पर्वत या पाषाण पर बनाई गई, रंगों से बनाई या छपाई की गई प्रतिमा का शीशे (दर्पण में) में छवि (प्रतिबिम्ब) दिखाकर, मस्तक पर तिलक लगाकर प्रतिमा जी पर मुखवस्त्र दें। 444।

इसमें मात्र इतना ही भेद है कि आकर शुद्धि दर्पण में करें या अन्य प्रतिमा में करें। अन्य कोई भेद नहीं। शेष विधि पहले के समान ही जाननी चाहिये। 445।

एवं चरित्तणाणं पि कट्टिठ्ठमाकट्टिठ्ठमाण पडिमाणं।
जं कीरइ बहुमाणं ठवणापुज्जं हि तं जाण।।446।।

टव्वाटीका-

एवं चिरंतणाणं- ई भांति चारित्र कौ, अर ज्ञान कौ।

पि कट्टिठ्ठमाकट्टिठ्ठमाण- अर कर्त्तृम, अकर्तृम।

पडिमाणं- प्रतिमा कौ।

जं कीरइ- जो करै।

बहुमाणं- बहुत मान।

ठवणापुज्जं- स्थापना पूजा।

ति तं जाण- निश्चै सेती तिहनैं जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार चिरकालीन कृत्रिम और अकृत्रिम प्रतिमाओं का जो बहुमान, आदर एवं विनय किया जाता है, उनकी देखभाल, रखरखाव, उनका जीर्णोद्धार किया जाता है, यह सब स्थापना पूजा के अन्तर्गत जानना चाहिए।

या प्रतिष्ठा का लक्षण की विधि कही
स्थापना पूजा की या रीति बताई

जे पुव्वसमुद्दिट्ठा ठवणापूयाए पंच अहियारा।
चत्तारि तेसु भणिया अवसाणे पंचमं भणिमो।।447।।

टव्वाटीका-

जे पुव्वसमुद्दिट्ठा- मैं पहला कह्या छा।

ठवणापूयाए- स्थापना पूजा विषै।

पंच अहियारा- पंच अधिकार।

चत्तायि तेसु भणिया- च्यारि तौ त्यांह विषै कह्या कारापक 1, इंद्र 1, प्रतिमा 1, प्रतिष्ठा 1 एवं 4।

अवसाणे- अर पूजा का अधिकार कै अंत।

पंचमं भणिमो- पांचमौं अधिकार जो पूजा कौ फल सो कहिस्यौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो पूर्व गाथाओं में स्थापना पूजा के पाँच अधिकार कहे गये हैं उनमें से चार (कारापक, इन्द्र, प्रतिमा, प्रतिष्ठा) अधिकारों का कथन कर दिया गया है। अन्तिम अधिकार (पूजा का फल) का कथन अन्त में करेंगे।

द्रव्य पूजा

दव्वेण य दव्वस्स य जा पूजा जाण दव्वपूजा सा।
दव्वेण गंध-सलिलाइपुव्वभणिएण कायव्वा।।448।।

टव्वाटीका-

दव्वेण य- मनोज्ञ द्रव्यां करि।

दव्वस्स य- द्रव्य कहतां षट द्रव्य मैं सार, इसा परमात्म द्रव्य त्यांहकी।

जा पूजा- सो पूजा।

जाण- सौ जाणौं।

दव्वपूजा सा- द्रव्य पूजा।

दव्वेण- द्रव्य।

गंध- सुगंध, चंदन।

सलिलाइ- जलादिक।

पुव्वभणिएण- पूरवैं जे कह्या आठ त्यांह करि।

कायव्वा- करणी।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जलादि द्रव्य से प्रतिमादि द्रव्य की जो पूजा की जाती है, उसे द्रव्य पूजा जानना चाहिये। वह द्रव्य से अर्थात् जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप, फलादि अष्ट द्रव्यों से जो पूर्व में कही गई पूजन सामग्री है उससे करना चाहिये ।

तिविहा दव्वे पुज्जा सच्चित्ताचित्तमिस्सभेएण।
पच्चखजिणाईणं सचित्तपुज्जा जहाजोग्गं।।449।।
तेसिं च सरीराणं दव्वसुदस्स वि अचित्तपूजा सा।
जा पुण दोण्हं कीरइ णायव्वा मिस्सपूजा सा।।450।।

टव्वाटीका-

तिविहा दव्वे पुज्जा- सो द्रव्य पूजा तीन प्रकार की।

सच्चित्ताचित्तमिस्सभेएण- सचित्त, अचित्त, मिश्र भेद करि।

पच्चखजिणाईणं- प्रत्यक्ष तीर्थंकरादि की जो पूजा।

सचित्तपुज्जा जहाजोग्गं- सो कहजे सचित्त पूजा, काहेतैं? जो प्रत्यक्ष भगवान चैतन्य स्वरूप छैं तातैं चेतन की पूजा सचित्त पूजा कहजे।

तेसिं च सरीराणं- अर त्यांही का सरीर की अथवा प्रतिमा की।

दव्वसुदस्स वि अचित्तपूजा सा- अर द्रव्य सूत्र जो जिवांनी त्यांहकी जो पूजा सो कहिजे अचित्त पूजा।

जा पुण दोण्हं कीरइ- अर जो वहुरि दोन्यां की पूजा भगवान की, अर सास्त्र की।

णायव्वा मिस्सपूजा सा- सो जांणौं मिश्र पूजा।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वह द्रव्य पूजा तीन प्रकार की कही गई है- पहली सचित्त पूजा, दूसरी अचित्त पूजा और तीसरी मिश्र पूजा। प्रत्यक्ष में विराजमान तीर्थंकरादि एवं गुरु की यथायोग्य पूजन करना, सचित्त पूजा कहलाती है, क्योंकि प्रत्यक्ष भगवान एवं गुरु चेतन स्वरूप हैं और चेतन की पूजा सचित्त पूजा कही गई है। 449।

तीर्थंकर प्रभु के शरीर की अथवा प्रतिमा की पूजा करना और द्रव्य सूत्र जो जिनवाणी अर्थात् जिनेन्द्र भगवान की वाणी जो आगमस्वरूप है, उसकी पूजा अचित्त पूजा है। यदि दोनों की ही पूजा की जाये, उसको मिश्र पूजा समझना चाहिये। 450।

अहवा आगम-णोआगमाइभेएण बहुविहं दव्वं।
णाऊण दव्वपूजा कायव्वा सुत्तमग्गेण।।451।।

टव्वाटीका-

अहवा आगम- अथवा आगम।

णोआगमाइभेएण- नोआगमादि भेद करि।

बहुविहं दव्वं- बहुत प्रकार द्रव्य जिनादिक नैं।

णाऊण- जांणि करि।

दव्वपूजा- द्रव्य पूजा।

कायव्वा सुत्तमग्गेण- करणी सूत्र का मार्ग करि सो द्रव्य पूजा कहिजै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अथवा आगम और नोआगम आदि के भेद से बहुत प्रकार के द्रव्यों को जानकर, शास्त्रों के कथनानुसार द्रव्यपूजा करनी चाहिये।

या द्रव्य पूजा कही आगैं क्षेत्र पूजा कहै छै

क्षेत्र-पूजा

जिणजम्मण-णिक्खमणे णाणुप्पत्तीए तित्थचिण्हेसु।
णिसिहीसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा।।452।।

टव्वाटीका-

जिणजम्मण-णिक्खमणे- जिनेश्वर का जनमकल्याण का क्षेत्र तथा तप कल्याण का क्षेत्र।

णाणुप्पत्तीए- तथा केवलज्ञान उपजिवा का क्षेत्र।

तित्थचिण्हेसु- तथा मोक्ष प्राप्ति का क्षेत्र।

णिसिहीसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा- तीरथ इत्यादि तीरथ क्षेत्र तैंठै करणी पूजा सो क्षेत्र पूजा कहजै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनेन्द्र भगवान के पाँच कल्याणक होते हैं। उनकी जन्मकल्याणक भूमि, तप कल्याणक भूमि, केवलज्ञान उत्पत्ति कल्याणक भूमि, तीर्थचिह्न स्थान तथा निर्वाण कल्याणक भूमि एवं तीर्थ क्षेत्रों पर पूर्वकथानुसार विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। यह क्षेत्रपूजा कहलाती है।

या क्षेत्र पूजा कही आगैं काल पूजा कहै छै

काल-पूजा

गब्भावयार-जम्माहिसेय-णिक्खमण-णाण-णिव्वाणं।
जम्हि दिणे संजायं जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा।।453।।
इच्छुरस-सप्पि-दहि-खीर-गंध-जलपुण्णविविहकलसेहिं।
णिसिजागरणं च संगीय-णाडयाईहिं कायव्वं।।454।।
णंदीसरट्ठदिवसेसु तहा अण्णेसु उचियव्वेसु।
जं कीरइ जिणमहिमं विण्णेया कालपूजा सा।।455।।

टव्वाटीका-

गब्भावयार- और भगवंत का गर्भावतार।

जम्माहिसेय- जनमाभिषेक।

णिक्खमण-णाण- तप, ज्ञान।

णिव्वाणं- निर्वाण।

जम्हि दिणे संजायं- जिह दिन विषै हुवा।

जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा- जिनश्वर कौ न्हवण तिह दिन विषै करणौं।

इच्छुरस- ईख रस।

सप्पि- घ्रित।

दहि- दही।

खीर- दुध।

गंध- सुगंध जल का पवित्र।

जलपुण्णविविहकलसेहिं- नाना प्रकार का कलसां करि अभिषेक करणौं।

णिसिजागरणं च- वहुरि रात्रि का जागरण की प्रतिज्ञा करि।

संगीय-णाडयाईहिं कायव्वं- नृत्य, गीतादिक करणां।

णंदीसरट्ठदिवसेसु- अर अठाई जी का आठ दिवस विषै।

तहा अण्णेसु उचियव्वेसु- तथा और भी उचित परव्यां विषै।

जं कीरइ जिणमहिमं- जो करै भगवान की महिमा।

विण्णेया कालपूजा सा- जांणौ काल पूजा सो।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तीर्थंकर भगवान के पंचकल्याणकों के दिन अर्थात् गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान एवं निर्वाण कल्याणक के दिन उन तीर्थंकर भगवान का अभिषेक करना चाहिये।

अभिषेक किससे करना चाहिये? तो बताते हैं कि भगवान का अभिषेक गन्ने के रस से, घी, दूध, दही और सुगंध अर्थात् चंदन और जल से परिपूर्ण विविध कलशों से करना चाहिये। रात्रि में गीत, संगीत, नाटक आदि के द्वारा भक्तिपूर्वक प्रभु के गुणगान करते हुए जागरण करना चाहिये।

इसी प्रकार नन्दीश्वर पर्व अर्थात् अष्टाह्निका के आठ दिनों और अन्य जो भी उचित जैन पर्व होते हैं, उनमें भी जो जिनेन्द्र प्रभु का यशोगान किया जाता है, उसे कालपूजा समझना चाहिये।

या काल पूजा कही
भाव पूजा

काऊणाणंतचउट्ठयाइगुणकित्तणं सभत्तीए।
जं वंदणं तियालं कीरइ भावच्चणं तं खु।।456।।
पंचणमोक्कारपएहिं अहवा जावं कुणिज्ज सत्तीए।
अहवा जिणिंदथोत्तं वियाण भावच्चणं तं पि।।457।।
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं रूववज्जियं अहवा।
जं झाइज्जइ झाणं भावमहं तं विणिद्दिट्ठं।।458।।

टव्वाटीका-

काऊणाणंत- करिकैं अनंत।

चउट्ठयाइ- चतुष्टयादि।

गुणकित्तणं- गुणां कौ कीर्त्तन कहतां वर्णन।

सभत्तीए- भक्ति सहीत।

जं वंदणं- जो वंदना।

तियालं- त्रिकाल विषै।

कीरइ- करै।

भावच्चणं तं खु- सो निश्चै सेती भाव पूजा जाणौं।

पंचणमोक्कारपएहिं- पंचनमोकार पदां करि।

अहवा जावं कुणिज्ज- अथवा जाप करै।

सत्तीए- आपणी शक्ति प्रमाण।

अहवा- अथवा।

जिणिंदथोत्तं- जिनेंद्र कौ स्तोत्र भणैं।

वियाण- जाणौं।

भावच्चणं तं पि- भाव पूजा सो भी।

पिंडत्थं च पयत्थं- अर पिंडस्थ वहुरि पदस्थ।

रूवत्थं- रूपस्थ।

रूववज्जियं अहवा- अथवा रूपातीत।

जं झाइज्जइ झाणं- जो ध्यावै ध्यान।

भावमहं तं विणिद्दिट्ठं- भाव पूजा सो भी सूत्र विषै दिखाई।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अत्यन्त भक्तिपूर्वक जिनदेव के अनन्तचतुष्टय आदि गुणों का वर्णन करते हुए तीनों कालों में अर्थात् (प्रातः मध्याह्न, सायं) जो अर्चन, वंदन किया जाता है, उसे निश्चय से भावपूजा जानें।

पंचनवकार मन्त्र के पदों का यथाशक्ति जाप करना अथवा जिनेन्द्र भगवान की स्तोत्रादि के द्वारा गुणानुवाद करना भी भावपूजा समझना चाहिये।

अथवा शास्त्रों में निर्दिष्ट चार प्रकार के ध्यान- 1. पिंडस्थ, 2. पदस्थ, 3. रूपस्थ, 4. रूपातीत, जो ध्यान किया जाता है, उसको भावपूजा के अन्तर्गत लिया गया है।

पिंडस्थ-ध्यान

सियकिरणविप्फुरंतं अट्ठमहापाडिहेरपरियरियं।
झाइज्जइ जं णिययं पिंडत्थं जाण तं झाणं।।459।।

टव्वाटीका-

सियकिरणविप्पुफरंतं- उज्जल किरणां करि स्पुफरायमान।

अट्ठमहापाडिहेरपरियरियं- अर अष्टमहाप्रातिहार्या करि संयुक्त।

झाइज्जइ जं णिययं- ध्यावजे जो निजस्वरूप नैं।

पिंडत्थं- पिंड विषै तिष्टतानैं सो पिंडस्थ।

जाण तं झाणं- जाणौं तिह ध्यान नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उज्जवल, धवल किरणों से स्फुरायमान और अष्ट महाप्रातिहार्य सहित जो आत्मा का स्वयं का स्वरूप है अर्थात् उस केवली भगवान के समान जो निजात्म तत्त्व है, उसको पिंडस्थ ध्यान जानना चाहिये।

अहवा णाहिं च वियप्पिऊण मेरुं अहोविहायम्मि।
झाइज्ज अहोलोयं तिरियम्मं तिरियए वीए।।460।।
उड्ढम्मि उढ्ढलोयं कप्पविमाणाणि संघपरियंते।
गेविज्जमया गीवं अणुद्दिसं हणुपएसम्मि।।461।।
विजयं च वइजयंतं जयंतमवराजियं च सव्वत्थं।
झाइज्ज मुहपएसे णिलाडदेसम्मि सिद्धसिला।।462।।
तस्सुवरि सिद्धणिलयं जह सिहरं जाण उत्तमंगम्मि।
एवं जं णियदेहं झाइज्जइ तं पि पिंडत्थं।।463।।

टव्वाटीका-

अहवा णाहिं च- अथवा आपणी जो नाभि तिहनैं।

वियप्पिऊण मेरुं- सुमेर जांणि करि आपणां मन माहैं।

अहोविहायम्मि- अर नाभि सौं नीचा क्षेत्र विषै।

झाइज्ज अहोलोयं- ध्यावै अधोलोक नैं, जो म्हारी नाभि नीचलौं क्षेत्र अधौलोक छै।
तिरियम्मं तिरियए वीए- अर नाभि की वरावरि जो तिरछौ क्षेत्र दोन्यौं तरफ कौ तिहनैं जाणौं मध्यलोक।

उड्ढम्मि उड्ढलोयं- अर नाभि सौं ऊर्ध्व क्षेत्र विषै ऊर्ध्वलोक नैं जांणौं।
कप्पविमाणाणि- तिहमैं सोला सुर्ग तौ।
संघपरियंते- कांधा परजंत जाणौं।
गेविज्जमया गीवं- अर ग्रीवा जो कंठ, तिह परजंत नवग्रीवां नैं जाणौं।
अणुद्दिसं हणुपएसम्मि- अर कंठ ऊपरि ठोडी परजंत नवअनुत्तर जाणौं।

विजयं च वइजयंतं- अर विजयवैजयंत।
जयंतमवराजियं- जयंत वहुरि अपराजित।
च सव्वत्थं- अर सर्वार्थसिद्धि।
झाइज्ज- ध्यावै।
मुहपएसे- मुख कै स्थानक।
णिलाडदेसम्मि सिद्धसिला- अर ललाट विषै ध्यावै सिद्धसिला नैं।

तस्सुवरि- वहुरि तिहकै ऊपर।
सिद्धणिलयं- सिद्धक्षेत्र।
जह सिहरं- नैं ध्यावै जगत कौं सिखर।
जाण उत्तमंगम्मि- जाणौं आपणां मस्तक विषै।
एवं जं णियदेहं- ई भांति जो निज देह नैं।
झाइज्जइ- ध्यावै।
तं पि पिंडत्थं- तिहकौ भी नाम पिंडस्थ कहजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अथवा अपने नाभिस्थान में सुमेरु पर्वत की कल्पना करके उस नाभि से नीचे के क्षेत्र में अधोलोक की कल्पना करें, नाभि के पास में जो दोनों तरफ तिरछा स्थान है उसमें मध्य लोक का ध्यान करें।

नाभि से ऊपर के भाग में उध्र्व लोक का ध्यान करें। उध्र्व लोक में सोलह स्वर्ग होते हैं, उनका चिंतन करें। इसमें कंधे तक के स्थान में सोलह कल्पविमानों की कल्पना करें, इसके ऊपर कंठ पर नवग्रैवेयकों का चिंतन करें तथा कंठ से ऊपर ठोड़ी पर्यन्त नव अनुदिशों का ध्यान करें।

ठोड़ी से ऊपर मुखमंडल पर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि का चिंतन करें तथा मस्तक पर सिद्धशिला का ध्यान करें।

मस्तक से ऊपर जगत के शिखर के समान सिद्धक्षेत्र का चिंतन करना चाहिये। इस प्रकार निजदेह में तीन लोक का ध्यान करने को भी पिंडस्थ ध्यान जानना चाहिये।

यो पिंडस्थ ध्यान कौ स्वरूप कह्यौ

पदस्थ-ध्यान

जं झाइज्जइ उच्चारिऊण परमेट्ठिमंतपयममलं।
एयक्खरादि विविहं पयत्थझाणं मुणेयव्वं।।464।।

टव्वाटीका-

जं झाइज्जइ उच्चारिऊण- जो ध्यावै उचारि करि।

परमेट्ठिमंतपयममलं- पंच परमेष्ठी का मंत्र पद हृदय कमल विषै।

एयक्खरादि विविहं- एक अक्षर नैं आदि दे, नाना प्रकार का, एक अक्षर ओंकार।

पयत्थझाणं मुणेयव्वं- पदस्थ ध्यान जाणौं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

एक अक्षर ॐ को आदि लेकर अनेक प्रकार के पंच परमेष्ठी वाचक पवित्र मंत्र पदों का (ॐ, अर्हं, ॐ नमः, अर्हं नमः, अरहंत, अ सि आ उ सा, ॐ नमः सिद्धेभ्य, इत्यादिद्ध उच्चारण करके जो ध्यान किया जाता है, उसे पदस्थ ध्यान जानना चाहिये।।

सौ यो पदस्थ ध्यान कौ स्वरूप कह्यो आगैं रूपस्थ कौं स्वरूप कहै छै

सुण्णं अयारपुरओ झाइज्जो उड्ढरेह-बिंदुजुयं।
पावंधयारमहणं समंतओ फुरियसियतेयं।।465।।

टव्वाटीका-

सुण्णं अयारपुरओ- सुन्य कहतां हकाराक्षर, सो अकार कै पाछैं।

झाइज्जो- ध्यावै अर।

उड्ढरेह- हकार कै माथै रेफ।

बिंदुजुयं- अर वींदा करि संयुक्त।

भावार्थ- अर्हं यो मंत्र ध्यावै।

पावंधयारमहणं समंतओ- किसौ ध्यावै? पाप रूप अंधकार कौ नास करनहारो सर्व प्रकारैं।

फुरियसियतेयं- स्फुरायमान सूर्य सारिखौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पाप रूपी अंधकार का नाश करने वाला और चारों ओर से सूर्य के समान स्फुरायमान शुक्ल तेजवाला तथा ऊर्ध्व रेफ अर्थात् ऊपर चढ़ा हुआ र वाला और बिन्दु से युक्त अकार पूर्वक हकार का अर्थात् अर्हं इस मंत्र का ध्यान करें।

अ सि आ उ सा सुवण्णा झायव्वा णंतसत्तिसंपण्णा।
चउपत्तकमलमज्झे पढमाइकमेण णिविसिऊणं।।466।।

टव्वाटीका-

अ सि आ उ सा सुवण्णा- बहुरि अ, सि, आ, उ, सा, ए सुंदर अक्षर अ कहतां अरहंत, सि कहतां सिद्ध, आ कहतां आचार्य, उ कहतां उपाध्याय, सा कहतां साधु।

झायव्वा णंतसत्तिसंपण्णा- ध्यावणौं अनंत शक्ति करि संयुक्त।

चउपत्तकमलमज्झे- सो किसी भांति ध्यावै च्यारि पत्र कौ कमल मध्य कर्णिका करि युक्त।

पढमाइकमेण णिविसिऊणं- सो अनुक्रमैं कर्णिका विषै आ प्रथम पत्र विषै, सि दुजा पत्र विषै, आ तिजा विषै, उ चौथा विषै, सा कर्णिकादि विषै, पांच अक्षरां नैं थापि करि ध्यावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अ, सि, आ, उ, सा इन अनन्त शक्ति सम्पन्न सुवर्णों को मध्य कर्णिका संयुक्त चार पत्र वाले कमल के भीतर प्रथमादि क्रम से स्थापित कर ध्यान करना चाहिये। अर्थात् कमल के मध्य भाग में स्थित कर्णिका में अ (अरहंत)

को, पूर्व दिशा के पत्र पर सि (सिद्ध) को, दक्षिण दिशा के पत्र पर आ (आचार्य) को, पश्चिम दिशा के पत्र पर उ (उपाध्याय) को और उत्तर दिशा के पत्र पर सा (साधु) को स्थापित कर उनका ध्यान करें।

ते चिय वण्णा अट्ठदल पंचकमलाण मज्झदेसेसु।
णिसिऊण सेसपरमेट्ठि अक्खरा चउसु पत्तेसु।।467।।
रयणत्तय-तव-पडिमा-वण्णा णिविसिऊण सेसपत्तेसु।
सिर-वयण-कंठ-हियए णाहिपएसम्मि झायव्वा।।468।।
अहवा णिलाडदेसे पढमं बीयं विसुद्धदेसम्मि।
दाहिणदिसाइ णिविसिऊण सेसकमलाणि झाएज्जो।।469।।

टव्वाटीका-

ते चिय वण्णा- वहुरि ते ही अक्षर।

अट्ठदल- आठ आठ पत्र का।

पंचकमलाण- पांच कमलां मैं ध्यावै।

मज्झदेसेसु- मध्य कर्णिका विषै तौ।

णिसिऊण सेसपरमेट्ठि- थापि करि अ अर वाकी का परमेष्ठी का।

अक्खरा- अक्षर सि, आ, उ, सा ए।

चउसु पत्तेसु- च्यारि च्यारि पात्रां विषै थापै।

रयणत्तय-तव-पडिमा- अर रतनत्रय का, अर तप का आदि का अक्षर।

वण्णा णिविसिऊण सेसपत्तेसु- दरसण कौ आदि अक्षर द, ज्ञान कौ आदि अक्षर "ज्ञ", चारित्र कौ आदि अक्षर च, तप कौ आदि अक्षर त, ई भांति ए 4 अक्षर वाकी का च्यारि पत्रां कै विषै स्थापि करि ध्यावै।

सिर- सिर।

वयण- मुख।

कंठ- कंठ।

हियए णाहिपएसम्मि- हिरदै अर नाभि सथानक विषै।

झायव्वा- ध्यावणां कमल पांच।

अहवा णिलाडदेसे- अथवा ललाट स्थानक विषै थापै।

पढमं- पहलौ कमल।

बीयं विसुद्धदेसम्मि- अर दूजो थापै हिरदै विषै।

दाहिणदिसाइ णिविसिऊण- दक्षिण दिसादि विषै थापि करि।

सेसकमलाणि झाएज्जो- वाकी का कमल अर ध्यान करिवौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पुनः अष्टदल अर्थात् आठ पत्र वाले पांच कमल में मध्य कर्णिका में अ (अरहंत) को स्थापित कर अन्य पत्रों में पूर्व की भांति चार दिशाओं में शेष चार परमेष्ठी के अक्षरों सि (सिद्ध), आ (आचार), उ (उपाध्याय), सा (साधु) को स्थापित कर।

तथा विदिशाओं में शेष चार पत्रों पर रत्नत्रय और तपवाचक पदों के प्रथम अर्थात् आदि के अक्षरों को अर्थात् दर्शन का द, ज्ञान का ज्ञा, चारित्र का चा और तप का त को क्रमशः स्थापित करके, इस प्रकार के अष्ट दल वाले कमल का सिर, मुख, कंठ, हृदय और नाभिप्रदेश इन पाँच स्थानों में पांच कमलों का ध्यान करना चाहिये।

अथवा प्रथम कमल को ललाट देश में द्वितीय कमल को विशुद्ध देश अर्थात् हृदय पर और शेष कमलों को दक्षिण आदि दिशाओं में स्थापित कर उनका ध्यान करना चाहिये।

अट्ठदलकमलमज्झे झाएज्ज णहं दुरेहबिंदुजुयं।
सिरिपंचणमोक्कारेहिं वलइयं पत्तरेहासु।।470।।
णिसिऊण णमो अरहंताणं पत्ताइमट्ठवग्गेहिं।
भणिऊण वेढिऊण य मायाबीएण तं तिउणं।।471।।

टव्वाटीका-

अट्ठदलकमलमज्झे- वहुरि आठ पत्र का कमल कै मध्य कर्णिका विषै।

झाएज्ज णहं- ध्यावै हकार अक्षर नैं।

दुरेहबिंदुजुयं- किसी तरह ध्यावै दोय रेफ अध अर ऊर्ध वींदी करि संयुक्त ध्यावै ह्रीं मंत्र नैं ध्यावै।

सिरिपंचणमोक्कारेहिं- अर श्री पंचनमोकारां करि।

वलइयं पत्तरेहासु- मंडित पत्र रेखा विषै।

णिसिऊण- थापि करि।

णमो अरहंताणं- णमो अरहंताणं ए सात अक्षर।

पत्ताइमट्ठवग्गेहिं- आदि का पत्र विषै अष्ट वर्ग करि।

भणिऊण वेढिऊण य- भरि करि वहुरि वेटि करि।

'मायाबीएण तं तिउणं- मायाबीज से उसको तीन बार।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अष्ट दल वाले कमल की मध्य कर्णिका में दो रेफ और बिन्दु से युक्त हकार के अर्थात् 'हँ' पद को स्थापित करके कर्णिका के बाहर पत्र रेखाओं पर पंच णमोकार पदों के द्वारा वलय बनाकर ध्यान करें । 470।

उनमें क्रमशः 'णमो अरहंताणं' आदि पाँचों पदों को स्थापित करके और आठों पत्रों को आठ वर्णों के द्वारा चित्रित करके पुनः उसे मायाबीज के द्वारा तीन बार वेष्टित करके उसका ध्यान करें । 471।

आयास-फलिहसंणिह-तणुप्पहासलिलणिहिणिब्बुडंतं।
णर-सुरतिरीडमणिकिरणसमूहरं जियपयंबुरुहो।।472।।
वरअट्ठपाडिहेरेहिं परिउट्ठो समवसरणमज्झगओ।
परमप्पाणंतचउट्ठयण्णिओ पवणमग्गट्ठो।।473।।
एरिसओ ज्झिय परिवारवज्जिओ खीरजलहिमज्झे वा।
वरखीरवण्णकंदुट्ट कण्णियामज्झदेसट्ठो।।474।।
खीरुवहिसलिलधराहिसेयधवलीकयंगसव्वंगो।
जं झाइज्जइ एवं रूवत्थं जाण तं झाणं।।475।।

टव्वाटीका-

आयास-फलिहसंणिह- वहुरि श्रीजी कौ साकार स्वरूप ध्यावै, किसौ ध्यावै? आकास समान निर्मल जो फटिक मणि तिह सारिखौ।

---

*गाथा नंबर 471 के अंतिम पद "मायाबिएण तं तिठण" की टव्वा टिक्का नहीं मिली।

तणुप्पहासलिलणिहिणिब्बुडंतं- अर आपणां सरीर की जो प्रभा, तिह रूप समुद्र विषै मगन।
णर-सुर- वहुरि किसौ रूप ध्यावै? मनुष्य, देव।

तिरीडमणि- त्यांहका मुकटां की जो मणि।
किरणसमूहरं- त्यांहकी किरण्यां का समूह करि सोहै छै।
जियपयंबुरुहो- चरण कमल जिहका।

वरअट्ठपाडिहेरेहिं- श्रेष्ठ जे अष्ट प्रातिहार्य त्यांकरि।
परिउट्ठो- मंडित।
समवसरणमज्झगओ- अर समवसरण कै मध्य विराजतौ।
परमप्पाणंतचउट्ठयण्णिओ- परमात्मा, अनंत चतुष्टय कहतां-अनंत ज्ञान, अनंत दरसन, अनंत सुख, अनंत वीर्यादि अनंत गुण संयुक्त छै।
पवणमग्गट्ठो- अर आकास विषै तिष्ठै छै।

एरिसओ च्चिय- इसौ उतकिष्ट स्वरूप कौ धारी।
परिवारवज्जिओ- अर समस्त स्त्री, पुत्र, परिवार वर्जित वीतराग।
खीरजलहिमज्झे वा- क्षीर समुद्र कै मध्य जैसैं।
वरखीरवण्णकंदुट्ट- श्रेष्ठ सुवर्ण का कमल त्यांहकी।
कण्णियामज्झदेसठ्ठो- कर्णिका तिह ऊपरि, मध्य भाग विषै, अलिप्त आकास विषै, विराजतौ थकौ।

खीरुवहिसलिलधराहिसेयधवली- आपणी प्रभा रूप जो क्षीर सागर तिह की धारा त्यांह का सनान करि उज्जल।
कयंगसव्वंगो- कीयो छै सर्व अंग जिह।
जं झाइज्जइ एवं- जो ध्यावै इसा रूप नैं।
रूवत्थं जाण तं झाणं- रूपस्थ जाणौं तिह ध्यान नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

मनुष्य और देवों के मुकुटों में लगी हुई मणियों की किरणों के समूह से सुशोभित हैं चरण-कमल जिनके, ऐसे तथा। 472।

श्रेष्ठ आठ महाप्रातिहार्यों से परिवृत अर्थात् मंडित, समवसरण के मध्य में विराजमान, परम अनन्त चतुष्टय से अर्थात् अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख एवं अनन्तवीर्य से संयुक्त, आकाश में स्थित अरहंत भगवान का जो ध्यान किया जाता है, वह रूपस्थ ध्यान है। 473।

ऐसे ही अर्थात् उपर्युक्त सर्व शोभा से युक्त किंतु समस्त स्त्री, पुत्र, परिवार वर्जित अथवा समवसरणादि परिवार से रहित और क्षीरसागर के मध्य में स्थित अथवा उत्तम क्षीर के समान धवल वर्ण के कमल की कर्णिका के ऊपर मध्य भाग में अलिप्त, आकाश में स्थित। 474।

अपनी प्रभा रूप क्षीरसागर के जल की धाराओं के अभिषेक से धवल हो रहा है सर्वांग जिनका, ऐसे अरहन्त परमेष्ठी का जो ध्यान किया जाता है, उसे रूपस्थ ध्यान जानना चाहिये। 475।

यो रूपस्थ ध्यान कौ व्याख्यान कीयो आगैं रूपातीत ध्यान कहै छै

रूपातीत-ध्यान

वण्ण रस-गंध-फासेहिं वज्जिओ णाण-दंसणसरूवो।
जं झाइज्जइ एवं तं झाणं रूवरहियं ति।।476।।

टव्वाटीका-

वण्ण रस-गंध-फासेहिं- वरण 5, रस 5, गंध 2, सपरस 8।

वज्जिओ णाण-दंसणसरूवो- त्यांह करि वर्जित अर ज्ञान, दर्शन स्वरूप।

जं झाइज्जइ एवं- ध्याय जे ई भांति एकाग्र चित्त होय करि।

तं झाणं- सो ध्यान।

रूवरहियं ति- रूपातीत इसौ नाम जांनौं।

भावार्थ- नाम रूप थकी रहीत जो ध्यान स्वरूप कौ अवलोकन, सो रूपातीत कहजे।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सिद्ध परमेष्ठी भगवान जो वर्ण, रस, गंध और स्पर्श से रहित हैं, वे केवल ज्ञान-दर्शन स्वरूप हैं, उनका एकाग्र चित्त होकर ध्यान करना ही रूपातीत ध्यान है।

यो रूपातीत-ध्यान कह्यो

अहवा आगम-णोआगमेहि भेएहिं सुत्तमग्गेण।
णाऊण भावपुज्जा कायव्वा देसविरएहिं।।477।।

टव्वाटीका-

अहवा आगम- अथवा आगम भावपूजा।

णोआगमेहि- तथा नोआगम भावपूजा।

भेएहिं सुत्तमग्गेण- यां भेद करि संयुक्त सो सूत्र कै अनुसार।

णाऊण- जांणि करि।

भावपुज्जा- भाव पूजा।

कायव्वा- करणी।

देसविरएहिं- श्रावक नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अथवा आगम भावपूजा और नोआगम भावपूजा आदि के भेद से शास्त्रानुसार भावपूजा को जानकर, श्रावकों को भावपूजा करनी चाहिये ।

ए भाव पूजा का लक्षण कह्या

एसा छव्विहपूजा णिच्चं धम्माणुरायरत्तेहिं।
जहजोग्गं कायव्वा सव्वेहिं पि देसविरएहिं।।478।।

टव्वाटीका-

एसा छव्विहपूजा- ए प्रत्यक्ष छह प्रकार की पूजा।

णिच्चं- सदा।
धम्माणुरायरत्तेहिं- धर्मानुराग विषैरक्त पुरुषां नैं।
जहजोग्गं कायव्वा- जथाजोग्य करणी।
सव्वेहिं पि- सर्व ही।
देसविरएहिं- देशव्रती कहतां श्रावक त्यांहनैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

यह छह प्रकार की पूजा धर्मानुरागी सर्व देशव्रती श्रावकों को यथायोग्य सदा ही करनी चाहिये।

ए छह प्रकार पूजा कही- आगैं पूजा का फल कहै छै

एयारसंगधारी जीहसहस्सेण सुरणरिंदो वि।
पूजाफलं ण सक्कइ णिस्सेसं वण्णिउं जम्हा।।479।।
तम्हा हं णियसत्तीइ थोयवयणेण किं पि वोच्छामि।
धम्माणुरायरत्तो भवियजणो होइ जं सव्वो।।480।।

टव्वाटीका-
एयारसंगधारी- ग्यारा अंग को पाठी।
जीहसहस्सेण- जीभ सहश्र करि वरणन करै नागेंद्र अथवा।
सुरणरिंदो वि- सुरेंद्र, नरेंद्र।
पूजाफलं- पूजा का फल।
ण सक्कइ- तौ भी समर्थ नहीं।
णिस्सेसं वण्णिउं जम्हा- समस्त वरणिवानैं जातैं।

तम्हा हं णियसत्तीइ- तातैं हुं निज शक्ति करि।
थोयवयणेण- स्तोक कहांतां अलप मात्र जे वचन त्यांह करि।
किं पि वोच्छामि- क्यौंयक कहूं छूं।
धम्माणुरायरत्तो- धर्मानुराग विषै अनुरागी।
भवियजणो- भव्य जीव।
होइ जं सव्वो- होइ जातैं सर्व ही।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

ग्यारह अंगधारी, देवेन्द्र अर्थात् देवों में श्रेष्ठ इन्द्र भी सहस्र जिह्वाओं से पूजा के समस्त फल का वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

तब मैं यथाशक्ति अल्प वचनों के द्वारा कुछ कहूँगा, जिससे सभी भव्य जीव धर्मानुराग में अनुरक्त हो जायें।

पूजनफल-वर्णन

कुत्थुंभरिदलभेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं।
सरिसवमेत्तं पि लहेइ सो णरो तित्थयरपुण्णं।।481।।

जो पुण जिणिंदभवणं समुण्णयं परिहि-तोरणसमग्गं।
णिम्मावइ तस्स फलं को सक्कइ वण्णिउं सयलं।।482।।

टव्वाटीका-

कुत्थुंभरिदलभेत्ते- कठूंभरि का पत्र प्रमान भी।

जिणभवणे जो ठवेइ- जिन मंदिर कराय अर तिह विषै जो थापै।

जिणपडिमं- विधिपूर्वक जिन प्रतिमा।

सरिसवमेत्तं पि- सरसौं का दाणां मात्र भी।

लहेइ सो णरो- पावै सो नर।

तित्थयरपुण्णं- तीर्थंकर नाम पुन्य नैं।

जो पुण जिणिंदभवणं- जो वहुरि जिनेंद्र कौ मंदिर।

समुण्णयं- ऊंचौ सिखरवंध।

परिहि-तोरणसमग्गं- परकमां अर तोरण त्यांह करि संयुक्त।

णिम्मावइ- करवावै।

तस्स फलं- तिह का फल।

को सक्कइ वण्णिउं- कुण (कौन) वर्णन कर सकै।

सयलं- संपूर्ण।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जो मनुष्य धनिये के पत्ते के बराबर जिनभवन बनवाकर उसमें सरसों के दाने प्रमाण अर्थात् सरसों के दाने जितनी बड़ी प्रतिमा को विधिपूर्वक् स्थापित करता है, वह मनुष्य तीर्थंकर पद के पुण्य बंध करता है। 481।

तब जो कोई ऊँचा शिखरबन्ध, परिक्रमा और तोरण से युक्त जिनमंदिर बनवता है, उसका समस्त फल वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है। 482।

जलधाराणिक्खेवेण पावमलसोहणं हवे णियमं।
चंदणलेवेण णरो जायइ सोहग्गसंपण्णो।।483।।

टव्वाटीका-

जलधाराणिक्खेवेण- जलधारा का चढ़ावा करि।

पावमलसोहणं हवे णियमं- पाप रूप मैल कौ सोधन होइ निश्चय सेती।

चंदणलेवेण णरो- अर चंदन का चढ़ावा करि मनुष्य।

जायइ सोहग्गसंपण्णो- होइ सौभाग्य करि संपूर्ण।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पूजन के समय जिन भगवान के समक्ष जलधारा छोड़ने से नियम से पाप रूपी मैल का शोधन होता है। चंदन के लेप से अर्थात् चंदन चढ़ाने से मनुष्य सौभाग्य से सम्पन्न होता है।

जायइ अक्खयणिहि-रयणसामिओ अक्खएहि अक्खोहो।
अक्खीणलिद्धजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ।।484।।

टव्वाटीका-

जायइ अक्खयणिहि-रयणसामिओ- अर होइ नव निधि जे अखै भंडार अर चौदह रतन कौ स्वामी चक्रवरति।

अक्खएहि अक्खोहो- अक्षतां का चढ़ावा करि।

अक्खीणलिद्धजुत्तो- आकुलता रहित होय अर अक्षीण लब्धि करि युक्त होय।

अक्खयसोक्खं च पावेइ- वहुरि अविनासी सुख पावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अक्षतों से पूजन करने वाला मनुष्य अक्षय नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी चक्रवर्ती होता है, (वह) सदा आकुलता (क्षोभ) रहित रहता है, अक्षीण लब्धि से युक्त होता है और अविनाशी सुख अर्थात् मोक्ष को पाता है।

कुसुमेहिं कुसेसयवयणु तरुणीजणणयण-कुसमवरमाला-।
वलएणच्चियदेहो जयइ कुसुमाउहो चेव।।485।।

टव्वाटीका-

कुसुमेहिं- पहुप चढ़ावा करि।

कुसेसयवयणु- कमलवदनी।

तरुणीजणणयण- जे स्त्री जन त्यांहका नेत्रां रूप।

कुसमवरमाला- जो पहुप माला।

वलएणच्चियदेहो- त्यांहका समूह करि पूजनीक छै देह जिहकी अैसौ रूपवान।

जयइ- होइ।

कुसुमाउहो चेव- अथवा कामदेव ही होय, चौईस कामदेव हौहि, त्यां समान संसार मैं रूपवान अर सीलवान नही, तद्भव मोक्ष होहि छै। सो पूजा का फल करि कामदेव पद पावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पुष्पों से पूजा करने वाला नर कमल के समान सुन्दर मुख वाला तरुणीजनों के नेत्र रूपी पुष्पमालाओं से पूजनीय देह वाला कामदेव होता है।

जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंति-तेय संपण्णो।
लावण्णजलहिवेलातरंगसंपावियसरीरो।।486।।

टव्वाटीका-

जायइ णिविज्जदाणेण- अर होय नैवेद्य का चढ़ावा करि।

सत्तिगो- सकतिवंत।

कंति-तेय संपण्णो- कांति अर तेज करि मंडित।

लावण्णजलहिवेला- लावण्यता रूप जो समुद्र।

तरंगसंपावियसरीरो- तिहकी तरंग त्यांह करि पवित्र छै सरीर जिहकौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

नैवेद्य चढ़ाने से मनुष्य शक्तिवान, कान्तिवान और तेजवान अर्थात् तेज से सम्पन्न और लावण्य रूप जो समुद्र उसकी तटवर्ती तरंगों से पवित्र शरीर वाला अर्थात् अत्यन्त सुन्दर होता है।

दीवेहिं दीवियासेसजीवदव्वाइतच्चसब्भावो।
सब्भावजणियकेवलपईवतेएण होइ णरो।।487।।

टव्वाटीका-

दीवेहिं- अर दीप का चढ़ावा करि दीप्त ऋधि कौ धारी होइ, दस ही दिसा विषै उद्योत कीयो छै जिह ऐसौ सुंदर होइ अर।

दीवियासेसजीवदव्वाइतच्चसब्भावो- जीव सहित द्रव्य अर तत्व त्यांह कौ उद्योत करनहारो होइ।

सब्भावजणिय- अर सुद्ध भावां करि उपजायौ छै।

केवलपईवतेएण- केवल ज्ञान रूप प्रकास तिह करि प्रकास रूप।

होइ णरो- होय जीव।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

दीपों से पूजन करने वाला मनुष्य शुद्ध भावों के योग से दसों दिशाओं को दीप्तमान करने वाली दीप्त ऋद्धि अर्थात् केवलज्ञान रूपी दीपक से समस्त जीव द्रव्यादि तत्त्वों के रहस्यों को प्रकाशित करने वाला अर्थात् केवलज्ञानी होता है।

धूवेण सिसिरयरधवलकित्तिधवलियजयत्तओ पुरिसो।
जाइय फलेहि संपत्तपरमणिव्वाणसोक्खफलो।।488।।

टव्वाटीका-

धूवेण- अर धूप का खेवा करि।

सिसिरयरधवल- चंद्रमा की किरण समान उज्जल।

कित्तिध्वलियजयत्तओ- जो कीर्ति तिह करि उज्जल कीयो छै तीन लोक जिह इसौ।

पुरिसो- पुरुष होय।

जाइय फलेहि- अर फल का चढ़ावा करि होइ।

संपत्तपरमणिव्वाणसोक्खफलो- सो पात्र परम निर्वाण का सुख फल कौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

धूप खेने वाला अर्थात् धूप से पूजा करने वाला मनुष्य चन्द्रमा के समान धवल अर्थात् उज्ज्वल कीर्ति से तीन लोक को उज्ज्वलित करने वाले यशवाला होता है। जो मनुष्य फलों से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है, वह परम निर्वाण के सुखरूप फल को प्राप्त करने वाला होता है।

घंटाहिं घंटसद्दाउलेसु पवरच्छराणमज्झम्मि।
संकीडइ सुरसंघायसेविओ वरविमाणेसु।।489।।

टव्वाटीका-

घंटाहिं- अर भगवांन कै घंटा का चढावा करि।

घंटसद्दाउलेसु- घंटा का शब्द करि सुंदर ऐसौ देवलोक तिह विषै।

पवरच्छराणमज्झम्मि- श्रेष्ट अपछरां कै मध्य।

संकीडइ- क्रीडा करै।

सुरसंघायसेविओ- देवां का समूह करि सेयो थकौ।

वरविमाणेसु- मनोहर विमांनां विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनमंदिर में घंटा अर्पण करने वाला अर्थात् चढ़ाने वाला मनुष्य घंटों के शब्दों से व्याप्त, श्रेष्ठ विमानों में सुर-समूह से सेवित होकर प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ अप्सराओं के मध्य में क्रीड़ा करता है।

छत्तेहिं एयछत्तं भुंजइ पुहवी सवत्तपरिहीणो।
चामरदाणेण तहा विज्जिज्जइ चमरणिवहेहिं।।490।।

टव्वाटीका-

छत्तेहिं- अर छत्र का चढावा करि।

एयछत्तं- एक छत्र।

भुंजइ पुहवी- भोगवै प्रथवी।

सवत्तपरिहीणो- सरीक रहित।

चामरदाणेण तहा- तथा जिनेसर कै चमर चढावा करि।

विज्जिज्जइ- ढलै चमरां कां।

चमरणिवहेहिं- समूह तिहकै सिरि।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

छत्र दान करने से मनुष्य, शत्रु रहित होकर पृथ्वी को एक छत्र भोगता है तथा चमरों के दान से उसके ऊपर चमरों के समूह ढोरे जाते हैं।

अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं।
खीरोयजलेण सुरिंदप्पमुहदेवेहिं भत्तीए।।491।।

टव्वाटीका-

अहिसेयफलेण- अर कलसाभिषेक का फल करि।

णरो अहिसिंचिज्जइ- पुरुष सपडाय जे।

सुदंसणस्सुवरिं- सुमेर के सिखरि।

खीरोयजलेण- क्षीर सागर का जल करि।

सुरिंदप्पमुहदेवेहिं भत्तीए- इंद्रादिक देवतां करि भक्ति पूर्वक।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक करने के फल से मनुष्य सुदर्शन पर्वत के ऊपर देवेन्द्र (मुख्य देवों) के द्वारा क्षीरसागर के जल से भक्तिपूर्वक अभिषिक्त किया जाता है।

विजयपडाएहिं णरो संगाममुहेसु विज्जइओ होइ।
छक्खंडविजयणाहो णिप्पडिवक्खो जसस्सी य।।492।।

टव्वाटीका-

विजयपडाएहिं- अर भगवंत कै मंदिर नगारा चढावा करि।

णरो- पुरिष।

संगाममुहेसु- संग्राम का मुख विषै।

विज्जइओ होइ- जीतिवा वालौ होइ।

छक्खंडविजयणाहो- छै खंड की जीति कौ स्वामी होइ।

णिप्पडिवक्खो- निकंटिक होय।

जसस्सी य- अर जसवंत होइ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिन-मन्दिर में विजय-पताकाओं को दान करने से अर्थात् नगाड़ा दान करने से मनुष्य संग्राम के मध्य में विजयी होता है तथा छह खण्ड का निष्कंटक स्वामी और यशस्वी होता है।

किं जंपिएण बहुणा तीसु वि लोएसु किं पि जं सोक्खं।
पुज्जाफलेण सव्वं पाविज्जइ णत्थि संदेहो।।493।।

टव्वाटीका-

किं जंपिएण बहुणा- कांई घणौ कहवाकरि।

तीसु वि लोएसु- तीन लोक विषै।

किं पि जं सोक्खं- जो कांइ एक सुख छै।

पुज्जाफलेण सव्वं- सो पूजा का फल करि सर्वही।

पाविज्जइ- पावैं तांही।

णत्थि संदेहो- कोई संदेह इह वात मैं नहीं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अधिक कहने से क्या लाभ है, निःसन्देह तीनों लोकों में जो कुछ भी सुख दिखाई देता है, वह सम्पूर्ण सुख पूजा के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है।

यो पूजा कौ फल कह्यौ

अणुपालिऊण एवं सावयधम्मं तओवसाणम्मि।
सल्लेहणं च विहिणा काऊण समाहिणा कालं।।494।।
सोहम्माइसु जायइ कप्पविमाणेसु अच्चुयंतेसु।
उववादगिहे कोमलसुयंधसिलसंपुडस्संते।।495।।
अंतोमुहुत्तकालेण तओ पज्जत्तिओ समाणेइ।
दिव्वामलदेहधरो जायइ णवजुव्वणो चेव।।496।।
समचउरससंठाणो रसाइधाऊहिं वज्जियसरीरो।
दिणयरसहस्सतेओ णवकुवलयसुरहिणिस्सासो।।497।।

टव्वाटीका-

अणुपालिऊण एवं- पालि करि ई भांति।

सावयधम्मं - श्रावक धरम नैं।

तओवसाणम्मि- पाछैं अंत समै।

सल्लेहणं च विहिणा- सल्लेखणा विधी सेती।

काऊण- करिकैं।

समाहिणा कालं- समाधि सौं प्राण तजै।

सोहम्माइसु जायइ- सो सौधर्मादि विषै उपजै।

कप्पविमाणेसु अच्चुयंतेसु- सुरग विमांन विषै सोलह सुरग परजंत।

उववादगिहे- तहां उत्पादक सज्या छै।

कोमल- महाकोमल।

सुयंधसिलसंपुडस्संते- सुगंध सिलासंपूड कै मांही तैठे उपजै।

अंतोमुहुत्तकालेण- अंतरमूहुर्त काल विषै।

तओ- तव।

पज्जत्तिओ- परजापत्तनैं।

समाणेइ- प्राप्त होइ।

दिव्वामलदेहधरो- दिव्य निर्म्मल देह कौ धरनहारौ।

जायइ णवजुव्वणो चेव- होइ उपजतौ ही नवजोवन होय।

समचउरससंठाणो- वहुरि समचतुरसंस्थान को धारी।

रसाइधऊहिं वज्जियसरीरो- रसादि धातु करि वर्जित छै शरीर जिहका।

दिणयरसहस्सतेओ- सूर्य सहश्र समान छै तेज जिहकौ।

णवकुवलय- फूलता कमल।

सुरहिणिस्सासो- समान सुगंध छै निसास जिहका।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार श्रावकधर्म का पालन कर और उसके अंत में सल्लेखना विधि से विधिपूर्वक प्राण तजकर (तजता है) ।

सौधर्मादि में, अच्युत स्वर्ग पर्यन्त कल्पविमानों में उत्पन्न होता है। वहाँ उपपाद गृहों के कोमल एवं सुगंधयुक्त शिला-सम्पुट (शैय्या) के मध्य में उत्पन्न होता है।

जन्म से लेकर अन्तर्मुहुर्त काल द्वारा अपनी छहों पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेता है तथा दिव्य, निर्मल देह का धारी एवं नवयौवन से युक्त हो जाता है।

तथा वह देव समचतुरस्र संस्थान को धारण करने वाला, रसादि धातुओं से रहित शरीर वाला, हजारों सूर्यों के समान तेज वाला, नये खिले हुए कमल के समान सुगंधित श्वांस वाला होता है।

पडिबुज्झिऊण सुत्तुट्ठिओ व्व संखाइमहुरसद्देहिं।
दट्ठूण सुरविभूइं विंभियहियओ पलोएइ।।498।।
किं सुमिणदंसणमिणं ण वेत्ति जा चिट्ठए वियप्पेण।
आयंति तक्खणं चिय थुइमुहला आयरक्खाई।।499।।
जय जीव णंद वड्ढाइचारुसद्देहि सोयरम्मेहिं।
अच्छरसयाउ वि तओ कुणंति चाडूणि विविहाणि।।500।।

टव्वाटीका-

पडिबुज्झिऊण- पाछैं प्रतिबोध नैं पायकरि।

सुत्तुट्ठिओ व्व संखाइमहुरसद्देहिं- संखादिक वाजा का उच्च मधुर शब्दां करि देव शज्या विषै तिष्टै।

दट्ठूण सुरविभूइं- देखि करि देवलोक की विभूति नैं।

विंभियहियओ पलोएइ- अर आश्चर्य हृदय हुवो थकौ, दसौं दिसानैं देखै।

किं सुमिणदंसणमिणं- कांई सुंदर दीखै छै यो सथानक।

ण वेत्ति जा- सो जे तैंनी कां न जाणौं।

चिट्ठए वियप्पेण- ते तै तिष्टै विकलप करि।

आयंति तक्खणं चिय- आंवैं तीही समै तुरत।

थुइमुहला आयरक्खाई- स्तुति करि वाचाल छै मुख ज्यांह का अैसा देवतां का समूह, आमनाय का वतावा वाला।

जय जीव- सो ए शब्द कहै हे देव ये जयवंत हो, घणां काल जीवो।

णंद वड्ढाइ- नादौ विरधै।

चारुसद्देहि सोयरम्मेहिं- इत्यादि सुंदर शब्दां करि प्रसन्न करै, किसा छैं सवद कांनां नैं रमणीक छैं।

अच्छरसयाउ वि तओ- अर अपछरा राग सहित तवै।

कुणंति चाडूणि विविहाणि- करै तमासा नाना प्रकार का।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सोकर उठे हुए राजकुमार के समान वह देव शंख आदि बाजों के मधुर शब्दों से जागकर देव-विभूति को देखकर और आश्चर्यचकित होकर इधर-उधर देखता है।

क्या यह स्वप्न-दर्शन है, नहीं जानता या यह सब सत्य है, इसप्रकार विकल्प करता हुआ वह जैसे ही बैठता है। उसी क्षण स्तुति करते हुए आत्मरक्षक आदि देव आकर।

विजयी हो, चिरंजीवी हो, आनन्दित हो, वृद्धिंगत हो इत्यादि कानों को रमणीक लगने वाले सुन्दर ब्दों से नाना प्रकार की प्रशंसा करते हैं। उसी समय सहस्रों अप्सराएँ भी आकर उसी प्रकार प्रशंसा करती हैं।

एवं थुणिज्जमाणो सहसा णाऊण ओहिणाणेण।
गंतूण ण्हाणगेहं वुड्डुणवाविम्हि ण्हाऊण।।501।।
आहरणगिहम्मि तओ सोलसहाभूसणं च गहिऊण।
पुज्जोवयरणसहिओ गंतूण जिणालए सहसा।।502।।
वरवज्जविविहमंगलरवेहिं गंधक्खयाइदव्वेहिं।
गहिऊण जिणवरिंदं थुत्तसहस्सेहिं थुणिऊण।।503।।
गंतूण सभागेहं अणेयसुरसंकुलं परमरम्मे।
सिंहासणस्स उवरिं चिट्ठइ देवेहिं थुव्वंतो।।504।।
उस्सियसियायवत्तो सियचामरधुव्वमाणसब्वंगो।
पवरच्छराहिं कीडइ दिव्वट्ठगुणप्पहावेण।।505।।
दीवेसु सायरेसु य सुरसरितीरेसु सेलसिहरेसु।
अखलियगमणागमणो देवुज्जाणाइसु रमेइ।।506।।

टव्वाटीका-

एवं थुणिज्जमाणो- ई भांति स्तव्यौ थकौ।

सहसा- सीघ्र ही।

णाऊण ओहिणाणेण- जांणि करि अवधिज्ञान सौं सारौ वृतांत पाछिलौ।

गंतूण ण्हाणगेहं- अर जाय करि स्नानग्रह विषै।

वुड्डुणवाविम्हि ण्हाऊण- अर सनान वावडी मध्ये न्हाय करि।

आहरणगिहम्मि तओ- पाछैं आभूषणसाला विषै।
सोलसहाभूसणं च गहिऊण- सोलह आभूषण ग्रहि करि।
पुज्जोवयरणसहिओ- अर पूजा का उपकरण सहित।
गंतूण जिणालए सहसा- जाप करि जिन मंदिर विषै तुरतही।

वरवज्ज- श्रेष्ठ वाजा अर।
विविहमंगल- भांति भांति का मंगल।
रवेहिं- सवदां करि।
गंधक्खयाइदव्वेहिं- गंध अक्षतादि द्रव्यां नैं।
गहिऊण जिणवरिंदं- ग्रहकरि जिनेंद्र नैं।
थुत्तसहस्सेहिं थुणिऊण- हजारा स्तुत्यां करि स्तवै पूजै।

गंतूण सभागेहं- पाछैं जाय करि सभा सथांनक विषै।
अणेयसुरसंकुलं- किसौ छै सभा सथानक अनेक देवां करि भरयो छै।
परमरम्मे- अर महारमणीक छै।
सिंहासणस्स उवरिं- तहां सिंहासन तिहकै ऊपरैं तिष्टै।
चिट्ठइ देवेहिं थुव्वंतो- देवां करि स्तव्यौ थकौ।

उस्सियसियायवत्तो- फिरै छै सुपेद छत्र जिहका सिर परि।
सियचामरधुव्वमाणसब्वंगो- अर सुपेद चमरां करि सेव्यमांन छै सर्व अंग जिहकौ।
पवरच्छराहिं कीडइ- अर श्रेष्ट अपछरादि करि गाइजे छै।
दिव्वट्ठगुणप्पहावेण- मनोज्ञ गुण जिहका अर अणिमादि अष्ट गुणां का प्रभाव करि संयुक्त छै।

दीवेसु- असंख्यात दीपां विषैं।
सायरेसु य- वहुरि असंख्यात समुद्रा विषै।
सुरसरितीरेसु- अर गंगा का तीरां विषै।
सेलसिहरेसु- पहाडां का सिखरां विषै।
अखलियगमणागमणो- कही ठै भी न रूकै छै गमन, अर आगमन जिहकौ।
देवुज्जाणाइसु रमेइ- देव विमानां विषै वैठो रमैं, क्रीडा करै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार देवी, देवताओं के द्वारा स्तुति किया गया वह, शीघ्र ही उत्पन्न हुए अवधिज्ञान से अपने पूर्व के सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर, स्नानगृह में जाकर स्नानवापि (बावड़ी) में स्नान कर। 501।

तत्पश्चात् आभूषणगृह में जाकर सोलह प्रकार के आभूषणों को धारण कर, पूजन के उपकरण लेकर शीघ्र ही जिनमंदिर में जाकर।। 502।।

श्रेष्ठ बाजों से तथा विभिन्न प्रकार के मांगलिक शब्दों से, गंध, अक्षत आदि द्रव्यों से जिनेन्द्र भगवान का पूजन कर और सहस्रों स्तोत्रों से स्तुति करके।। 503।।

तत्पश्चात् अनेक देवों से भरी हुई और अत्यन्त रमणीक सभा भवन में जाकर अनेक देवों से स्तुति किया जाता हुआ, सिंहासन पर बैठता है।। 504।।

श्वेत छत्र को धारण करता हुआ और श्वेत चमरों से सेवायमान है सर्व अंग जिसका ऐसा वह देव, श्रेष्ठ अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है और अणिमा आदि दिव्य आठ गुणों के प्रभाव से।। 505।।

द्वीपों में, समुद्रों में, गंगा आदि नदियों के किनारे पर, पर्वतों के शिखरों पर तथा नन्दनवन आदि देव उद्यानों में अथवा देवविमानों में प्रतिबन्ध रहित गमनागमन करता हुआ आनन्द करता है।। 506।।

आसाढ कात्तिए फग्गुणे य णंदीसरट्ठदिवसेसु।
विविहं करेइ महिमं णंदीसरचेइय गिहेसु।।507।।
पंचसु मेरुसु तहा विमाणजिणचेइएसु विविहेसु।
पंचसु कल्लाणेसु य करेइ पुज्जं बहुवियप्पं।।508।।
इच्चाइबहुविणोएहि तत्थ विणेऊण सगट्ठिई तत्तो।
उव्वट्टिओ समाणो चक्कहराईसु जाएइ।।509।।

टव्वाटीका-

आसाढ कात्तिए- आषाढ, काती वहुरि।
फग्गुणे य णंदीसरट्ठदिवसेसु- फागुण का आठ दिन नंदिसुरदीप विषै।
विविहं करेइ महिमं- नाना प्रकार की करै महिमा।
णंदीसरचेइय गिहेसु- नंदीसुरदीप का वावन चैत्यालय छै त्यां विषै।
पंचसु मेरुसु तहा- अर पांच सुमेरां विषै तथा।
विमाणजिणचेइएसु- विमांणां विषै वहुरि जिनमंदिर।
विविहेसु- अनेक त्यांह विषै।
पंचसु कल्लाणेसु य- अर पांचही कल्याणकां विषै।
करेइ पुज्जं बहुवियप्पं- करै पूजा वहुत प्रकार की।
इच्चाइबहुविणोएहि- ईत्यादि वहुत विनोद करि।
तत्थ विणेऊण सगट्ठिई तत्तो- तहां पूरण करि सागरां परजंत सुरगलोक।
उव्वट्टिओ समाणो- की थिति अर चवैं तैंठा सेती हरख सौं।
चक्कहराईसु जाएइ- सो चक्रवर्त्यादि विषै उपजै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वह देव नन्दीश्वर पर्व अर्थात् अष्टाह्निका के आठ दिनों में, आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन माह में नन्दीश्वर द्वीप के बावन जिनमंदिरों में जाकर विविध प्रकार से पूजा, अर्चना करता है।

इसी प्रकार पाँचों सुमेरू पर्वतों पर, विमानों के जिन मंदिरों में और अनेकों पंचकल्याणकों में विभिन्न प्रकार की पूजा करता है।

इस प्रकार अत्यन्त हर्षोल्लास से इन पुण्य को बढ़ाने वाले कार्यों (पूजन, विधान आदि में) में आनन्द लेते हुए, स्वर्गों में सागरों पर्यन्त अपनी आयु को पूर्ण करता है। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होता हुआ अर्थात् वहाँ अपनी आयु के समाप्त होने पर, वह देव पृथ्वी पर जन्म लेता है तथा चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ पदों में उत्पन्न होता है।

भोत्तूण मणुयसोक्खं पस्सिय वेरग्गकारणं किं चि।
मोत्तूण रायलच्छी तणं व गहिऊण चारित्तं।।510।।

काऊण तवं घोरं लद्धीओ तप्पफलेण लद्धूण।
अट्ठगुणी सरियत्तं चक्किण सिज्झइ तवेण जइ।।511।।

टव्वाटीका-

भोत्तूण- अर भोगि करि।

मणुयसोक्खं- मनुक्ष का सुख।

पस्सिय वेरग्गकारणं- पाछैं देखि करि वैराग को कारण।

किं चि- क्योंयक।

मोत्तूण रायलच्छी- अर तजै समस्त राजलक्षमी नै।

तणं व गहिऊण- तिणां की नाई गृहि करि।

चारित्तं- चारित्र नैं।

काऊण- करिकैं।

तवं घोरं- महाकठिन तप नैं।

लद्धीओ तप्फलेण लद्धूण- अर नाना प्रकार की अणिमाद ऋद्धि त्यांनै पायकरि।

अट्ठगुणी सरियत्तं- सीद्धां का आठ गुणां कौ अैश्वर्य पावै।

चक्किण सिज्झइ- चक्रवर्त्ति सीजै।

तवेण जइ- तप करि जगत विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

पृथ्वीलोक में मनुष्यों के सुखों को भोगकर, कुछ भी वैराग्य के कारण को देखकर अर्थात् जीवन की क्षणभंगुरता को देखकर, राज्य-वैभव को तिनके के समान त्याग कर, चारित्र को धारण कर।

महाकठिन तप करके और तप के फल से विक्रिया आदि लब्धियों को प्राप्त करता है। तप से सिद्धों के आठ गुण युक्त ऐश्वर्य को तथा संसार में चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है।

बुद्ध तवो वि य लद्धी विउव्वणलद्धी तहेव ओसहिया।
रस-बल-अक्खीणा वि य रिद्धीओ सत्त पण्णत्ता।।512।।
अणिमा महिमा लघिमा पागम्म वसित्त कामरूवित्तं।
ईसत्त पावणं तह अट्ठगुणा वण्णिया समए।।513।।

टव्वाटीका-

बुद्ध- वुद्ध ऋद्धि ज्ञान की अधिकई।

तवो वि य लद्धी- तप ऋद्धि तप का प्रभाव करि वारह सूरज समान सरीर मैं जोति होइ।

विउव्वणलद्धी- विक्रिया ऋद्धि चाहै जिसौ देह करै।

तहेव ओसहिया- तथैव औषध ऋद्धि ज्यांहका सरीर की पौन करि सर्व रोग जाय।

रस- ज्यांहका भोजन करि रसोई रससंयुक्त होय जाय।

बल- वल ऋद्धि, मन, वचन, काय करि महावलि असंख्यात देवां समान वल होइ वल ऋद्धि का धारी विषै।

अक्खीणा वि य- अक्षीण ऋद्धि जहां भोजन करै सौ रसोई अटूट होई।

रिद्धीओ सत्त पण्णत्ता- ए ऋद्धि सात कही आगै विक्रिया का आठ भेद कहै छै।

अणिमा- शरीर अणू प्रमाण करै।

महिमा- सरीर मोटो करै।

लघिमा- सरीर हलको करै।

पागम्म- सरीर भारयौ करै चाहै जठै गमन करै।

वसित्त- चाहे जिहनै वसी करै।

कामरूवित्तं- चाहे जिसौ रूप करै।

ईसत्त- चाहै जिसी ईश्वरता करै।

पावणं तह- तथा चाहै जिसी प्रापति करै।

अट्ठगुणा वण्णिया समए- ए आठ गुण वरणया सिद्धांत विषै विक्रिया ऋद्धि का।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

बुद्धिऋद्धि, तपऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि, बलऋद्धि और अक्षीणमहानस ऋद्धि इस प्रकार ये सात ऋद्धियाँ कही गई हैं।

विशेष ऋद्धि वर्णन-

1. बुद्धऋद्धि में अत्यधिक ज्ञान होता है।
2. तपऋद्धि युक्त शरीर में बारह सूर्य के समान तेज होता है।
3. विक्रियाऋद्धि से शरीर को कैसा भी छोटा बड़ा कर सकते हैं।
4. औषधऋद्धि प्राप्त मुनि के शरीर को स्पर्श करने वाली पवन औषधि के समान सभी रोगों को नष्ट कर देती है।
5. रसऋद्धि प्राप्त मुनि जिस रसोई में आहार कर लेता है, वह भोजन रसयुक्त हो जाता है।
6. बलऋद्धिधारी मन, वचन, काय से असंख्यात देवों के समान महाबलशाली होता है।
7. अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी मुनि जिस रसोई में आहार ले लेते हैं, उस रसोई के भोजन में चक्रवर्ती की सेना भी भोजन कर सकती है। वह ऐसी अटूट रसोई हो जाती है।। 512।।

अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राकाम्य, वशित्व, कामरूपित्व, ईशत्व और प्राप्यत्व- ये आठ गुण आगम में वर्णन किये गये हैं।

विशेष-

1. अणिमा अर्थात् शरीर अणु प्रमाण करना।
2. महिमा अर्थात् शरीर मोटा करना अथवा मेरु सम विशाल करना।
3. लघिमा अर्थात् शरीर हल्का करना।
4. प्राकाम्य अर्थात् शरीर भारी करना।
5. वशित्व अर्थात् किसी को भी वश में करना।
6. कामरूपित्व अर्थात् किसी भी रूप को धारण करना।
7. ईशत्व अर्थात् ईश्वरता को प्राप्त करना।
8. प्राप्यत्व अर्थात् किसी को भी प्राप्त करना।। 513।।

एवं काऊण तवं पासुयठाणम्मि तह य गंतूण।
पलियंकं बंधित्ता काउस्सग्गेण वा ठिच्चा।।514।।

जइ खाइयसद्दिट्ठी पुव्वं खवियाउ सत्त पयडीओ।
सुर-णिरय-तिरियाऊ तम्मि भवे णिट्ठियं चेव।।515।।
अह वेदगसद्दिट्ठी पमत्तठाणम्मि अप्पमत्ते वा।
सरिऊण धम्मझाणं सत्त वि णिट्ठवइ पयडीओ।।516।।
काऊण पमत्तेयरपरियत्त सयाणि खवयपाउग्गो।
होऊण अप्पमत्तो विसोहिमाऊरिऊण खणं।।517।।
करणं अधापवत्तं पढमं पडिवज्जिऊण सुक्कं च।
जायइ अपुव्वकरणो कसायखवणुज्जिओ वीरो।।518।।

टव्वाटीका-
एवं काऊण तवं- ई भांति करिकैं तप।
पासुयठाणम्मि तह य गंतूण- पाछैं प्रासुक स्थान विषै जाय करि।
पलियंकं बंधित्ता- पर्यंकासन वांधि करि।
काउस्सग्गेण वा ठिच्चा- अथवा कायोतसर्ग तिष्ठ करि।

जइ खाइयसद्दिट्ठी- जौ क्षायक सम्यक द्रिष्टी होय।
पुव्वं खवियाउ सत्त पयडीओ- पहली खपाई होइ सात प्रकृति जिह चोथै गुणठांणौ अर।
सुर-णिरय-तिरियाऊ- सुर, नारक, तिर्यंचायु ए 3 प्रकति खपाई होय सातमैं गुणठांणौं।
तम्मि भवे णिट्ठियं चेव- सो पुरिष तीही भव विषै निश्चै मोख पावै सातमैं गुणठांणौं।

अह वेदगसद्दिट्ठी- अथवा वेदक सम्यकद्रिष्टी।
पमत्तठाणम्मि- प्रमत्त गुणठांणौं छठै।
अप्पमत्ते वा- तथा अप्रमत्त गुणठांणौं सातमैं।
सरिऊण धम्मझाणं- अंगीकार करि धर्म ध्यान नैं।
सत्त वि णिट्ठवइ पयडीओ- अर सात ही प्रकृति कौ नास।

काऊण- करिकैं।
पमत्तेयरपरियत्त- सातमैं गुणठांणौ।
सयाणि खवयपाउग्गो- त्रसकाय आदि प्रकत्यां नै खपावै पावो गल वादिका वल सौं।
होऊण अप्पमत्तो- होय करि प्रमाद रहीत।
विसोहिमाऊरिऊण खणं- विशुद्धता नैं पाय कर क्षण एक पूरण करि।

करणं अधापवत्तं- अर अधोप्रवर्त्तनामा पहला करण नैं।
पढमं पडिवज्जिऊण सुक्कं च- अंगीकार करि पहला सुकल ध्यान नैं ध्यावै।
जायइ अपुव्वकरणो- अर होइ अपूर्वकरण परिणामा कौ स्वामी।
कसायखवणुज्जिओ वीरो- कषायां का खपायवानैं उद्यमी महासुभट।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस प्रकार वह मुनि तपश्चरण करके तथा प्रासुक स्थान में जाकर पर्यंकासन बाँधकर अथवा कायोत्सर्ग में स्थित होकर।

यदि वह क्षायिक-सम्यग्दृष्टि है तो उसने पहले ही अनन्तानुबन्धी-चतुष्क अर्थात् अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया तथा अनन्तानुबन्धी लोभ, इन चार कषायों और दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों का क्षय कर दिया है, अतः देवायु, नरकायु और तिर्यंचायु इन तीन प्रकृतियों को उसी भव में नष्ट कर दिया है।

और यदि वह वेदकसम्यग्दृष्टि है तो प्रमत्त गुणस्थान में अथवा अप्रमत्त गुणस्थान में धर्मध्यान को अंगीकार कर उक्त सातों प्रकृतियों का नाश करता है।

पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानों में सैकड़ों परिवर्तनों को करके, क्षपक श्रेणी के योग्य सातिशय अप्रमत्त संयत होकर क्षण मात्र में विशुद्धि को प्राप्त करके ।

और प्रथम अधः प्रवृत्तकरण को और शुक्ल ध्यान को प्राप्त कर, कषायों को खपाने अर्थात् नष्ट करने के लिए वह उद्यमी तीन अपूर्वकरण संयत अर्थात् अपूर्वकरण परिणामों का स्वामी हो जाता है।

एक्केक्कं ठिदिखंडं पाडइ अंतोमुहुत्तकालेण।
ठिदिकंडे पडणकाले अणुभागसयाणि पाडेइ।।519।।
गच्छइ विसुद्धमाणो पडिसमयमणंतगुणविसोहीए।
अणियट्टिगुणं तत्थ वि सोलह पयडीओ पाडेइ।।520।।

टव्वाटीका-

एक्केक्कं ठिदिखंडं- एक एक कर्मां की थिति की जड़ नै।
पाडइ अंतोमुहुत्तकालेण- खपावै अंतरमुहुर्त्तकाल मांहैं।
ठिदिकंडं- सो थिति वंध की जड।
पडणकाले- टुटिवा का समैं विषै।
अणुभागसयाणि पाडेइ- अनुभाग वंध का सैकडां नैं खपावै।

गच्छइ विसुद्धमाणो- पाछैं प्राप्त होय विशुद्ध चित हुवा।
पडिसमयमणंतगुणविसोहीए- थकौ समै समै अनंतगुणी निर्मलता करि।
अणियट्टिगुणं तत्थ वि- नवमैं गुणठांणैं तहां।
सोलह पयडीओ पाडेइ- सोलह प्रकति नैं खपावै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अपूर्वकरण गुणस्थान में वह एक अंतर्मुहुर्तकाल के द्वारा एक-एक कर्म की स्थिति की जड़ को नष्ट करता है अर्थात् एक-एक स्थितिखंड को खपाता है। एक स्थितिखंड के पतनकाल में अर्थात् नष्ट होने के या टूटने के समय में सैंकड़ों अनुभाग खंडों का पतन करता है।

इस प्रकार प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्ध से विशुद्ध होता हुआ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त होता है। वहाँ पर भी पहले सोलह प्रकृतियों को नष्ट करता है।

विशेषार्थ- वे सोलह प्रकृतियाँ निम्न हैं- 1. नरकगति, 2. नरकगत्यानपूर्वी, 3. तिर्यग्गति, 4. तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, 5. द्वीन्द्रियजाति, 6. त्रीन्द्रियजाति, 7. चतुरिन्द्रियजाति, 8. स्त्यानगृद्धि, 9. निद्रानिद्रा, 10. प्रचलाप्रचला, 11. उद्योत, 12. आतप, 13. एकेन्द्रियजाति, 14. साधारण, 15. सूक्ष्म, 16. स्थावर।

इन प्रकृतियों को अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में क्षय करता है।

अट्ठ कसाए च तओ णवुसयं तहेव इत्थिवेयं च।
छण्णोकसाय पुरिसं कमेण कोहं पि संछुहइ।।521।।
कोहं माणे माणं मायाए तं पि छुहइ लोहम्मि।
बायरलोहं पि तओ कमेण णिट्ठवइ तत्थेव।।522।।

टव्वाटीका-

अट्ठ कसाए च तओ- अर अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संबंधी आठ कषाय।
णवुसयं तहेव इत्थिवेयं च- अर नपुंसक वेद वहुरि स्त्री वेद।
छण्णोकसाय पुरिसं- अर षट् हास्यादिक वहुरि पुरष वेद हू खपावै।
कमेण कोहं पि संछुहइ- अर अनुक्रम करि खिपावै संज्वलन क्रोध नैं।

कोहं माणे माणं मायाए- संजुलन क्रोध मांन माया।
तं पि छुहइ- ए प्रकति खपावै।
लोहम्मि- स्थूल लोभ कहतां नवमैं गुण ठाणैं।
बायरलोहं पि तओ- अर नवमैं गुणठांणौं ही।
कमेण णिट्ठवइ तत्थेव- बादर लोभ नैं अनुक्रमैं खपावै तहाही।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सोलह प्रकृतियों को नष्ट करने के पश्चात् अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान संबंधी आठ मध्यम कषायों को, नपुंसकवेद को, स्त्रीवेद को, हास्यादि छह नो कषायों को और पुरुष वेद को नष्ट करता है और फिर क्रम से संज्वलन क्रोध को भी संक्षुचित करता है अर्थात् नष्ट करता है। 521।

पुनः संज्वलनक्रोध को संज्वलनमान में संज्वलनमान को संज्वलनमाया में और संज्वलनमाया को भी बादरलोभ में संक्रामित करता है। तत्पश्चात् क्रम से बादर लोभ को भी उसी अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में निष्ठापन करता है, अर्थात् सूक्ष्म लोभ रूप से परिणत करता है। 522।

अणुलोहं वेदंतो संजायइ सुहुमसंपरायो सो।
खविऊण सुहुमलोहं खीणकसाओ तओ होइ।।523।।
तत्थेव सुक्कझाणं विदियं पडिवज्जिऊण तो तेण।
णिद्दा-पयलाउ दुए दुचरिमसमयम्मि पाडेइ।।524।।
णाणंतरायदसयं दंसण चत्तारि चरिमसमयम्मि।
हणिऊण तक्खणे च्चिय सजोगिकेवलिजिणो होइ।।525।।

टव्वाटीका-

अणुलोहं वेदंतो- पाछै सूक्ष्म लोभ नैं वेदतौ थकौ दसमैं गुणठांणौं।
संजायइ सुहुमसंपरायो सो- प्राप्त हुवो छै सूक्ष्मसंपराय चारित्र नैं।
खविऊण सुहुमलोहं- पाछै खपाय करि सूक्ष्म लोभ नैं भी।
खीणकसाओ तओ होइ- तव क्षीणकषायी होइ बारमैं गुणठांणौं।

तत्थेव सुक्कझाणं- तहां क्षीणकषाय गुणठांणौं सुकल ध्यान दुजो।

विदियं पडिवज्जिऊण तो तेण- अंगीकार करि अर तिहकरि।

णिद्दा-पयलाउ दुए दुचरिमसमयम्मि- निद्रा अर प्रचुला दोन्यौं निद्रा।

पाडेइ- वारमां गुणठांणा का अंत का दोय समै त्यांह विषै घातै।

णाणं- वहुरि ज्ञानावरणी की प्रकति पंच।

तराय- अर अंतराय की प्रकति पांच।

दसयं- ए दस प्रकति खपावै।

दंसण चत्तारि- तथा दरसनावरणी की च्यारि खपावै।

चरिमसमयम्मि- छहेलै समै।

हणिऊण तक्खणे च्चिय- ई भांति सोला प्रकति खपाय करि।

सजोगि- सजोग केवली।

केवलिजिणो होइ- जिनेश्वर होइ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तब वह सूक्ष्मलोभ का वेदन करने वाला, दसवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान वाला सूक्ष्मसाम्पराय मुनि होता है। तत्पश्चात् सूक्ष्म लोभ का भी क्षय करके वह क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान में जाकर क्षीणकषायी वीतराग छद्मस्थ होता है। 523।

वहाँ पर ही द्वितीय शुक्लध्यान को अर्थात् बारहवें गुणस्थान में द्वितीय शुक्लध्यान को प्राप्त करके उसके द्वारा बारहवें गुणस्थान के अंत के दो समय में अर्थात् द्विचरम समय में निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियों का घात करता है अर्थात् इन दो प्रकृतियों को नष्ट कर देता है। 524।

चरम समय में ज्ञानावरण की पाँच, अन्तराय कर्म की पाँच दर्शनावरण की चक्षुदर्शन आदि चार इन चौदह प्रकृतियों का क्षय करके वह तत्क्षण ही सयोगिकेवली जिन हो जाता है। 525।

तो सो तियालगोयर-अणंतगुणपज्जयप्पयं वत्थुं।
जाणइ पस्सइ जुगवं णवकेवललद्धिसंपण्णो।।526।।
दाणे लाहे भोए परिभोए वीरिए सम्मत्ते।
णवकेवललद्धीओ दंसण णाणे चरित्ते य।।527।।

टव्वाटीका-

तो सो तियालगोयर- तवसो अतीत अनागत वरतमांन रूप तीन काल गोचर।

अणंतगुणपज्जयप्पयं वत्थुं- अनंत गुण पर्याय स्वरूप वस्तु नैं।

जाणइ पस्सइ- जांणैं देखै।

जुगवं- एक ही समैं विषै।

णवकेवललद्धिसंपण्णो- नव केवललब्धि करि संयुक्त हुवा थकौ।

दाणे- अनंत दान।

लाहे- अनंत लाभ।

भोए- तथा अनंत भोग।

परिभोए- अनंत उपभोग।

वीरिए- अनंत वीर्य।

सम्मत्ते- वहुरि क्षायक।

णवकेवललद्धीओ- सम्यक्तव ए नव केवल लब्धि जांणनी।

दंसण- अनंत दरसन तथा।

णाणे- अनंत ज्ञान विषै।

चरित्ते य- वहुरि क्षायक चारित्र विषै।

भावार्थ- अनंतदान 1, अनंतलाभ 1, अनंतभोग 1, अनंतउपभोग 1, अनंतवीर्य 1, क्षायक सम्यक्त्व 1 तथा अनंत दरसन, ज्ञान एवं चारित्र।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तब वह केवललब्धियों से संयुक्त होकर अतीत, अनागत, वर्तमान त्रिकाल गोचर अनन्त गुण-पर्यायात्मक वस्तु को युगपत् अर्थात् किसी वस्तु के भूत, भविष्य, वर्तमान के सभी गुण एवं पर्यायों को एक साथ जानता है और देखता है।

अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतभोग, अनंतपरिभोग, अनंतवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक दर्शन (केवलदर्शन), क्षायिकज्ञान (अनन्तज्ञान) और क्षायिक चारित्र (यथाख्यात चारित्र) ये नव केवललब्धियाँ हैं।

उक्कसं च जहण्णं पज्जायं विहरिऊण सिज्झेइ।
सो अकयसमुग्घाओ जस्साउसमाणि कम्माणि।।528।।
जस्स ण हु आउसरिसाणि णामागोयाणि वेयणीयं च।
सो कुणइ समुग्घायं णियमेण जिणो ण संदेहो।।529।।

टव्वाटीका-

उक्कसं च जहण्णं- उतकिष्ट वहुरि जघन्य।

पज्जायं- पर्याय नैं।

विहरिऊण- पूरण करि।

सिज्झेइ- सिद्ध होइ।

सो अकयसमुग्घाओ- सो केवली केतायक तौ समुद्धात करै अर केतायक केवली समुद्धात न करै।

जस्साउसमाणि कम्माणि- जिहकै आयु समांन नांम, गोत्र, वेदनी कर्म होइ सो न करै।

जस्स ण हु आउसरिसाणि- जिहके वहुरि आयु समान।

णामागोयाणि- नाम, गोत्र।

वेयणीयं च- वेदनी न होइ, आयु अलप होइ औरां की थिति ज्यादा होइ।

सो कुणइ समुग्घायं- सो करै समुद्धात नैं।

णियमेण जिणो- निश्चै सेती केवली।

ण संदेहो- ई बात मैं संदेह नहीं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वे सयोगि केवली भगवान् उत्कृष्ट और जघन्य पर्याय-प्रमाण विहार करके अर्थात् तेरहवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण है और जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सो जिस केवली की जितनी आयु है, तत्प्रमाण काल तक नाना देशों में विहार कर और धर्मोपदेश देकर समुद्धात किये बिना सिद्ध होते हैं। (कितने ही केवली समुद्धात करते हैं, कितने ही समुद्धात नहीं करते।)। 528।

सो जिस केवली के आयु कर्म की स्थिति के बराबर शेष नाम कर्म, गोत्र कर्म और वेदनीय कर्म की स्थिति होती है, वे तो समुद्घात किये बिना ही सिद्ध होते हैं। किन्तु जिनके नाम कर्म और वेदनीय कर्म, आयु कर्म के बराबर नहीं हैं, वे सयोगिकेवली जिन नियम से समुद्घात करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। 529।

छम्मासाउगसेसे उप्पण्णंजस्स केवलं होज्ज।
सो कुणइ समुग्घायं इयरो पुण होइ भयणिज्जो।।530।।

टव्वाटीका-

छम्मासाउगसेसे- छ महीना आयु का वाकी रहै।

उप्पण्णंजस्स केवलं होज्ज- अर जिहकै उपजै केवल।

सो कुणइ समुग्घायं- सो करै समुद्घात नै अंत समै आयु अंतमुहूरत वाकी रहै तव।

इयरो पुण होइ भयणिज्जो- इतर केवली भजनीय छै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

छह माह की आयु शेष रहने पर जिसके केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वे केवली समुद्घात करते हैं, इतर केवली भजनीय हैं, अर्थात् समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।। 530।।

अंतोमुहुत्तसेसाउगम्मि दंडं कवाड पयरं च।
जगपूरणमथ पयरं कवाड दंडं णियतणुपमाणं च।।531।।
एवं पएसपसरण-संवरणं कुणइ अट्ठसमएहिं।
होहिंति जोइचरिमे अघाइकम्माणि सरिसाणि।।532।।

टव्वाटीका-

अंतोमुहुत्तसेसाउगम्मि- अंतरमुहुर्त वाकी आयु विषै।

दंडं कवाड पयरं च- दंड कपाट वहुरि प्रतर।

जगपूरणमथ- पूरण करै।

पयरं कवाड- पाछैं कपाट नैं अर।

दंडं णियतणुपमाणं च- दंड प्रतर पूरण नैं संकोचै शरीर प्रमांण वहुरि प्रदेशां नैं राखै।

एवं पएसपसरण- ई भांति प्रदेसां कौ विस्तार।

संवरणं कुणइ- अर संकोच करै।

अट्ठसमएहिं- आठ समै करि।

होहिंति जोइचरिमे- हौंहि तेरमां गुणठांणां कै अंति समै।

अघाइकम्माणि सरिसाणि- च्यारि ही अघातिया वरावरि सो केवली।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सयोगिकेवली अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण आयु के शेष रह जाने पर (शेष कर्मों की स्थिति को समान करने के लिए) दंड, कपाट, प्रतर, और लोकपूरण, पुनः प्रतर, कपाट, दंड और निज देह-प्रमाण। 531।

इस प्रकार आठ समयों के द्वारा आत्म प्रदेशों का प्रसारण और संवरण करते हैं। तब सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्त में अघातिया कर्म सदृश स्थिति वाले हो जाते हैं। 532।

बायरमण-वचिजोगे रुंभइ तो थूलकायजोगेण।
सुहुमेण तं पि रुंभइ सुहुमे मण-वयणजोगे य।।533।।
तो सुहुमकायजोगे वट्टंतो झाइए तइयसुक्कं।
रुंभित्ता तं पि पुणो अजोगिकेवलिजिणो होइ।।534।।

टव्वाटीका-

बायरमण-वचिजोगे- वादर मन, वचन, जोगां नै तौ।

रुंभइ तो थूलकायजोगेण- रोकै वादर काय योग करि अर सूक्ष्म मन, वचन जोग नै धरै।

सुहुमेण तं पि रुंभइ- पाछैं सूक्ष्म काय योग करि रोकै।

सुहुमे मण-वयणजोगे य- सूक्ष्म मनो जोग अर सूक्ष्म वचन जोग नैं।

तो सुहुमकायजोगे- तव सूक्ष्म काय जोग नैं।

वट्टंतो झाइए- वेदतौ थकौ ध्यावै।

तइयसुक्कं- तीसरा सुकल ध्यान नैं।

रुंभित्ता तं पि पुणो- पाछै रोकि तीसरा सुकल नैं।

अजोगिकेवलिजिणो होइ- होई वहुरि अजोग केवली।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

सयोगिकेवली जिनेन्द्र तेरहवें गुणस्थान के अंत में बादर अर्थात् स्थूल काययोग से बादर मनोयोग और बादर मनोयोग से बादर वचनयोग को रोकते हैं अर्थात् उसका निरोध करते हैं। तत्पश्चात् उसको भी अर्थात् बादर मन, वचन, काय योग को भी सूक्ष्म काययोग से सूक्ष्म मनोयोग और सूक्ष्म वचनयोग को रोकते हैं अर्थात् उनका भी निरोध करते हैं। 533।

अब सयोगिकेवली से अयोगिकेवली के क्रम का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वर्तमान सयोगिकेवली भगवान तब सूक्ष्म काययोग में तीसरे शुक्लध्यान का ध्यान करते हैं और उस ध्यान के द्वारा उस सूक्ष्म काययोग का भी निरोध करके अर्थात् उस सूक्ष्म काय को भी रोक कर, वे सयोगिकेवली प्रभु चैदहवें गुणस्थान के धारी अयोगिकेवली जिनेन्द्र हो जाते हैं। 534।

बावत्तरि पयडीओ चउत्थसुक्केण तत्थ घाएइ।
दुचरिमसमयम्मि तओ पयडी तेरम्मि णिट्ठवइ।।535।।
तो तम्मि चेव समये लोयग्गे उड्ढगमणसब्भाओ।
संचिट्ठइ असरीरो पवरट्ठगुणप्पओ णिच्चं।।536।।

टव्वाटीका-

बावत्तरि पयडीओ- वहैतरि प्रकति।

चउत्थसुक्केण तत्थ घाएइ- चौथा सुकल करि चौदमैं गुणठाणैं, तहां घातैं प्रथम समै अर।

दुचरिमसमयम्मि- दूसरे समै अंत कै।

तओ पयडी तेरम्मि णिट्ठवइ- पाछैं तेरा प्रकृति घातै।

तो तम्मि चेव समये- तव तिह ही समय विषै।

लोयग्गे- लोक कै सिखरि।

उड्ढगमणसब्भाओ- उद्धर् गमन स्वभाव का प्रभाव करि जाय।

संचिट्ठइ असरीरो- तिष्ठै सरीर रहित अर।

पवरट्ठगुणप्पओ णिच्चं- श्रेष्ठ अष्ट गुणमई सदाकाल विराजै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

इस चैदहवें गुणस्थान द्विचरम समय में चतुर्थ शुक्लध्यान के द्वारा प्रथम समय में बहत्तर प्रकृतियों को नष्ट करता है तथा अन्तिम समय में तेरह प्रकृतियों को नष्ट करता है। 535।

तब उसी समय में स्वभाव से उध्र्व गमन करने वाला यह जीव शरीर रहित होकर और श्रेष्ठ अष्ट गुणों से युक्त होकर सदा के लिए लोक के शिखर पर विराजमान हो जाता है। 536।

गुणस्थान का विशेष वर्णन- जैनदर्शन के अनुसार जीव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य स्वरूपी है, किन्तु अनादि कर्मों से बद्ध होने के कारण उसकी वे शक्तियाँ प्रकट नहीं हो पाती। कर्मों का आवरण उसके मूल रूप को ढक या विकृत कर लेता है। जितनी-जितनी कर्म आवरण की घटाएँ सघन होती जाती है, उतनी-उतनी जीव शक्तियों का प्रकाश कम होता जाता है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे कर्मों के आवरण रूपी बादल छंटते जाते हैं वैसे-वैसे आत्मा की शक्ति प्रकट होती जाती है।

गुणस्थान का अर्थ- मोह और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के निमित्त से उत्पन्न जीव के अन्तरंग परिणामों की तरतमता को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान आत्मिक गुणों के विकास की क्रमिक अवस्थाओं का द्योतक है। जीव के परिणाम एक से नहीं रहते। मोह और मन, वचन, काय की प्रवृत्ति के कारण जीव के अन्तरंग परिणामों में प्रतिक्षण उतार-चढ़ाव होता रहता है। गुणस्थान आत्म-परिणामों में होने वाले इन उतार-चढ़ावों का बोध कराता है।

गुणस्थान चौदह होते हैं। उनका स्वरूप इसप्रकार है-

1. **मिथ्यात्व-** मिथ्या अर्थात् विपरीत श्रद्धान से युक्त गुणस्थान को मिथ्यात्व गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान वाले जीव शरीर में ही आत्मा की भ्रान्ति बनाये रखते हैं। अर्थात् शरीर और आत्मा को पृथक् नहीं मानते हैं।

2. **सासादन-** उपशम सम्यक्त्व से गिरने और मिथ्यात्व को प्राप्त होने से पूर्व बीच की स्थिति को सासादन गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान वाले जीव शरीर में ही आत्मा की भ्रान्ति बनाये रखते हैं। अर्थात् शरीर और आत्मा को पृथक् नहीं मानते हैं।

3. **सम्यक्-मिथ्यादृष्टि-** जिस गुणस्थान में सम्यक् और मिथ्यारूप मिश्रित श्रद्धान पाया जाए उसे सम्यक्-मिथ्यादृष्टि कहते हैं। श्रद्धान और अश्रद्धानात्मक भाव युगपत् रहने के कारण इसे मिश्र गुणस्थान भी कहते हैं।

4. **असंयत सम्यग्दृष्टि-** संयम रहित सम्यग्दृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं। इसमें जीव दर्शनमोहनीय कर्म का अभाव हो जाने से सम्यग्दृष्टि तो हो जाता है, किन्तु चारित्रमोहनीय के उदय के कारण संयम को अंगीकार नहीं कर पाता है।

5. **संयतासंयत-** जिस गुणस्थान में सम्यग्दर्शन के साथ पाँच पाप का स्थूल रूप से त्याग होता है, उसे संयतासंयत गुणस्थान कहते हैं। इस अवस्था के जीव स्थूल पापों से विरक्त होने के कारण संयत तथा सूक्ष्म पापों का त्याग न कर पाने के कारण असंयत कहलाते हैं।

6. **प्रमत्त संयत-** प्रमाद सहित महाव्रती साधु को प्रमत्त संयत कहते हैं। पाँचों पापों का पूर्ण रूप से त्याग होने से संयत तथा प्रमाद सहित होने से इन्हें प्रमत्त कहते हैं।

7. **अप्रमत्त संयत-** प्रमाद रहित मुनि अप्रमत्त संयत कहलाते हैं।

8. **अपूर्वकरण-** जिस गुणस्थान में अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी अनुभूत न की गई हो ऐसी आत्मशुद्धि का अनुभव होता है, वह अपूर्वकरण गुणस्थान है।

9. **अनिवृत्तिकरण-** जिस गुणस्थान में स्थूल मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम होता है, उसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

10. **सूक्ष्म साम्पराय-** जिस गुणस्थान में संज्वलन लोभ कषाय का अत्यन्त सूक्ष्म उदय होता है, उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

11. **उपशान्त** मोह- समस्त मोहनीय कर्म के उपशम होने से उत्पन्न होने वाले गुणस्थान को उपशान्त मोह गुणस्थान कहते हैं।

12. **क्षीण मोह-** समस्त मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न आत्मा का विशुद्ध परिणाम क्षीण मोह कहलाता है।

13. सयोग केवली- योग सहित केवली के गुणस्थान को सयोग केवली कहते हैं। यह गुणस्थान घातिया कर्मों के समूह क्षय से प्राप्त होता है। सयोग केवली ही तीर्थंकर, अरिहंत या परमात्मा कहलाता है।

14. **अयोग केवली-** योगातीत केवली के गुणस्थान को अयोग केवली कहते हैं। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में विशुद्ध शुक्ल ध्यान के बल से योगों का निरोध करने के उपरान्त यह गुणस्थान प्राप्त होता है। शेष अघातिया कर्मों के क्षयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति इसी गुणस्थान से होती है।

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वाबाहं सिद्धाणं वण्णिया गुणट्ठेदे।।537।।

टव्वाटीका-

सम्मत्त- क्षायक सम्यक्त।

णाण- केवलज्ञान।

दंसण- केवलदरसन।

वीरिय- अनंतवीर्य।

सुहमं- सूक्ष्म।

तहेव- तथा।

अवगहणं- अवगाहन।

अगुरुलहुमव्वाबाहं- अगुरुलघु अव्यावाध।

सिद्धाणं वण्णिया- सिद्धां का वरणया।

गुणट्ठेदे- गुण आट्ठ ए।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व ये सिद्धों के आठ गुण वर्णन किये गये हैं।

जं किं पि सोक्खसारं तिसु वि लोएसु मणुय-देवाणं।
तमणंतगुणं सुक्खं सिद्ध अणुभूयमेक्क समे।। 538।।

टव्वाटीका-

जं किं पि सोक्खसारं- जो कौंयक सुख उतकिष्ट।

तिसु वि लोएसु- तीन ही लोकविषै।

मणुय-देवाणं- मनुष्य अर देवां कै तीन काल सबंधी होय छै।

तमणंतगुणं सुक्खं- तिहसौं अनंतगुणौं सुख।

सिद्ध अणुभूयमेक्क समे- सीद्ध अनुभवैं छैं एक ही समै विषै।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

तीनों ही लोकों में (अधोलोक, मध्यलोक और उध्र्वलोक) मनुष्य और देवों के जो कुछ भी उत्कृष्ट सुखों का सार है अर्थात् जो भी सर्वश्रेष्ठ सुख देव और मनुष्य भोगते हैं, उससे अनन्तगुणा सुख सिद्ध भगवान एक ही समय में अनुभव करते हैं।

सिज्झइ तइयम्मि भवे पंचमए कोवि सत्तमट्ठमए।
भुंजिवि सुर-मणुयसुहं पावेइ कमेण सिद्धपयं।। 539।।

टव्वाटीका-

सिज्झइ तइयम्मि भवे- कोइक भव्य जीव तौ आतमध्यान करि तिह भव ही सीझै कोइक तीजा भव विषै सीझै।

पंचमए कोवि सत्तमट्ठमए- कोई पांचमै भव सीझै, कोई सात भव देवां का, अर आठ भव मनुस का विषै।

भुंजिवि सुर-मणुयसुहं- भोगि करि देव पदवी का, अर मनुक्ष पदवी का सुख।

पावेइ कमेण सिद्धपयं- पावै अनुक्रम करि सिद्ध सुख।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

कोई भव्य जीव (उत्तम प्रकार से श्रावकों का आचार पालन करने के कारण कोई गृहस्थ) तीसरे भव में सिद्ध होता है, कोई क्रम से देव और मनुष्यों के सुख को भोगकर पांचवें, सातवें या आठवें भव में सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं।

प्रशस्ति

आसी ससमय-परसमयविदू सिरिकुंदकुंदसंताणे।
भव्वयणकुमुयवणसिसिरयरो सिरिणंदिणामेण।।540।।

टव्वाटीका-

आसी ससमय-परसमयविदू- होता हुवा स्वसमय परसमय का वेत्ता।

सिरिकुंदकुंदसंताणे- श्री कुंदकुदाचार्य की परिंपा विषै।

भव्वयणकुमुयवण- भव्यजन रूप कुमदवन।

सिसिरयरो- त्यांनैं प्रफुल्लित करिवानैं सरद का चंद्रमा समान।

सिरिणंदिणामेण- श्री नंदिनामाचार्य।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

श्री कुन्दकुन्द आचार्य की परम्परा में स्वसमय और परसमय के ज्ञानी, भव्यजनरूप कुमुदवन को प्रफुल्लित करने के लिए चन्द्रमा के समान श्रीनन्दि नाम के आचार्य हुए।

कित्ती जसिंसदुसुब्भा सयलभुवणमज्झे जहिच्छं भमित्ता,
णिच्चं सा सज्जणाणं हियय-वयण-सोए णिवासं करेई।
जो सिद्धंतंबुरासिं सुणयतरणमासेज्ज लीलावतिण्णो,
वण्णेउं को समत्थो सयलगुणगणं से वियट्ठो वि लोए।।541।।

टव्वाटीका-

कित्ती जसिंसदुसुब्भा- कीर्ति जिहकी चन्द्रमा समान उज्जल।

सयलभुवणमज्झे- समस्त जगत कै मांही।

जहिच्छं- यथाजोग्य।

भमित्ता- भ्रमि करि।

णिच्चं सा सज्जणाणं- सदाकाल सो कीर्त्ति तिष्टती हुई जीवां कै।

हियय-वयण-सोए- हिरदै वदन कानां विषै।

णिवासं करेई- निवास करती हुई।

जो सिद्धंतंबुरासिं- वहुरि जो श्री नंदिनामाचार्य सिद्धान्त रूप समुद्र कैं।

सुणय- भली नय रूप।

तरणमासेज्ज- जिहाज नैं पाय करि।

लीलावतिण्णो- लीला थकी पार उतरतौ हुवौ।

वण्णेउं को समत्थो- तिहका गुण वरणिवानैं कौन समर्थ।

सयलगुणगणं- सकल गुणां का समूह करि।

से वियट्ठो वि लोए- सेवनीक गुणवंत भी इह लोक विषै समर्थ नहीं ज्याका गुण गायवा नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

जिसकी चन्द्रमा से भी शुभ कीर्ति सम्पूर्ण संसार में इच्छानुसार भ्रमण कर पुनः वह सज्जनों के हृदय, मुख और श्रोत में नित्य निवास करती है। जो सुनय अर्थात् नय रूप जहाज का आश्रय लेकर सिद्धान्त रूप समुद्र को लीलामात्र से पार कर गये, उस श्रीनन्दि आचार्य के सकल गुणसमूह का वर्णन करने के लिए लोक में कौन गुणवंत समर्थ है अर्थात् कोई भी उनके गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

सिस्सो तस्स जिणिंदसासणरओ सिद्धंतपारंगओ,
खंती-मद्दव-लाहवाइदसहा धम्मम्मि णिच्चुज्जओ।
पुण्णेंदुज्जलकित्तिपूरियजओ चारित्तलच्छीहरो,
संजाओ णयणंदिणाममुणिणो भव्वासयाणंदओ।।542।।

टव्वाटीका-

सिस्सो तस्स- सिष्य तिहकौ।

जिणिंदसासणरओ- जिनेंद्र सासन विषै रत।

सिद्धंतपारंगओ- सिद्धांत कौ पारगामी।

खंती-मद्दव-लाहवाइ- क्षमा, निर्गर्वता, निहकपटतादि।

दसहा- दस प्रकार।

धम्मम्मि णिच्चुज्जओ- धर्म विषै सदा उद्यमी।

पुण्णेंदुज्जलकित्ति- पूरणवासी का चंद्रमा समान उज्जल कीरति करि।

पूरियजओ- पूरित कियो छै जगत जिह।

चारित्तलच्छीहरो- अर चारित्र लक्ष्मी कौ धरणहारौ।

संजाओ णयणंदि- हुवो नयनंदि।

णाममुणिणो- नामा गुणवंत।

भव्वासयाणंदओ- भव्य जीवां का चित्त नैं हरख कौ उपजांवनहारौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उसका (श्रीनन्दि आचार्य का) शिष्य, जिनेन्द्र-शासन में रत, सिद्धान्त का पारंगत, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस प्रकार के धर्म में सदा उद्यत, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उज्जवल कीर्ति से संसार को पूरित करने वाला,

चारित्र रूपी लक्ष्मी को धारण करने वाला और भव्य जीवों के हृदयों को आनन्द देने वाला ऐसा नयनन्दि नाम का मुनि हुआ।

सिस्सो तस्स जिणागम-जलणिहिवेलातरंगधेयमणो।
संजाओ सयलजए विक्खाओ णेमिचन्दु त्ति।।543।।

टव्वाटीका-

सिस्सो तस्स जिणागम- सिष्य तिहकौ जिनआगम रूप।

जलणिहिवेलातरंगधोयमणो- समुद्र की तरंगां करि धोयो छै मन जिहकौ हुवो।

संजाओ सयलजए- सकल जगत विषै।

विक्खाओ णेमिचन्दु त्ति- विख्यात नेमचंद्र अैसै नाम।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उसका (नयनन्दि का) शिष्य, जिनागम रूप समुद्र की वेला-तरंगों से धुले हुए हृदय वाला नेमिचन्द्र इस नाम से सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध हुआ।

तस्स पसाएण मए आइरियपरंपरागयं सत्थं।
वच्छल्लयाए रइयं भवियाणमुवासयज्झयणं।।544।।

टव्वाटीका-

तस्स पसाएण मए- तिह का प्रसाद करि मैं।

आइरियपरंपरागयं सत्थं- आचार्यां की परंपराय करि चल्यो आयो जो श्रावकाचार शास्त्र।

वच्छल्लयाए रइयं भवियाण- वात्सल्य कौ करणहारौ सौ रच्यौ भव्य जीवां नै सुज्ञायवानैं।

मुवासयज्झयणं- उपासकाध्ययन नामा अंग थकी यो संक्षेप मात्र श्रावक कौ धर्म।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

उन नेमिचन्द्र आचार्य की कृपा से मेरे द्वारा आचार्य परम्परा से प्राप्त उपासकाध्ययन ग्रंथ (श्रावकाचार शास्त्र) वात्सल्य भाव के वशीभूत होकर भव्य जीवों के लिए रचा गया है। 544।

जं किं पि एत्थ भणियं अयाणमाणेण पवयणविरुद्धं।
खमिकण सुयाविदण्णु सोहित्ता तं पयासंतु।।545।।

टव्वाटीका-

जं किं पि एत्थ भणियं- जो कोयंक इह लोक विषै कह्यौ।

अयाणमाणेण- अजांणतै थकै मैं।

पवयणविरुद्धं- सिद्धांत सेती विरुद्ध।

खमिकण सुयाविदण्णु- सो क्षमा करि सूत्र का वेत्ता।

सोहित्ता- सोधि करि।

तं पयासंतु- तिहनैं प्रकासौ।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

अजानकार होने से अर्थात् अज्ञानतावश जो कुछ भी इसमें प्रवचन-विरुद्ध कहा गया हो, सो प्रवचन के धारक अर्थात् ज्ञानीजन आचार्य मुझे क्षमा करें और उसे शोधकर प्रकाशित करें। 545।

छज्ज सया पण्णसुत्तराणि एयस्स गंथपरिमाणं।
वसुणंदिणा णिबद्धं वित्थरियव्वं वियड्ढेहिं।।546।।

टव्वाटीका-

छज्ज सया पण्णसुत्तराणि- छह सैकडा पचास 650।

एयस्स गंथपरिमाणं- आगला वत्तीस अक्षरा श्लोक इह ग्रंथ कौ परिमाण जाणौं।

वसुणंदिणा णिबद्धं- वसुनंदिण गाथा गाई सो विसतारणी।

वित्थरियव्वं वियड्ढेहिं- विसेष बुद्धयां नैं।

टव्वाटीका का हिन्दी अर्थ-

वसुनन्दि द्वारा रचे गये इस ग्रन्थ का परिमाण (अनुष्टुप श्लोकों की अपेक्षा) पचास अधिक छह सौ अर्थात् छह सौ पचास (650) है। इस ग्रंथ में जो बात संक्षेप रूप से कही गई है, विद्वज्जन (विशेष बुद्धि वाले) उसको विस्तार से प्रतिपादित करें। 546।

इति वसुनन्दि कृत उपासकाध्ययन सम्पूर्णम्।

।। इत्युपासकाध्ययनं वसुनन्दिना कृतमिदं समाप्तम् ।।

आगे पंडित दौलतराम जी लिखते हैं कि-

पढौ गुनौ बुधिवांन, ज्ञान कछू रदै धरौ।
हरो क्रोध, अर मान, करौ ध्यान चिद्रूप कौ।।2।।

तजौ पाप, आरंभ व्रत धरि, भजौ जिनंद कौं।
राग, दोष, मद, दंभ, लोभ, मोह वसि मति परौ।।3।।

परमातम सम आप, जानौं दरसन ज्ञान मय।
मेटौ सव संताप पाप, पंथ परणति हरौ।।4।।

महाव्रत धरि धीर कै, धारौ अणुव्रत कौ।
टारौ पर की पीर, वीर कथ्यौ मार लखौ।।5।।

हिंसा मृषा अदत्त, त्यागौ मैथुन परिगहा।
ह्यै करि महाविरत्त, चिनमूरति चेतन लखौ।।6।।

करौ दिसा परमांन, देसव्रत पालौ भया।
भया अनरथदंड सुजांन, त्यागौ जिन आज्ञा थकी।।7।।

सामायक व्रत सेय, पोसह विधि परगट करौ।
अतिथिभाग करेय, भोगुपभोग प्रमांण करि।।8।।

ए वारह व्रत सार, पार करै संसार सौं।
ग्यारह पडिमा धार, श्रावक सवमै अधिक है।।9।।

दरसन आदि वखांनि, दूजी वारह व्रत धर।
तीजी प्रतिमा जानि, सामायक समतामई।।10।।

चौथी पोसह धार, सचित्त त्याग है पंचमी।
छठी दिन परिहार, नारी कौ निसि अनसना।।11।।

रैनि दिनां व्रत सील, सो जानौं तुम सातमी।
करौ न बुधजन ढील, ब्रह्मवती हैं ब्रह्म हौं।।12।।

सर्वारंभ जु त्याग, सो कहिये फुनि अष्टमी।
नहि परिगह सौं रंग, सो नवमी ममता रहीत।।13।।

दसमी अनुमति त्याग, वचन नहीं जग काज कौ।
सवमैं अतिवडभाग, पडिमा मुनि सम ग्यारमी।।14।।

जहां अदोष अहार, लेय उडंड जती सज्यौं।
वनवासी अविकार, ताकै भेद जु दोय है।।15।।

क्षुल्लक प्रथम वखानि, कतरावै निज केस जों।
खंडित वस्त्र प्रबांनि, अर कोपीन परिग्रह।।16।।

सर्व जाति कौं होय, क्षुल्लकलौं श्रावक व्रती।
अैलि और नहि कोय, द्विज क्षत्री वाणिज विना।।17।।

अैलि करै कर पात्र, भोजन मुनिवत दोष विन।
कमण्डल पीछी मात्र, अर कोपीन परिग्रह।।18।।

लोच करै निज केस, देस देस रमता रहै।
त्यागैं पाप असेस, लेस मात्र ममता नहीं।।19।।

अैलि लगै अणुव्रत, आगैं मुनिमत महव्रता।
ए द्वय धर्म प्रव्रत्त, श्रावक अर साधूजना।।20।।

जो धारै जिन धर्म, मर्म लहै निज वस्तु कौ।
सो पावै पद पर्म, हरै कर्म मोहादिका।।21।।

अंग सातमौं जांनि, नाम उपासकाध्ययन जो।
सो नीकैं उर आंनि, धारौ श्रावक व्रत सुभ।22।।

अंग वडै विसतार, तामैं सौं संक्षेप अति।
भाष्यो व्रत विचार, गाथां मैं वसुनंदि नैं।।23।।

(छंद त्रिभंगी)

इह जिनवर धर्मा हरइ जु भर्मा देय जु पर्मा ज्ञाननिधी।
पावैं भवि प्रांनी बुद्धि निधांनी करहि प्रवांनी व्रतविधी।
मुनिवर मत धारैं पाप प्रहारैं अवगुन टारैं जोग गहैं।
कैहौंहि जु श्रावक पुन्य प्रभावक जिनगुन भावक बोध लहै।।24।।
सब जीवदया जो शुद्धनया जो गुरविनयां जो धर्म इहै।
सव त्यागि असत्या गहइ जु सत्या छांडि अमत्या* कांम दहै।।25।।
नहि करइ जु चोरी तजइ सु जोरी तजि चमचोरी सील धरै ।
छांडै जग त्रिसना हरि अघ विसना भजि जिन जिसना कर्म हरै।।26।।

(चौपाई)

अर्थ- आगे पण्डित दौलतराम कासलीवाल जी भव्य जीवों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि बुद्धमान जीव कुछ पढ़ो उसका चिन्तन करो तथा ज्ञान को हृदय में धारण करो। क्रोध और माया का त्याग कर चिन्मूरत आत्मस्वरूप का ध्यान करो।। 2।।

पाप और आरम्भ का त्याग कर व्रतों को धारण कर जिनेन्द्र भगवान का भजन पूजन करें। राग, द्वेष, मान, अहंकार, लोभ और मोह के वशीभूत मत हो जाओ।। 3।।

हे जीव! तुम स्वयं को दर्शन ज्ञान स्वरूपी परमात्मा के समान समझो। इससे तुम्हारे दुःख और पाप परिणति नष्ट हो जायेगी।। 4।।

---

*अमत्या -यह शब्द मुझे गलत प्रतीत हो रहा है। इसके स्थान पर संभवत 'अभ्छ्य' होना चाहिए।

पण्डित जी कहते हैं कि महावीर कहते हैं कि या तो तुम अपने जीवन में महाव्रतों को धारण करो यदि महाव्रत को अंगीकार नहीं कर सकते तो जीवन में अणुव्रतों को धारण करो, यदि यह भी नहीं कर सकते तो कम से कम दूसरों की पीड़ा को, कष्ट को समझ कर उसे कम या दूर करने का प्रयास करो।। 5।।

हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन तथा परिग्रह का त्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह को धारण कर चिदानन्द निजात्मस्वरूप का दर्शन करो।। 6।।

दिशाओं-विदिशाओं में प्रमाण करके दिग्बंधन करना अर्थात् दिग्व्रत को अंगीकार करना तथा जिस देश में रहते हैं उससे बाहर न जाने की जो मर्यादा की जाती है, वह देशव्रत है तथा बिना प्रयोजन के कार्य करना, हिंसा की वस्तु को बेचना, व्यापार में कम ज्यादा तोल कर बेईमानी करना आदि अनर्थदण्डव्रत कहलाते हैं। इन सभी का जिनेश्वर की आज्ञानुसार त्याग करना चाहिये। ये तीन गुणव्रत हैं।। 7।।

सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं। समतापूर्वक आत्मा का चिन्तन सामायिक कहलता है। पर्व के दिन से पूर्व एकाशन, पर्व के दिन उपवास तथा पर्व के अगले दिन एकाशन करना प्रोषधोपवास कहलाता है। जो एक बार से अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता वह भोग है। जैसे- भोजन आदि तथा जो बार-बार उपयोग में आये वह उपभोग है। जैसे- वस्त्र, घर आदि। इनका शक्ति के अनुसार परिमाण करना भोगोपभोग परिमाण व्रत कहलाता है। अपनी शक्ति के अनुसार दान आदि देना, साधु आदि की वैयावृत्य करना आदि अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।। 8।।

इस प्रकार पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतों का पालन करने वाला जीव संसार सागर को पार कर लेता है। आगे श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं तथा इनके पालन से किस प्रकार कल्याण हो सकता है, वह बताते हैं।। 9।।

पहली दर्शन प्रतिमा है। दूसरी बारह व्रतों को धारण करने वाली व्रत प्रतिमा है। तीसरी प्रतिमा का नाम सामायिक है, इसमें समतापूर्वक आत्मचिन्तन किया जाता है।। 10।।

चतुर्थ प्रतिमा प्रोषधोपवास प्रतिमा है। इसमें पर्व आदि दिनों में व्रत से पहले दिन तथा व्रत के अगले दिन एकासन एवं व्रत वाले दिन निर्जल उपवास किया जाता है। पांचवीं प्रतिमा सचित्त त्याग प्रतिमा है। इसमें हरे पत्ते, बीज, अप्रासुक जल आदि का त्याग किया जाता है। छठी प्रतिमा में मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदन इन नौ प्रकार के दिन में मैथुन का त्याग किया जाता है।। 11।।

रात्रि में तथा दिन में पूर्वोक्त नौ प्रकार से मैथुन तथा स्त्री कथा आदि का पूर्ण रूप से त्याग करने वाला सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारी ब्रह्मचारी होता है। ज्ञानीजन कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करने वाले का अत्यन्त महत्त्व है और वह एक दिन परमात्म पद को प्राप्त करता है।। 12।।

आठवीं प्रतिमा आरम्भ त्याग प्रतिमा है। इसमें व्यापार संबंधित या गृह- संबंधित सभी कार्यों का त्याग कर दिया जाता है। नवमीं प्रतिमा परिग्रह त्याग प्रतिमा है। इसमें वस्त्र मात्र परिग्रह रखकर अन्य सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर देता है तथा वस्त्र में भी मोह भाव नहीं रखता।। 13।।

संसार संबंधी किसी भी कार्य की अनुमति का त्याग दसवीं अनुमतित्याग प्रतिमा है। ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रतिमा का धारी श्रावक मुनि के समान भव्य हो जाता है।। 14।।

ग्यारहवें प्रतिमा स्थान में श्रावक अट्ठारह दोषों को टालकर यत्नपूर्वक निर्दोष आहार लेता है। यह श्रावक गृह त्याग कर देते हैं। इनके दो भेद कहे गये हैं।। 15।।

ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक के दो प्रकार बताये गये हैं। प्रथम क्षुल्लक हैं जो अपने बाल और दाढ़ी-मूँछ नाई से कैंची या उस्तरे से कटवाते हैं। एक वस्त्र (अंगोछा) और एक लंगोटी मात्र परिग्रह स्वीकार करते हैं।

ये पीछी परिमार्जन के लिए तथा शुद्ध के लिए कमण्डल का प्रयोग करते हैं। ये बैठकर एक पात्र में भोजन करते हैं।। 16।।

सभी जाति के मनुष्य क्षुल्लक बन सकते हैं अर्थात् सभी जातियों के मनुष्य क्षुल्लक अवस्था पर्यन्त श्रावक व्रतों को अंगीकार कर सकते हैं। दूसरी प्रकार का ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक ऐलक कहलाता है। इसमें कुछ विशेषतायें हैं- प्रथम तो ऐलक श्रावक होने के लिए मात्र तीन ही जाति होनी चाहिये। 1. ब्राह्मण 2. क्षत्रिय, 3. वणिक अर्थात् व्यापारी। अन्य किसी जाति या वर्ण का व्यक्ति इस पद को धारण नहीं कर सकता।। 17।।

ऐलक जी करपात्र में 18 दोषों से रहित मुनि के समान आहार करते हैं। ये अहिंसा का उपकरण पीछी, शुद्ध का उपकरण कमण्डल तथा मात्र लंगोटी परिग्रह रखते हैं।। 18।।

ऐलक श्रावक केशलोंच करते हैं तथा एक ही स्थान पर नहीं रहते अर्थात् जगह-जगह भ्रमण करते हैं। सम्पूर्ण पापों का पूर्णरूप से त्याग कर देते हैं तथा लेशमात्र भी ममत्व नहीं रखते।। 19।।

ऐलक श्रावक तक अणुव्रती कहलाता है तथा मुनि महाव्रती कहलाते हैं। ये श्रावक धर्म तथा साधु धर्म, दो प्रकार के धर्मों का वर्णन किया गया है।। 20।।

जो श्रावक मुनिव्रत को धारण कर जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बताये मार्ग पर चलकर आत्मा के मर्म को जानते हैं अर्थात् आत्मानुभूति करते हैं, वे मोहनीय आदि सभी कर्मों को नष्ट कर परम पद अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं।। 21।।

सातवाँ अंग जो उपासकाध्ययन है, उसे हृदय में धारण कर उसमें बताये गये श्रावक के शुभ व्रतों का जीवन में पालन करना चाहिये।। 22।।

आगे कहते हैं कि उपासकाध्ययन नामक अंग बहुत विस्तृत है। आचार्य वसुनन्दि ने उसमें से संक्षप में श्रावकों के कल्याण के लिए व्रत, आचरण आदि का कुछ गाथाओं में उपदेश दिया है।। 23।।

इस प्रकार यह जिनेश्वर देव के द्वारा बताया धर्म है। इसका पालन करने से भ्रम बुद्धि नष्ट होती है, शाश्वत सुख प्राप्त होता है। भव्य प्राणी इस प्रकार ज्ञान धन को प्राप्त कर बुद्धपूर्वक जिनवर द्वारा बताये मार्ग का अनुकरण करते हैं। मुनि पद को पाने में असमर्थ श्रावक अणुव्रतों को धारण कर पाप तथा अवगुणों को नष्ट कर सकता है। मन, वचन, काय से जिन धर्म की प्रभावना कर श्रावक पुण्य से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।। 24।।

जीव दया अर्थात् अहिंसा, शुद्ध नय अर्थात् जिनवर की वाणी और गुरु की विनय ही उत्कृष्ट धर्म है। सभी प्रकार के असत्य को त्याग कर सत्य को धारण करना चाहिये। कुमति को छोड़कर कामवासना का भी त्याग करना चाहिये जो संसार रूपी अग्नि में जलाती है।। 25।।

चोरी का सर्वथा त्याग करें, कामवासना को त्याग कर शील व्रत को धारण करें। जग में आसक्ति अर्थात् तृष्णा का त्याग करें, यह तृष्णा सभी व्यसनों को जन्म देने वाली है, इसका त्याग कर जिनेन्द्र भगवान की अर्चना करें।। 26।।

आगे पण्डित जी बताते हैं कि इस टव्वा टीका की कैसे और किस कारण से रचना की गई-

धर्म रूप जिन आगम सार, संस्कृत प्राकृत विचार।
देवभाष कै फणपति भाष, गाथा काव्य छंद वहु साख।।27।।

नरभाषा मैं अंग न पूर्व, सुर अर अहिभाषा हि अपूर्व।
पंचम काल मांहि मतिहीन, तातैं नर भाषा हू लीन।।28।।

अव तुम सुनहु भव्य इक वैंन, जा विधि टवा भयौ सुख दैंन।
उदियापुर मैं कीयो वखांन, दोलतराम अनंदसुत जान।।29।।

वांच्यौ श्रावक व्रत विचार, वसुनंदी गाथा अविकार।
बोले सेठ वेलजी नाम, सुनि नृपमंत्र दोलतिराम।।30।।

टवा होय जौ गाथां तनौं, पुन्य उपजै जिय कौं घनौं।
सुनिकै दोलतिवेल सुवैंन, मन धरि गायो मारग जैन।।31।।

नंदौ विरधौ जिनमतसार, सुख पावो चउ संघ अपार।
दौलतिवेल लहो निज बोध, होऊ होऊ सवकों प्रतिबोध।।32।।

अर्थ- धर्म का स्वरूप जिनागम में अर्थात् शास्त्रों में संस्कृत और प्राकृत भाषा में निबद्ध है। संस्कृत भाषा में रचित काव्य, छंद देवभाषा कहलाते हैं तथा प्राकृत भाषा की गाथायें फणपति भाषा कहलाती है। सम्पूर्ण आगम इन्हीं दो भाषाओं में लिपिबद्ध है।। 27।।

नरभाषा अर्थात हिन्दी में न अंग हैं ना ही पूर्व का निरूपण है। सुर अर्थात् देवभाषा अर्थात् संस्कृत और अहिभाषा अर्थात् प्राकृत भाषा में ही सभी अंग और पूर्व निबद्ध है। पंचमकाल में बुद्धि की अल्पता के करण नरभाषा अर्थात् हिन्दी में श्रावकाचार का वर्णन किया जा रहा है। जिससे अल्पबुद्धि वाले मनुष्य भी आत्मकल्याण के मार्ग को समझकर आत्मकल्याण कर सकें।। 28।।

हे भव्य जीवों, प्राणी मात्र को सुख देने वाली यह टव्वा टीका को मैंने अर्थात् दौलतराम पुत्र श्री अनन्द ने श्रावक व्रतों को विचार कर विकार रहित वसुनन्दि श्रावकाचार का वर्णन उदयपुर में किया।। 29।।

एक दिन सेठ वेलजी ने राजा के मंत्र दौलतराम से कहा है कि "हे नृपमंत्र यदि वसुनन्दि श्रावकाचार की गाथाओं की तुम टव्वा टीका कर दो तो हृदय को बहुत सुख और पुण्य प्राप्त होगा। सेठ वेलजी के वचन सुनकर दौलतराम जी ने कुन्दकुन्दाचार्य, नन्दि आचार्य, नयननन्दि आचार्य, नेमिचन्द्राचार्य की परम्परा में वसुनन्दि आचार्य के द्वारा रचित, जिनागम के सार, चारों संघों को सुख देने वाली टव्वा टीका की।। 30-31।।

इससे जिस प्रकार सेठ वेलजी को तथा दौलतराम जी को आत्मतत्त्व की उपलब्धि हुई, उसी प्रकार सभी भव्य जीव, जो भी इसको पढ़ें उन्हें भी आत्मज्ञान प्राप्त हो तथा वे आत्मकल्याण कर सकें।। 32।।

संवत 1808 वर्ष कार्त्तिक मास शुक्ल पक्ष तीथो 14 सोमवासरे उदेपुर मध्ये सेव कालुचा।
लाल जी सुखजी की बहु बाइी मीठी तथा राजबाई ने लीखायो ग्रंथ श्रावकाचार लखायो।

संवत 1808 वर्ष के कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्दश तिथि, सोमवार को उदयपुर में सेठ कालुचा लालजी सुखजी की बहू मीठीबाई तथा राजबाई ने इस ग्रंथ श्रावकाचार को लिपिबद्ध किया।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (BIBLIOGRAPHY)

अमितगति श्रावकाचार- आचार्य अमितगति, वचनिकाकार, पण्डित भागचन्द, प्रकाशक- श्री दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत, गुजरात, 1958

अष्टपाहुड- आचार्य कुन्दकुन्द, भाषा वचनिका, पं. जयचन्द छाबड़ा, प्रकाशक- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र), 1995

आत्मानुशासन- आचार्य गुणभद्र, भाषा टीकाकार, आचार्यकल्प पं. टोडरमल, अनुवाद- पं. अभय कुमार जैन शास्त्री, प्रकाशक- पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 1999

आदिपुराण- अनुवाद एवं सम्पादन, डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004

इष्टोपदेश- आचार्य पूज्यपादस्वामी, संस्कृत टीकाकार- पं. आशाधर रचित संस्कृत, टीका के गुजराती अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर, गुजराती अनुवाद, छोटालाल गुलाबचन्द गाँधी (सोनासण, गुजरात), हिन्दी अनुवाद, देवेन्द्र कुमार जैन, बिजौलिया, जिला- भीलवाड़ा, प्रकाशक- पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, 2003

कसायपाहुड- आचार्य गुणधर, चूर्णिसूत्र, आचार्य यतिवृषभ, जयधवला, आचार्य वीरसेन, सम्पादकगण- पण्डित स्व. श्री फूलचंद सिद्धान्तशास्त्री, पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, स्व. श्री पण्डित कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प्रकाशक- भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी मथुरा (उ.प्र.)

कुन्दकुन्द भारती- आचार्य कुन्दकुन्द, सम्पादक- पण्डित डॉ. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य, सागर, प्रकाशक- श्रुत संवर्धन संस्थान, मेरठ

गोम्मटसार कर्मकाण्ड- आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (सिद्धान्तज्ञानदीपिका हिन्दी टीका सहित) टीकाकर्त्री- आर्यिका आदिमतीजी, सम्पादक- डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, प्रकाशक- आचार्य 108 श्री शिवसागर ग्रन्थमाला श्री शान्तिवीर नगर, श्रीमहावीरजी, राजस्थान, 2007

छहढाला- कविवर पण्डित दौलतराम जी, स्याद्वादी टीका, टीकाकार- स्याद्वाद विद्याभूषा सन्मतिसागर महाराज, प्रकाशक- स्याद्वाद जैन विश्वविद्यालय, सोनागिर, दतिया (म.प्र.)

चतुर-चितारणी- पण्डित दौलतराम कासलीवाल, सम्पादक एवं अनुवादक- डॉ. वीरसागर जैन, प्रकाशक- श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट दुर्गापुरा, जयपुर, 2001

जैन तत्त्वविद्या- मुनि प्रमाणसागरजी (शास्त्रसारसमुच्चय का हिन्दी विवेचन), आमुख, प्रो. रतनचन्द्र जैन भोपाल, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2001

जैनधर्म- पंडित कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री, प्रकाशक- प्राच्य श्रमण भारती, मुज़फ्फरनगर, 2003

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश- जिनेन्द्र वर्णी (भाग 1-4), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1998

तत्त्वार्थसूत्र, आचार्य उमास्वामी, प्रकाशक- दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत

तत्त्वार्थवार्तिकम् (भाग 1-2)- आचार्य अकलंकदेव, सम्पादक- डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1990

दौलत विलास- पण्डित दौलतराम कासलीवाल, सम्पादक, अनुवादक- डॉ. वीरसागर जैन, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009

धर्मामृत सागार- पं. आशाधर, सम्पादक एवं अनुवादक- सिद्धान्ताचार्य पंडित कैलाशचन्द्र, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2007

पं. दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व, कृतित्व- डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, राजस्थान, प्रकाशक- जैन ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

पुरुषार्थसिद्धयुपाय- आचार्य अमृतचन्द्र, भाषा टीका, आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमल जी, अनुवादक- वैद्य गंभीरचन्द जैन, प्रकाशक- पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, बापूनगर, जयपुर, 2010

प्राकृत-पाण्डुलिपि चयनिका- सम्पादक- डॉ. कमलचन्द सोगाणी, उदयपुर, प्रकाशक- अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी, राजस्थान, 2006

प्राकृत साहित्य का इतिहास- डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, प्रकाशक- चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1985

पाण्डुलिपि विज्ञान- डॉ. सतेन्द्र प्रकाशक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2007

बृहद्द्रव्यसंग्रह- आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, संस्कृतवृत्ति, श्री ब्रह्मदेवसूरि, हिन्दु भाषानुवाद- श्री जवाहरलालशास्त्री, प्रकाशक- श्री परमश्रुत प्रभावक मंडल श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, आगास, 1999

मोक्षमार्गप्रकाशक- आचार्यकल्प पंडित टोडरमल जी, भाषा-परिवर्तन- श्री मगनलाल जैन, सम्पादन एवं प्रस्तावना- डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, प्रकाशक- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ (जिला- भावनगर, गुजरात), 1980

रत्नकरण्ड श्रावकाचार- आचार्य समन्तभद्र (प्रश्नोत्तरी टीका), सम्पादक- आचार्य भरतसागर, अनुवादिका- आर्यिका स्याद्वादमती, प्रकाशक- भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्, 2008

वसुनन्दि श्रावकाचार- आचार्य वसुनन्दि, सम्पादक एवं अनुवादक- पं. हीरालापल जैन, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2016

षट्खंडागम- आचार्य भूतबलि-पुष्पदन्त, धवला टीका, टीकाकार- श्री वीरसेनाचार्य, जीवस्थान सत्प्ररूपणा, भाग 1, सम्पादक- स्व. डॉ. हीरालाल जैन, सह-सम्पादक- डॉ. ए.एन. उपाध्ये, प्रकाशक- जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सन्तोष भवन, फलटान गली, सोलापुर -2, 1973 संस्कृत हिन्दी कोश- वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001

परिशिष्ट

परिशिष्ट (APPENDIX)

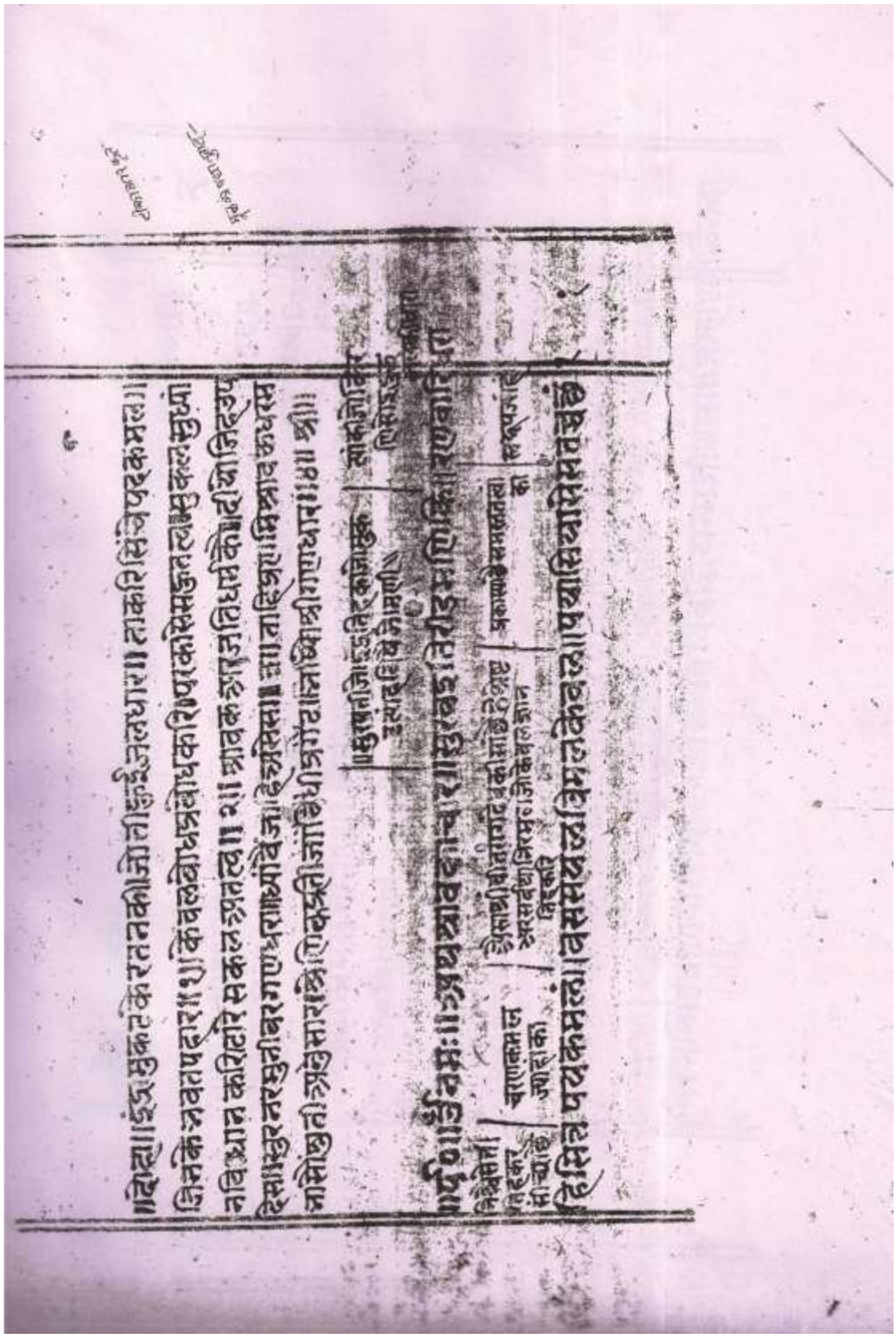

गुरुयां संदेधी | तथाजतीसं वधी | भविजीवां नें | जिणभ गवान | उपदेस्योधर्म | नमस्कारकरि | तिहांजिनेंद्रनें

२

साथारो णायारो। भवियाणं जेण देसिउ धम्मो॥ एगमिउ णतं जिणिंदं॥

अरश्रावककोधर्म | कहुंछे | विपुलाचलपरवतऊपरि | इंद्रभूतीजीगोतमस्वामी | तिहांश्रेणिकराजानें | जिहनतिउपदेसा

सावयधम्मं पयडेमो॥२॥ विउलइरिपव्वएहिं। पुव्वइएणसेणियस्सजहदिट्ठं

तहनो ति | पुरांनीपरंपरायक | कहुंछे | सोयेसुणें | प्रथमश्रावकको धर्मसम्यक्त्वमूलकहा | दुजो व्रतव | तीजोसमायक

तहगुरुपरिवाडीणा भणिज्जमाणं। सामेह। बारसणवइ सामाइय

चोथोपो सह | पांचमोसचित्तसच्च | छठोएकाभोजनत्याग | सा कुशीलत्याग | भो आठ | नवमोपरीग्रहत्याग | दसमोजगतकारकाप्रदेसकेत्याग | अग्यारमोउदिउ विहारीउ

पोसह सचित्तराय भत्तेय। वंभारंभ परिग्गह। अणुमए उद्दिट्ठदेस

पदेस्थाओ हारकोत्याग | एकादसमध्यानक श्रावककोछेंते | सम्यक्त | रहितजीवके | जातेनहोंदि नरएनिकाकारण

विरयम्मि॥४॥ एयारसया णाओ। सम्मत्त विवज्जियस्स जीवस्स। जम्हा ण संतितहा

॥ ४॥

सिस्सोतिहको जिनआगमरूप समुद्रकीतरंगोंकरिधोयोछैमनजिरुकोकुवो

सिस्सोतस्स जिणागम जलणिहिवेलातरंगधोयमणो

सकलजगतविषे विख्यातनेमचंद्रसैसेनाम तिहकाप्रसा

संजाउसयलजए विक्काउणेमचंदुत्ति॥४४३॥ तस्सप

कीरिमें | आचार्यकीपरंपरायकरिवलोआयो | वात्सल्यकोकरणहारोसोर

जोश्रावकआचारशास्त्र

साएणमएआयरिपरंपरागयंसव्वं वच्छत्तयरंरइयं

भव्यजीवानैं | उपासकाध्ययननामाअंगथूकी | जोश्रावकधर्मलोक विषेकहो

योसंक्षेपमात्रश्रावककोधर्म

कविवाएमुवासयज्झयणा॥४४४॥ जकिंपिएत्थअणियं

अजाणतेयकैमें सिद्धांतसेतोविरुद्ध | सोहमाकहिसूत्रकावेत्ता

अयाणमाणेण पवयणविरुद्धं खमिऊणसुयविद

२५६

१३०

सोधिकरि तिहुनैंप्रकासो छहसैकडाप्रवास आगला ५५०

सू सोहित्ता तंपयासंत्र॥पथ॥ बहुसयापणासु त्रराणि २६०

वत्तासम्मस्सराष्ट्रोकइहग्रंथ
कोपरिमाणजांणो वसुनंदिणायागाइसोविस तारणी

एहस्सगंथपरिमाणं बुसुणंदिणाणिवहु विहरियवं

विसेषबुधांनें

विसेहिं॥पथ॥इत्सूपासकाध्य यनंसंपूर्ण